अञ्जन

मिस मेयो की

मदर-इण्डिया

[सचित्र हिन्दी अनुवाद]

जिस में

श्रीमती उमा नेहरू

लिखित

" भूमिका " तथा पश्चिमीय साम्राज्यवाद के विषय में
" मिस मेयो से दो दो बातें "

और परिशिष्ट में

महात्मा गांधी, लाला लाजपत राय,
सर रवीन्द्र नाथ ठाकुर तथा
अन्य प्रमुख व्यक्तियों की
समालोचनाएँ भी
सम्मिलित
है।

इलाहाबाद
हिन्दुस्तान प्रेस
१ प्रयाग स्ट्रीट
१९२८

मूल्य ३॥) रु०

विषय-सूची ।

भूमिका ।

पृष्ठ

मिस मेयो से दो दो बातें (वादविवाद)

मदर-इण्डिया ।

भाग पहला

विषय-सूची

परिशिष्ट (आलोचनाएँ)।

चित्र-सूची।

[ये चित्र मिस मेयो की मदर-इण्डिया के अमरीकन एडीशन से उद्धृत किये गये हैं]

तक हमने अपने, पराए सभी से इतनी बातें सुनी हैं कि हमें अपने ज़लील, असमर्थ और निर्लज्ज होने का स्वयं विश्वास हो गया है, फिर भी मनुष्य हैं, बेजान नहीं; बेबस हैं, बेहिस नही। इसलिये पुराने ज़ख़्मों पर नई चोटें बिना अपना काम किये नही रहती।

मिस मेयो की मदर इण्डिया

मिस मेयो की 'मदर इण्डिया' जिसकी मैं प्रस्तावना लिख रही हूँ कोई साधारण पुस्तक नही है। यह हमारे राजनैतिक जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना है। इस पुस्तक में हमारे धुरन्धर अङ्गरेज़ राजनीतिज्ञों ने मिस मेयो जैसी निपुण चित्रकार से हमारा चित्र उतरवा कर संसार के सामने पेश किया है, ताकि लोग हमारी घृणित अवस्था को देखें और अपने उन देश बन्धुओं को लज्जित करें, और नीचा दिखावें जो साम्यवाद के फैलने और श्रमजीवी आन्दोलन के ज़ोर पकड़ने के समय से भारत में विशेष दिलचस्पी लेने लगे हैं; और जो समय समय पर प्रेममय शब्दों द्वारा भारत के साथ सहानुभूति प्रगट किया करते हैं। मिस मेयो का खींचा हुआ चित्र यथार्थ है वा नही, भारत की अवस्था वास्तव में इतनी हीन है वा नहीं, यह ऐसे प्रश्न हैं जिन पर बहस हो सकती है। किन्तु इसमें कोई सन्देह नही हो सकता कि मिस मेयो की नज़रों में तथा उन अङ्गरेज़ों की नज़रों में जिनकी

मिस मेयो मुखपात्र हैं, भारत वास्तव में ऐसा ही दिखाई पड़ता है जैसा "मदर इण्डिया" में चित्रित किया गया है। या कम से कम ये लोग यह चाहते हैं कि संसार भारत को इन्हीं रङ्गों में रङ्गा हुआ देखे। हमारे लिये ये दोनों बातें एक सी हैं। इन दोनों बातों को सामने रख कर जब मैं सोचती हूँ कि हिन्दुस्तानियों और अंगरेज़ों के दो सौ वर्ष के पारस्परिक संसर्ग और परिचय का परिणाम यह भयंकर घृणा है जो "मदर इण्डिया" के एक एक शब्द से टपकती है तो मेरा दिल काँप उठता है। मुझे साफ़ दिखाई पड़ता है कि जब दो ऐसी जातियों के विचार और भाव जिन में राजा प्रजा का सम्बन्ध हो एक दूसरे की ओर से इस प्रकार के हों, तो वे जातियाँ बिना एक दूसरे का विनाश किये नहीं रह सकतीं। 'रडयार्ड किप्लिङ्ग' के घमण्ड भरे शब्द मेरे कानों में गूँज जाते हैं —

'East is East, and West is West,
And never the twain shall meet'

अर्थात् — पूरब पूरब है और पश्चिम पश्चिम है, और ये दोनों आपस में कदापि नहीं मिल सकते।

और मैं यह सोचने लगती हूँ कि जब पूरब और पश्चिम मिल नहीं सकते, साथ नहीं रह सकते, तो इन दोनों में से एक का मिटना लाज़मी है। इन दोनों में से कौन मिटेगा यह हमें और भविष्य को निश्चय करना है।

इतिहास के पृष्ठ पृष्ठ पर हमें पूर्वीय सभ्यता और पश्चिमीय सभ्यता का भेद अंकित दिखाई पड़ता है। पूर्वीय जातियां धार्मिक प्रपंचों और भेद भाव में फंसे होने हुए भी अन्य जातियों के लोगों के साथ संसर्ग पड़ जाने पर पारस्परिक प्रेम और सहानुभूति के जाल में फंस जाती हैं। यह स्वाभाविक भी है। भिन्न भिन्न स्वभाव और श्रेणी के जानवरों को भी यदि एक स्थान पर कुछ समय तक रक्खा जाता है तो उनमें भी एक प्रकार का प्रेम और सहानुभूति उत्पन्न हो जाती है। परन्तु पश्चिमीय जातियों की दृष्टि में पूर्वीय लोग पशुओं से भी पतित है। वे बिच्छू, सर्प, चीते या भालू के समान हैं, जिन्हें घायल करना, कुचल डालना निर्मूल कर देना ही, इनकी सम्मति में, मानव जाति की सब से बड़ी सेवा करना है।

आज तक हमारे अंगरेज़ राजनितिज्ञों ने इस क्रूर भाव, इस भीषण राजनीति को, ऐसे स्पष्ट, ऐसे भयंकर रूप में भारत के प्रति प्रगट नहीं किया था जैसा इस 'मदर इण्डिया' की रचना और प्रकाशन द्वारा किया गया है। इस पुस्तक को अपना मुख पात्र बनाकर अंगरेज़ राजनीतिज्ञ उसके द्वारा संसार को स्पष्ट शब्दों में बतलाते हैं:—

"भारत एक असभ्य, अशिक्षित, गन्दा और अत्यन्त हीन देश है। हमने दो सौ वर्ष तक निस्स्वार्थ और अचूक परिश्रम के साथ इस की सेवा

की। इसे सभ्य बनाने का प्रयत्न किया। परन्तु सब व्यर्थ हुआ। अब हम अपनी भूल को स्वीकार करते हैं। निस्सन्देह भारत जैसे पतित देश को विनाश से बचा कर हमने उसे संसार के लिये एक भीषण खतरे (World menace) का रूप दे दिया है। परन्तु अब हम अपनी भूल का प्रायश्चित करने को तैयार हैं। आप भयभीत न हों। लीग आफ नेशन्स को हस्तक्षेप की कोई आवश्यकता नहीं पड़ेगी। हम स्वयं अपनी नीति उसी प्रकार बदल देने को तैयार हैं जैसे अमरीका ने फिलीपाइन्स में बदल दी है। जिस प्रकार अमरीका ने फिलीपाइन्स निवासियों को एक बार शासन के कुछ अधिकार देकर उन्हें फिर वापस ले लिया उसी प्रकार भारत में भी किया जा सकता है।

"इतना ही नहीं, वरन् हमें अब यह अनुभव हो रहा है कि भारत की दरिद्र, दुर्गन्धमय और कीटाणु पूर्ण सभ्यता से संसार को सुरक्षित रखने के लिये हमें अब स्पष्ट रूप में वही नीति इख्तियार करनी पड़ेगी जो अमरीका ने अपने आदि निवासी रेड इण्डियन्स के साथ की थी। या जो स्वयं हमने आस्ट्रेलिया के और दक्षिण अफरीका के पुराने वाशिंदों के साथ बरती है। इस में सन्देह नहीं कि इस नीति का नतीजा यह हुआ कि उनमें से अधिकतर

जातियां संसार से मिट चुकीं, किन्तु संसार की रक्षा तथा उन्नति के लिये यदि कुछ जातियों को मिट जाना पड़े, तो इससे कोई विशेष चिन्ता की बात नहीं।

"परन्तु सुनलो! इस कार्य्य में हमें तुम्हारी सहानुभूति की ज़रूरत होगी। ऐसा न हो कि जब हम इस कठिन कार्य्य में लगें तो तुम हमारे बीच में आजाओ। जो कुछ रिफ़ार्म विफ़ार्म हमने दिये हैं इन्हें और भी परिमित करना पड़ेगा। यही नहीं। रिफ़ार्म हासिल करने की आकांक्षा और उत्तेजना को भी, जो हमारी ही भूलों द्वारा उत्पन्न होगई हैं, कुचलना पड़ेगा। सम्भव है कि इस कोशिश में ये हिन्दोस्तानी कुछ ज़्यादा सरकशी करें तो इन्हें दो चार पंजाब जैसे और सबक़ देना पड़ें। फिर यह न हो कि ऐसे संकटपूर्ण अवसरों पर तुम भी हमारे पीछे पड़ जाओ और इस गन्दी, दुर्बल, हीन और रोगी जाति की सहानुभूति का राग अलाप कर हमारी कठिनाइयों को और भी बढ़ा दो। याद रहे कि यदि तुम ने ऐसा किया तो तुम स्वयं अपने पांव में कुल्हाड़ी मार लोगे। क्योंकि यदि भारत को ज़्यादा अधिकार मिल गये तो तुम भी भारतीयों से अपने आपको रक्षित न रख सकोगे। यदि तलवार तोप और एरोप्लेन से नहीं तो हैज़े, प्लेग और अन्य

गन्दी बिमारियों के कीड़ों द्वारा भारतवासी अवश्य तुम्हारा नाश कर देंगे।"

मदर इण्डिया का वास्तविक उद्देश्य

मदर इण्डिया का वास्तविक भाव तथा वास्तविक लक्ष्य यही है। भारत से समस्त पश्चिमीय संसार की सहानुभूति को अलग कर देने का यह पुस्तक एक प्रबल साधन है। यह पुस्तक आने वाले अङ्गरेजी चुनाव में लेबर पार्टी के प्रभाव के मिटाने की एक जबरदस्त चाल है, जो पार्टी, कम से कम शब्दों में, भारत को और हक देने का कभी कभी चर्चा किया करती है। यह पुस्तक उस पार्लिमेन्टरी कमीशन की एक प्रचलित प्रस्तावना है जो कमीशन स्वयं भारत के लिए एक घोर अपमान है और जिसमें से हिन्दोस्तानियों को अलग रख कर उस आगामी नीति की बुनियादें डाली गई हैं जिस के श्रीगणेश की सूचना 'मदर इण्डिया' द्वारा संसार को दी जा रही है।

इस पुस्तक को मिस मेयो का करतूत समझना, उसके व्यंगों और कटाक्षों से रुष्ट होकर पश्चिमीय समाज को बुरा भला कहने लगना, मीटिङ्गें कर के मिस मेयो को गालियां देना यह सब इस पुस्तक के महत्व और वास्तविक उद्देश्य से अपने को अपरिचित सिद्ध करना है। जिस स्त्री ने 'दी आइल्स आफ फीयर' नामक पुस्तक फिलीपाइन्स टापू को

स्वतंत्रता अपहरण के लक्ष्य से, उन सुप्रसिद्ध मन ग्लायोनेल कर्टिस की प्रस्तावना सहित प्रकाशित की हो, जो महा पुरुष भारत की दो मुंही शासन प्रणाली के जन्मदाता हैं — जिस स्त्री ने फ़िलीपाइन्स को संसार के उपहास और घृणा का पात्र बना चुकने के बाद सीधे इण्डिया आफ़िस की राह ली हो — जो स्वयं भारत की राजधानी में लार्ड रीडिङ्ग और लेडी रीडिङ्ग और सूबों में प्रान्तीय गवर्नरों और ऊंचे सरकारी अफ़सरों की मेहमान रही हो — जो सी-आई-डी के अफ़सरों द्वारा हिन्दोस्तानी ख़ास ख़ास लोगों से मिलती फिरी हो — ऐसी स्त्री को इस पुस्तक का वास्तविक जन्मदाता समझना ग़लती है। अङ्गरेज़ी राजनीतिज्ञों ने जान बूझ कर इस अभागी स्त्री को अपनी ओट बनाया है और निशाने लगाने के लिये हमारे सामने कर दिया है। जितने तीर हम इस निशाने पर लगायेंगे, जितनी शक्ति, समय, और धन इन तीरों को मारने में ख़र्च करेंगे उतना ही हमारे वास्तविक, चालाक शत्रुओं को लाभ पहुँचेगा।

इस से भी बड़ी ग़लती यह होगी कि हम इस पुस्तक का सम्पूर्ण रीति से प्रचार न करें। यदि इसमें हमारी वास्तविक दशा चित्रित है तो इसे पढ़ना और दूसरों से पढ़वाना हमारा धार्मिक कर्तव्य होना चाहिये। यदि इस पुस्तक में अत्युक्तियां और झूट हैं तो उससे पश्चिमीय संसार धोका भले ही खावे, परन्तु हम स्वयं उससे धोका नहीं खा सकते। अपने दोषों से घृणा करना इन्हें दूर कर देने की पहली सीढ़ी है।

और जो लोग अपने दोष देखने से घबड़ाते हैं वह दवा न खाने वाले बीमार के समान अपने रक्त से स्वयं अपने रोग का पालन करते हैं।

हमारा उत्तर

मदर इण्डिया को पढ़ते समय हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि मिस मेयो ने एक सहृदय समाज सुधारक का स्वरूप केवल अपनी राजनैतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिये धारण किया है। परन्तु हमारे जातीय जीवन के इस विभत्स चित्र के प्रकाशन का वास्तविक उद्देश्य जैसा मैं अभी कह चुकी हूँ संसार की सभ्य जातियों में हमें घृणित बनाना है। 'मदर इण्डिया' का प्रचार न करना या उसे न पढ़ना और इस प्रकार इस चित्र पर अपने देश में पर्दा डाल लेने से हम कोई लाभ नहीं पहुँच सकता। यह चित्र लाखों रुपये के खर्च से संसार के सामने रखा जा चुका है। जो नतीजा उसे पैदा करना था कर चुका और कर रहा है। इस चित्र का उत्तर हम केवल एक ही प्रकार दे सकते हैं कि हम इसे अपने एक एक देश वासी को दिखाकर उसके हृदय पर इस चित्र के वास्तविक उद्देश्य को अङ्कित करदें। हम भारत वासियों को प्रत्यक्ष रूप से दिखा दें कि अङ्गरेजी राजनीतिज्ञ जिनके हाथ में इस समय ब्रिटिश साम्राज्य की बागडोर है हमें किस दृष्टि से देखते हैं। ये राजनीतिज्ञ संसार के

सामने हमें अपमानित करने के लिये किस किस प्रकार के घृणित प्रबन्ध करते हैं। इस झूठे चित्र को जो हमें अपमानित करने के लिये खींचा गया है इस देशमें स्वाभिमान उत्पन्न करने का साधन बनायें। और उस साम्राज्यवाद को जिसकी बुनियादों को पुष्ट करने के लिये ऐसी निर्लज्ज चालों के चलने की आवश्यकता होती है, उसकी निर्लज्जता को, उसकी क्रूरता और घमण्ड को, जो 'मदर इण्डिया' की कल्पना तथा रचना दोनों से टपकता है, लोगों को इसी चित्र में दर्शा कर, उस साम्राज्यवाद को जो हमारी दृष्टि में 'संसार का वास्तविक भय' (World menace) है, कम से कम भारत से निर्मूल कर देने के लिये उद्युक्त बना दूँ।

मदर इण्डिया की शैली

जो चित्र हमारे देश का संसार के सामने रखा गया है उसे देख कर पश्चिमीय जातियां तो क्या स्वयं हमारे ही रोमान्च खड़े हो जाते है। जिस प्रकार एक गिद्ध आकाश से नीचे की ओर देखता है परन्तु पृथ्वी पर फैले हुये सहस्रों विशाल वृक्ष, लाखों सुगन्धमय अलौकिक रंगों में रङ्गे हुये फूल, और अनेकानेक रोचक, स्वादिष्ट तथा स्वास्थ्यमय मेवे और फल, कोई भी इसे अपनी ओर आकर्षित नहीं कर पाते — किन्तु इसकी नज़र जहां किसी मुर्दा जानवर या इन्सान की लाश पर पड़ी, तुरन्त अपने परों को समेट गिरते

हुये लोहे के गोले के समान धरती की ओर टूट पडता है और अपनी मनोकामना पाकर जिस रस, जिस स्वाद, जिस रोचकता के साथ उसके दुर्गन्धपूर्ण गोश्त और सडे हुये रग पुट्ठों को नाच नोंच के खाता है, इसी प्रकार 'मदर इण्डिया' की जननी ने अपनी बिरादरी वालों से प्रोत्साहन लेकर भारत की कल्पित तथा वास्तविक घृणामय सस्थाओं को ढूढ ढूढ कर भयानक, और विचित्र रसिकता के साथ वर्णित किया है।

यह सैलानी कुमारी अमेरिका से उडकर इङ्गलैण्ड होती हुई भारतीय आकाश मे आ मंडलाई। गोकि इस प्राचीन देश में पाच लाख मसजिद और मंदिरों से कम न होंगे, परन्तु कलकत्ते के गवर्मेन्ट हौस की छत और दिवारों को पार करती हुई सीधी कालीघाट म काली माई के मन्दिर पर जा टूटी। भारत के पाच लाख मन्दिर मसजिदों में शायद यही मन्दिर ऐसा है जहा प्रति दिन जीवित पशुओं की भेंट चढाई जाती है। इधर उधर देखती हुई मिस मेयो वेदी के पास पहुँच गई और वे उसका वर्णन इस प्रकार देती हैं। —

एकाएक हवा को चीरती हुई एक तेज वेदनापूर्ण आवाज बकरी के मिमियाने की सुनाई दी। हम मन्दिर के कोने से घूमकर दूसरी ओर एक खुले सहन में पहुचे। यहां पर दो पुरोहित खडे हुए थे। एक के हाथ में एक मुडी हुई खड्ग थी। दूसरा एक बकरी के बच्चे को पकडे हुए था। बकरी का बच्चा चिल्लाया, क्योंकि वहा की हवा में वह

विचित्र दुर्गन्धि भरी हुई थी, जिसे सूंघ कर सब पशु डर जाते हैं। काली के सामने नगाड़े बजने लगे। इनका ज़ोर का शब्द हुआ। जो पुरोहित बकरे को पकड़े हुए था उस ने उसकी टांगें पकड़ कर ज़ोर से हवा में घुमा कर, ज़मीन पर पटक दिया। बकरा चीखे जा रहा था। इसकी गर्दन एक फटे हुए खूंटे के अन्दर ज़ोर से फंसी हुई थी। दूसरे पुरोहित ने एक झटके के साथ अपनी खड्ग से बकरे का सिर अलग कर दिया। ख़ून का फुव्वारा फ़र्श पर छूटने लगा। काली के सामने नगाड़े और घंटे ख़ूब प्रचंडता से बजने लगे। तमाम पुरोहित और भक्त मिल कर एक साथ 'काली!' 'काली!' 'काली!' चिल्लाने लगे। कुछ लोग मन्दिर के फ़र्श के ऊपर पट पड़ गये।

इतने में फ़ौरन ही एक स्त्री जो उस बकरे के बधिकों के पीछे खड़ी हुई थी तेज़ी से आगे बढ़ कर नीचे लेट गई और अपनी जीभ से ख़ून चाटने लगी—'इस आशा से कि इस से उस के पुत्र होगा।' इसके बाद एक दूसरी स्त्री झुक कर उस ख़ून से एक कपड़ा भिगोने लगी और उस कपड़े को उस ने अपनी बग़ल में रख लिया। इस पर आधी दरजन बीमार, ज़ख़्मी कुत्ते जिनकी शक्लें अकथनीय रोगों के कारण भयंकर हो गई थीं उस लहू के बढ़ते हुए तालाब में आ कर अपनी भूख बुझाने लगे।

हालदार ने कुछ अभिमान के साथ मुझ से कहा, 'इस प्रकार हम लोग प्रति दिन यहां पर डेढ़ सौ से लेकर दो सौ तक बकरी के बच्चों का बध करते हैं। यह बकरे भक्त लोग लाकर चढ़ाते हैं।'

पशुओं का बध देखने के बाद मिस मेयो एक मृत्यु स्त्री के

सिवाय नाभि के और सब बदन जल जाता है। मन्दिर के लोग राख में से नाभि को निकाल लेते है और मरने वाले के घर के लोगों से एक सोने की मोहर लेकर उस मोहर समेत नाभि को मिट्टी के गोले में लपेटकर गंगा में फक देते है। आइये अब आपको गंगा स्नान का दृश्य दिखाऊं।'

स्नान का दृश्य देखिये :—

फिर वह हमें भीड़ में से निकाल कर मन्दिर के नीचे एक जगह ले गये जहां पर एक गंदला, छिछला नाला वह रहा था, जिसमें नहानेवालों की भीड़ थी। मि० हाल्दार ने कहा कि, 'यह गंगा की सब से पुरानी धारा है, इसलिये इसका महत्व बहुत अधिक समझा जाता है। लाखों बीमार प्रति वर्ष यहां पर नहाने और तन्दुरुस्त होने के लिये आते हैं जैसा कि कुछ आपके सामने नहा रहे हैं। जो लोग और मन्नतें मांगने के लिये काली की पूजा करने आते है वे पूजा करने से पहले अपने पाप धोने के लिये यहां स्नान करते है।

स्नान करने के बाद उन लोगों ने वहीं से थोड़ा थोड़ा पानी पिया जो मुश्किल से उनके घुटनो तक पहुंच रहा था। फिर उसमें से बहुत से अपने हाथों से कुछ मिनट तक नीचे की मिट्टी को टटोलते रहे और मुट्ठियों से कीचड़ बाहर निकाल कर उसे अपने हाथों में लेकर गौर से देखते रहे। मि० हाल्दार ने कहा 'यह लोग उन सोने की मुहरों को ढूंढ रहे हैं जो स्मशान भूमि से गंगा में फेंकी गई हैं। उन्हें प्राप्ति की आशा है।'

इस बीच में नदी की पैडियों के ऊपर नीचे पुरोहित लोग आ जा रहे थे। हर एक के साथ तीन तीन चार चार बकरी के बच्चे होते थे। इन बच्चों को भी वहीं पर नहलाते थे जहा पर मनुष्य नहा रहे थे, फिर उन्हें खींच कर मन्दिर के आगन में ले जाते थे। बच्चे चीखते थे और जोर लगाते थे। बहुत से स्त्री पुरुष पानी के घडे लिये हुए चढ उतर रहे थे। ये लोग इसी नाले से अपने घडों को भर कर लौट जाते थे।

मि० हाल्दार ने कहा, 'प्रत्येक बकरी के बच्चे को वध करने से पूर्व गंगा में नहला कर पवित्र कर लेना आवश्यक है। जो लोग पानी ले जा रहे हैं वे देवी पर चढाने के लिये ले जा रहे है। यह पानी काली के पैरों पर और काली के सामने जो पुरोहित खडे रहते हैं उनके पैरों पर डाला जाता है।'

मन्दिर की नाली को देखिये —

मन्दिर के बाहर की दीवाल के पीछे जब मि० हाल्दार हमसे विदा हुए मैंने देखा कि जमीन से लगभग हाथ भर की ऊंचाई पर दीवाल में एक नाली का मुंह था। इस सूराख में एक छोटे से पत्थर के ऊपर कुछ गेंदे के फूल, कुछ गुलाब की पत्तियें और कुछ पैसे पड़े हुए थे। मेरे देखते देखते एकाएक इस नाली में से कुछ गंदला पानी जोर से बाहर को बहा। एक स्त्री ने ऊपर कर उसके नीचे एक कटोरा लगा दिया और इसे भरकर पी गई।

'यह हमारा पवित्र गंगा जल था, जो कि काली और उसके पुरोहितों के पैरों पर से बहकर और भी अधिक पवित्र हो गया था। इस पुरानी नाली द्वारा यह पवित्र जल मन्दिर के फर्श से बाहर आ रहा

है। पेचिश और पारी के बुखार की यह बहुत अच्छी औषधि पाई गई है। जिन रोगियों में चलने की ताक़त है वे पहले गंगा में जाकर स्नान करते हैं फिर यहां आकर इस जल को पीते हैं। जो इतने बीमार हैं कि यहां नहीं आ सकते उनके लिये उनके मित्र यहां से जल ले जाते हैं।

अपने पाठकों को यह सारे अपूर्व दृश्य दिखलाने के बाद मिस मेयो अपनी पुस्तक का आरम्भ करती हैं। ये दृश्य मानों उनकी पुस्तक के श्रीगणेश हैं।

मदर इण्डिया का नामकरण

धार्मिक क्षेत्र से निकल कर सामाजिक विषयों जैसे वैधव्य, बाल विवाह, सतीत्व इत्यादि के सम्बन्ध में 'मदर इन्डिया' में जो जो चित्रकारियां की गई हैं उन्हें स्वयं पाठक देखेंगे। किन्तु भारत की ओर इस पुस्तक की असीम घृणा और अविश्वसनीय हेय की अन्तिम सीमा दिखलाने के लिये मैं इनका ध्यान केवल उस चित्र की ओर आकर्षित करना चाहती हूं जिसकी बिना पर इस पुस्तक का नाम 'मदर इन्डिया' रक्खा गया है। वैधव्य की असहनीय आपत्तियां, भारतीय स्त्रियां की चरित्र हीनता और दासत्व, बाल विवाह के विनाशक परिणाम अकथनीय रूप में दर्शा चुकने के बाद मिस मेयो हमारे प्रसूत गृह में प्रवेश करती हैं। वहां उन्होंने जो कुछ देखा वह स्वयं उन्हीं के शब्दों में सुनने योग्य है।

प्रसूता का हाल सुनिये —

यह स्त्री जिसके बच्चा होने वाला है, अपने होने वाले बच्चे के लिये छोटे छोटे कपड़े बनवा रखना या इस प्रकार की कोई अन्य तय्यारी नहीं करती। समझा जाता है कि ऐसा करना मानों यह समझ लेना है कि देवता अपनी कृपा दृष्टि इस पर अवश्य डालेंगे। और यह अनुचित है। किन्तु वह एक काम कर सकती है और करती भी है। वह यह कि साल भर तक जितने गन्दे से गन्दे चीथड़े निकम्मे कपड़े घरवालों के हाथ से फिंकने रहते हैं उन्हें वह एक दालान में या किसी छोटे से अंधेरे कमरे के एक कोने में जमा करती रहती है।

जब बच्चा पैदा होने का समय आता है तो वह युवा पत्नी इसी बदबूदार कचरा घर में घुस जाती है। वह 'अपवित्र' समझी जाती है, और उस वेदना के समय जो कुछ वह छूती है वह भी अपवित्र हो जाता है, और इस कार्य के बाद नष्ट कर दिया जाता है। इसलिये किफायत के नाम पर उसके आस पास केवल वह चीजें दी जाती हैं, या उसी तरह के आदमी भेजे जाते हैं जो अपवित्र और निकम्मे हों। यदि कोई पुरानी चारपाई हो जिसके पाए टूटे हुए हों तो वह उसे लेटने के लिये दी जाती है। यह चारपाई इस तरह के अगले अवसर के लिये उस अंधेरे कोने में खड़ी रहती है। अथवा उसके लिये गोबर के उपलों या पत्थरों से जमीन के ऊपर सहारा बना दिया जाता है। और कोई मनुष्य उस जगह को झाड़ने, साफ करने या धोने में समय नष्ट नहीं करता जब तक कि सब कार्य समाप्त न हो जावे।

दाई का वर्णन सुनिये —

जब दर्द शुरू होता है तो दाई बुलाई जाती है। यदि अकस्मात्

जिस समय दाई के पास बुलावा पहुंचा उस समय वह साफ़ कपड़े पहने हुए है तो चाहे कितनी भी जल्दी क्यों न हो, वह पहले अपने कपड़े उतार कर दूसरे गन्दे कपड़े पहन लेती है। यह गन्दे कपड़े इसी काम के लिये रखे रहते हैं, और अनेक रोगी ज़च्चाओं से सम्पर्क में आने के कारण रोगों के कीटाणुओं से भरे रहते हैं। इस प्रकार गन्दे से गन्दे कपड़े पहन कर अनेक रोग साथ लेकर, वह दाई अपने अभागे बलि के साथ उस गन्दे कमरे में बन्द हो जाती है।

यदि उस कमरे में कोई रोशनदान हो तो दाई उसे कचरे या घास फूस से बन्द करा देती है। कहा जाता है कि बच्चा पैदा होने के समय ताज़ी हवा नुक़सान करती है — इससे ज्वर हो जाता है। यदि परदे बनाने के लिये काफ़ी चीथड़े हों तो दाई उन्हें गाँठ कर उनके परदे बना कर दरवाज़ों में लटका देती है और उसी कोने में परदों के अन्दर दीवाल के सहारे ज़च्चा को लिटा देती है ताकि उसे बिल्कुल हवा न लगने पावे। इसके बाद और अधिक अंधेरा बनाने के लिये वह एक छोटी सी बत्ती तेल में भिगोकर जला लेती है अथवा बिना चिमनी की मट्टी के तेल की ढिबरी जलाती है जिन में से बुरी तरह धुंआ निकलता रहता है। इसके बाद किसी बर्तन में वह थोड़े से कोयले जलाती है। उसे चारपाई के नीचे अथवा ज़च्चा के पास रख देती है। इस आग का विषैला धुआँ भीतर की बदबू को और भी बढ़ा देता है।

दाई की शक्ल देखिये :—

मैं ने जो पहली दाई काम करते हुए देखी उसने ज्यों ही मैं कमरे

में घुमी तुरन्त कुछ विशेष बदबूदार मसाला मुट्ठी भर कर उस आग के ऊपर डाल दिया। इसका उद्देश्य यह था कि बच्चे या उसकी माँ को मेरी नजर न लग जावे। मसाला डालते ही उस से गहरा धुआँ निकला और लपट भी उठी। उस लपट की रोशनी में मैंने उसका चुड़ैल सा मुंह और जुँए भरे हुए बाल, उसके लटकते हुए चीथड़े और गन्दे चने देखे और उसने भी कीचड़ भरे और लगभग दृष्टि शून्य नेत्रों से उस बदबूदार धुए में मेरी तरफ देखा। किन्तु जब उसकी लपट से बिस्तरे में आग लग गई और उसके बेहोश मरीज के शरीर की ओर बढ़ चली तो उस आग को बुझाने के लिये वह दाई नहीं दौड़ी। वह देख ही न सकती थी और न उसे इतना होश था कि समझ सकती।

दाई की क्रियायें देखिये —

यदि बच्चा पैदा होने में देर हो जाय तो यह आशा की जाती है कि दाई इसका वास्तविक कारण बता सकेगी। वह अपना लम्बा, गन्दा हाथ जिसमें गन्दे छल्ले और कड़े पहने होती है और जिस पर अकथनीय रोगों के कीटाणु जमा होते हैं, जच्चा के पेट के अन्दर घुसेड़ देती है, जो कुछ उसे वहां मिलता है उसे खींचती मरोड़ती है। यदि बच्चा पैदा होने में अधिक देर और कठिनाई हो जावे और जच्चा का पति खर्च मंजूर करे तो एक दूसरी दाई बुलाई जाती है और फिर एक तीसरी दाई बुलाई जा सकती है और बच्चे को अलग अलग टुकड़ों में बाहर निकाला जाता है कभी एक टांग और कभी एक हाथ।

इस तरह की प्रसव वेदना तीन दिन, चार दिन, पांच अथवा कभी कभी छे दिन तक जारी रहती है। इस तमाम समय में जच्चा को कुछ

भी आहार नहीं दिया जाता—यही प्राचीन प्रथा है—और दाई अपनी सब पुरानी तरकीबें करती है। ज़च्चा को अपनी मुट्ठियों से दबाती है; उसे दीवाल के सहारे खड़ा कर देती है और अपने सर से उसके पेट में टक्करें मारती है। नंगी ज़मीन पर उसे सीधा लिटाती है, उसके हाथ पकड़ कर अपने गन्दे नंगे पैरों से उसकी जांघों को कुचलती है यहां तक कि डाक्टर लोग कहते हैं कि प्रायः दाई के लम्बे पैरों के नाखूनों से ज़च्चा का गोश्त चीथड़े चीथड़े हो जाता है। अथवा वह ज़च्चा को लिटा कर उसके बदन पर ऊपर नीचे चलती है जिस तरह कोई कपड़ों को रौंदता है। इसके अतिरिक्त वह अजीब चीज़ों की पोटलियां बनाती है, जड़ी बूटियों की, गन्दे बांध की, शरीफ़े के बीजों की या मिट्टी की या मिट्टी में लौंग, घी और गेंदे के फूल मिला कर, या छिलके और मसाले—गरज़े के कोई भी चरपरी चीज़ हो—और इन गोलियों को स्त्री की योनि में ठूस देती है ताकि बच्चा जल्दी पैदा हो। देश के बाज हिस्सों में, बकरी के बाल, बिच्छू के डंक, बन्दर की खोपड़ियें और सांप की केंचुल ऐसे अवसर पर उपयोग करने के लिये बड़ी अच्छी चीज़ें समझी जाती हैं।

दाई की असिस्टेन्ट का हाल सुनिये :—

तीर्थ स्थान बनारस में जो कि सनातन धर्म का गढ़ है, सात तरह के मेहतर होते हैं। वे सब अछूत गिने जाते हैं। पहिली श्रेणी के मेहतरों में से दाइयें होती हैं; सब से अन्तिम और सब से निम्न श्रेणी के मेहतरों में से आवलनाल काटने वाली होती हैं। आवलनाल काटना इतना निकृष्ट कर्म समझा जाता है कि काशी में मेहतरानी भी

सिवाय उन मेहतरानियों के जो सब से निम्न श्रेणी में है इस काम को करना गवारा नहीं करतीं।

इसलिये दरिद्र असवर्णीय दाई अपने साथ एक अपने से भी बत्तर दाई लाती है जो कि मा और नवजात बालक दोनों पर अपना हुनर आजमाती है।

नाल काटने के लिये कभी एक बास की खपची का उपयोग किया जाता है, कभी एक पुराने टीन के टुकड़े का, कभी एक जंग लगी हुई फील का, कभी एक ठीकरे या टूटे हुए शीशे का, कभी कभी जब आवलनाल काटने वाली के पास कोई औजार नहीं होता अथवा उसे आस पास कोई तेज धार की चीज दिखाई नहीं देती तो वह पड़ोसियों से कोई चीज मांग लाने के लिये निकलती है। एक बार मैंने यह शब्द सुने जिन्हें मैं जल्दी नहीं भूल सकती —'हे, हे, सुनती हो? मेरा चाकू बाहर दे दो! मुझे अभी तरकारी काटना बाकी है।

आवलनाल का बाहरी सिरा बिना मरहम पट्टी के इसी प्रकार छोड़ दिया जाता है। जहां ज्यादा एहतियात की जाती है वहां उस सिरे पर थोड़ी सी मट्टी या कोयला या गोबर और कई चीजें लगा दी जाती हैं। इन चीजों का असर अधिक बुरा होता है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि जो बच्चे अपने जन्म के समयकी मुसीबत से बच जाते हैं उनमें से एक बहुत बड़ी संख्या जबड़े बन्द होने या बदन ऐंठने से मर जाते हैं।

प्रसूता की मृत्यु के समय दाई क्या करती है —

देरात्रों के अतिरिक्त मुर्दे भूत भी इतने अधिक हैं

जितने कि समुद्र के किनारे बालू के कण। इनमें अधिक वृद्धि करना उचित नहीं।

सब से बुरे भूतों में उन मरी हुई स्त्रियों की आत्माएं गिनी जाती हैं जो कि प्रसव के समय बच्चा पैदा होने से पहले मर जाती हैं। यह भुतनियां निर्जन रास्तों और घरों में घूमती रहती हैं। उनमें डाह बहुत अधिक होती है। उनके पैर पीछे को मुड़े होते हैं।

इसलिये जब कभी कोई ज़च्चा जिस के अभी कोई बच्चा पैदा नहीं हुआ है, मरती हुई दिखाई देती है, तो दाई अपना यह कर्त्तव्य समझती है कि घर वालों की रक्षा के लिये उसी समय से उपाय करने लगे,—यद्यपि सम्भव है कि वह ज़च्चा कई दिन से दर्द में पड़ी हो और उसकी सूखी हड्डियां बच्चे को बाहर निकलने न देती हों।

दाई ऐसे अवसर पर सब से पहिले मिरचे लेकर मरती हुई ज़च्चा की आंखों मे रगड़ देती है, इसलिये ताकि उसकी प्रेतात्मा अन्धी हो जावे और बाहर न निकल सके। इसके बाद दाई दो लम्बी लोहे की कीलें लेती है और असहाय ज़च्चा के दोनों हाथ फैला कर हर एक हथेली को फ़र्श पर एक कील से कस कर गाड़ देती है — असहाय ज़च्चा इस व्यवहार को सब समझती है, और अपने भाग्य के सामने सर झुका देती है। इस कील गाड़ने का उद्देश्य यह होता है कि प्रेतात्मा ज़मीन में गड़ी रहे और निकल कर इधर उधर घूम कर जीवित लोगों को दिक़ न करे। इस प्रकार वह स्त्री मर जाती है और मरते दम तक करुणा के साथ देवताओं से अपने पूर्व जन्म के उन भयंकर पापों के लिये क्षमा याचना करती रहती है जिन का उसे यह फल मिल रहा है।

ऊपर का बयान यद्यपि भयंकर मालूम होता है तथापि इसके सबूत में बहुत से और विश्वसनीय डाक्टरों की गवाही पेश की जा सकती है जो कि भारत के दूर दूर के भागों में रह चुके हैं। इस अध्याय की सब मुख्य मुख्य बातें इसी तरह की गवाही के आधार पर और स्वयं मेरे व्यक्तिगत तजुरबे के आधार पर दी गई हैं।

दाई की उजरत —

दाई के कामों में यह भी शामिल है कि बच्चा पैदा होने के समय और उसके लगभग दस दिन बाद तक जच्चा के पास मौजूद रहे। इन लगभग दस दिनों के अन्दर घर का कोई दूसरा आदमी जच्चा के पास नहीं जाता, क्योंकि इतने दिनों तक जच्चा अपवित्र रहती है। इस समय के अन्दर रोगी जच्चा और उसके नवजात बालक का सारा काम दाई ही करती है। दस दिन के अन्त में दाई से यह भी आशा की जाती है कि वह उस अपवित्र कमरे को साफ कर और फर्श और दीवारों को गाय के गोबर से लीप दे।

दाई को मजदूरी लड़का हो तो अधिक मिलती है और लड़की हो तो कम। यह मजदूरी कहीं ज्यादा होती है और कहीं कम। धनाढ्य लोग इस समस्त सेवा के लिये अधिक से अधिक १० रुपए तक दे देते हैं, बशर्ते कि लड़का पैदा हुआ हो। किन्तु आम तौर पर खुशहाल लोग पूरी जन्म के लिये आठ आने देते हैं। गरीब लोग लगभग १० दिन की सेवा के बदले में दाई को बेटे के होने में दो या तीन आने और लड़की के होने में एक या डेढ़ आना देते हैं। दाई स्वयं दरिद्र से दरिद्र घर की होती है, इसलिये उसकी इतनी हैसियत नहीं होती

कि साबुन की एक टिकिया, या थोड़ी सी साफ़ रुई ख़रीद सके। दाई को यह चीज़ें भारत में कहीं नहीं सूझतीं। और इस प्रकार यह समस्त हत्या जारी रहती है।

प्रसूत गृह और दाई के चित्र को मैं ने सम्पूर्ण रूप में उपस्थित किया है। मैं इस के कल्पित अथवा वास्तविक होने पर बहस करना नहीं चाहती। यह तो पाठक स्वयं ही देख लेंगे। इस चित्र के सम्पूर्ण रूप से उद्धृत करने में मेरा वास्तविक उद्देश्य यह दिखाना है कि इस पुस्तक के जन्म दाताओं को इस भयंकर चित्र ने ही इसका भारत माता नामकरण करने के लिये प्रोत्साहित किया है। उन्हें इस चित्र में भारतमाता का सम्पूर्ण स्वरूप दिखाई देता है। उन्हों ने इस चित्र को संसार के और हमारे सन्मुख उपस्थित करके भारत की वर्तमान स्थिति की वास्तविकता दर्शाने का प्रयत्न किया है। इस में सन्देह नहीं कि यदि भारत माता का यह वास्तविक चित्र है तो गन्दगी, दुर्बलता, अज्ञान, अन्धविश्वास और दरिद्रता की संसार में इस प्रकार की कोई अन्य उपमा मिलना असम्भव है। जिस देश का शरीर गन्दे, दुर्गन्धमय अनेकानेक रोगों के कीड़ों से भरे हुये चिथड़ों में पोशित होता है, जिसके बालों में जुयें हैं, जिस के हाथ पांव के नाख़ून इतने बढ़े हुये हैं कि शिकारी पशु के समान वह मनुष्य के शरीर के चिथड़े उड़ा सकता है, जिस की असीम अज्ञानता और अन्ध विश्वास अकथनीय है और जिसकी दरिद्रता का

यह हाल है कि अपने और अपने कुटुम्ब के पालन पोषण के लिये उसे पन्द्रह पन्द्रह दिन की सेवा और परिश्रम की एवज में अधिकतर चार आने और आठ आने पर ही संतोष करना पड़ता है,—ऐसे अभागे देश के दुःखों का क्या अनुमान हो सकता है। यदि इस चित्र को देख कर हम व्याकुल हो उठें और पीड़ित हृदय, अश्रुपूर्ण नेत्र, और दबी जबान से अपने इस चित्रकारों की मुख पात्र मिस मेयो से पूछें कि —

'क्यों मिस मेयो अन्तिम दो सौ वर्ष से तुम्हारे ही सजातीय जिनकी तुम मुख पात्र हो हमारे राजा हैं, रक्षक हैं, और अभिभावक हैं। इन दो सौ वर्ष के पहिले भारतवर्ष की सभ्यता और सम्पन्नता की समस्त संसार में धूम थी। आज यह देश इस अद्भुत अभागिनी दाई के समान क्यों हो गया? और इसकी यह दुर्दशा किसने बना दी?" -

भारत की समस्त शिक्षित श्रेणी यही प्रश्न कभी क्रोध, कभी घृणा, और कभी पीड़ा के साथ अपने शासक मंडल से पूछती रहती है। संसार के अन्य अन्य देशों की प्रबल और प्रभावशाली साम्यवादी और श्रमजीवी समितियों के सदस्य भी अक्सर यही पूछते रहते हैं और समय समय पर पश्चिम और अमेरिका के धुरन्धर राजनीतिज्ञ इंगलिस्तान को किसी विषय में दबाने के लिये इसी प्रश्न को उठा बैठते हैं। इसलिये हमारे राजनीतिज्ञ इस प्रश्न से अपरिचित

नहीं और 'मदर इण्डिया' के पृष्ठ पृष्ठ पर इसी प्रश्न का उत्तर है। वास्तव में इसी प्रश्न के व्यंग को मिटाने और भारत माता की वर्तमान भयंकर स्थिति का उत्तरदायित्व अपने सर से हटाने के लिये ही 'मदर इण्डिया' की कल्पना और रचना की गई है।

मैं समझती हूँ कि इस विशाल प्रबन्ध और इस आश्चर्य-जनक योग्यता के साथ ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने कभी पहले इस प्रश्न का उत्तर संसार के सन्मुख उपस्थित नहीं किया। कहने को यह पुस्तक एक पश्चमीय कुमारी को कच्चे अनुभवों और उत्तरदायित्वहीन सम्मतियों का ज़ख़ीरा है। किन्तु वास्तव में यह इससे बहुत गम्भीर है। यह एक अन-भिज्ञ कुमारी के अनुभव नहीं बल्कि इतिहास के आरम्भ से आजतक जो कुछ भारत के विरुद्ध कहा गया है या कहा जा सकता है उस सब की एक अपूर्व प्रदर्शनी है। इस सुयोग्य पुस्तक में अङ्गरेज़ी राज के भारत में क़ायम रहने की जितनी दलीलें इन्सानी मस्तक में आ सकती हैं सब मौजूद हैं। साथ ही साथ भारत वासियों की दृष्टि को राजनैतिक बातों से हटा कर अन्य अन्य क्षेत्रों की ओर मोड़ देने के लिये जो कुछ भी अधिक से अधिक योग्यता के साथ कहा जा सकता है, कहा गया है। और अन्त में मिस मेयो की फलवती कल्पना और "फुदकती और चहचहाती हुई" ज़बान ने इन गम्भीर पहलुओं को ऐसे सरल आकर्षित और रोचक ढंग से पेश

किया है कि एक साधारण से साधारण मनुष्य उसे पढ और समझ सके।

'मदर इण्डिया' में हमारे ऊपर दिये हुये मौलिक प्रश्न के जो उत्तर दिये गये हैं, इन उत्तरों से हमारा सतुष्ट न होना स्वाभाविक है। किन्तु इस लिये कि 'मदर इण्डिया' के इस अनुवाद के पाठक भी इस महत्वपूर्ण प्रश्न के दोनो पक्षों को पूर्ण रीति से जाँच सकें, मैं दोनों पक्षों को एक कल्पित वाद विवाद के रूप में उपस्थित करती हूँ। इस पुस्तक के परिशिष्ट भाग में उन्हें 'मदर इण्डिया' के उन सारे निर्लज्ज आक्षेपों के सम्पूर्ण प्रतिउत्तर मिलेंगे जो मिस मेयो ने हमारी समाज पर किये हैं। मैं इस स्थान पर मिस मेयो से केवल उनके राजनीतिक आक्षेपों के सम्बन्ध में दो दो बातें करूँगी।

———o———

पश्चिमी साम्राज्यवाद और भारत

के विषय में

मिस मेयो से दो दो बातें

पश्चिमीय साम्राज्यवाद

के विषय में

मिस मेयो से दो दो बातें

(वाद विवाद)

मौलिक प्रश्न

मिस मेयो, मैं ने सुना है कि भारत वर्ष एक समय संसार के सभ्य देशों में गिना जाता था। कला कौशल तथा औद्योगिक उन्नति में अन्य देश इसका मुकाबिला नहीं कर सकते थे। अपने जीवन को सुखमय बनाने के लिये जिन जिन वस्तुओं की इसे आवश्यकता थी उन्हें स्वयं बना लेता था। अन्य अन्य देशों के व्यापारी यहां के बने हुए पदार्थ इसी देश के बने हुए जहाजों में संसार के दूर से दूर प्रदेशों में ले जाते थे। एक विशाल नदी के अनन्त प्रवाह के रूप में अन्य देशों का सोना चांदी ढुल ढुल कर इस देश में आता रहता था। मिस मेयो आज यह संसार का विख्यात व्यापारी तुम्हारी चित्रित अद्भुत तथा वीभत्स टाई के समान भिखारी क्यों हो गया? इसका समस्त धन, सम्पत्ति, इसकी

कला कौशल, इसका वैभव, इसका आत्म सम्मान सब क्या हुआ? प्रति दिन यहाँ अकाल क्यों रहता है? इस देश के अभागे बच्चे ऐसे दुर्बल ऐसे रोगाग्रस्थ क्यों हैं? और क्यों अन्य देशों को छोड़कर संसार की समस्त विकराल महामारियों ने इसी देश को अपना घर बना लिया है। मिस मेयो, सम्भव है कि यह ठीक न हो परन्तु हमारे धार्मिक पुस्तकों में तो देशों की इस प्रकार दुर्दशा का केवल एक ही कारण बताया है। वह यह है :—

> "जिस समय कोई राजा राज्यव्यवस्था का सर्वथा तिरस्कार करके अपनी प्रजा पर अत्याचार करने लगता है उस समय जो युग प्रारम्भ होता है उसी का नाम कलियुग है। उस समय अनेक महामरियां फैलने लगती हैं, लोगों की अकाल मृत्यु होने लगती है, स्त्रियां वैधव्य को प्राप्त होती है, वर्षा समय से नहीं होती, और अन्न की उपज कम हो जाती है?"
>
> —महाभारत, शान्ति पर्व, अध्याय ६९ श्लोक ९१—९५

क्यों मिस मेयो, क्या कहती हो? क्या यह वाक्य असत्य है? यदि यह असत्य है तो तुम्हीं हमारे देश के पतन का वास्तविक कारण बता दो?

मिस मेयो का उत्तर

"हे बुद्धिहीन महिला! इन जरा जीर्ण पुस्तकों को पढ़ने से ही तुम लोगों की मति भ्रष्ट हो जाती है। इन्हीं का प्रताप है

कि आज इस देश में चारों ओर अंधकार ही अंधकार दिखाई देता है। तुम लोगों को पश्चिमीय शिक्षा भी अधकच्ची मिलती है इसीसे इस प्रकार की बहकी बहकी बात कहती हो। सुनो! एक तुम्हीं नहीं बल्कि संसार की सभी जातियां अपने प्राचीनतम युगों के स्वर्णमय होने का स्वप्न देखा करती हैं। परन्तु इन स्वप्नों में कोई सार नहीं होता।

लेकिन अगर मान भी लिया जाय कि रामायण तथा महा भारत के युग में यह देश सभ्य और सम्पन्न था तो उस स्वर्गीय युग के आज स्वप्न देखने में क्या लाभ है। सच तो यह है कि मैं तुम्हारा प्राचीन कालिक वैभव का रोना सुनते सुनते थक गई। यदि मान भी लिया जाय कि चन्द्रगुप्त चक्र-वर्ती सम्राट था — अशोक उस से भी अधिक पराक्रमी और शक्तिशाली था, परन्तु सोचो तो कि यह सब नरेश किन युगों के हैं? और इस प्रकार के भारतीय इतिहास में के नाम हैं? इन इने गिने नामों की पुष्टि पर भारत के असीम उन्नति और विकाश का दीप्यमान चित्र बनाना, फिर उस चित्र के लोप हो जाने पर बिलख बिलख कर विलाप करना यह तुम लोगों का ही काम है।

सुनो! प्राचीन काल के उत्तरदायित्वहीन राजा आकाश के तारों के समान हैं। वे स्वयं कितने ही अलौकिक तथा प्रकाशपूर्ण क्यों न हों, परन्तु इनके चारों ओर अन्धकार ही

अन्धकार रहता है। इसके अतिरिक्त भारत में तो मध्य एशिया की आक्रमणकारी जातियां सदा उत्तर की ओर से आती रहती थी। आज सिथियन्स आये, कल तुर्क, परसों मुग़ल दो दिन बाद पठान—सदा यही तांता बंधा रहता था। जो आया उसने लूटा और बरबाद किया। ऐसी अवस्था में यह अभागा देश कैसे पनप सकता था।

मुग़लों के समय में अवश्य लगभग दो सौ वर्ष के लिये कुछ दम लेने का अवसर इस देश को मिल गया था। सो इन मुसलमानों ने जो कुछ किया वह तो आज सबही जानते हैं। ऐसी अवस्था में जो कुछ थोड़ा बहुत सुख चैन इस देश में दिखाई देता है वह मेरे ही सजातियों की स्वार्थ रहित और शक्तिशालीन शासन तथा देश रक्षण का प्रभाव है। वरना तुम्हारा वही हाल आज भी होता जो सदा से था।

पूर्वीय विजेता और पश्चिमीय साम्राज्यवाद

प्रति उत्तरः—मिस मेयो, मध्य एशिया की विजेता क़ौमें प्राचीन काल से अर्वाचीन युग तक भारत में ही नहीं बल्कि समस्त संसार में फैलती रही हैं। किन्तु वे जहां गईं, उसी देश को उन्होंने अपनी मातृभूमि बनाकर सदा के लिये अपना लिया। वे मध्य एशिया को लौट कर न जाती थी, न एक बार उसे तज देने के बाद, फिर उनका उस देश से कोई विशेष सम्बन्ध रह जाता था।

इसलिये जिस देश म ये कोमें जाती थी वहा की सभ्यता तथा सम्पन्नता को इनके आगमन से प्राय एक क्षणिक हानि ही पहुँच कर रह जाती थी। वहा की सभ्यता के किसी भी आधारिक स्तम्भ, अर्थात् कृषि, वाणिज्य, दस्तकारी और कला कौशल आदि को कोई विशेष हानि नहीं पहुचती थी। क्योंकि इन समस्त चीजों को कायम रखना तथा उन्नति देना, एक तो इनके राजधर्म का अंश होता था, दूसरे इनके स्वार्थ उपार्जन का भी मुख्य साधन बन जाता था। इसीलिये इस देश में भिन्न भिन्न कौमों का आवागमन रहते हुए भी भारत सदा उन्नति करता रहा।

किन्तु मिस मेयो, अङ्गरेजा के यहा आने के समय से यह सब हालत बदल गई। अङ्गरेज विजेताओं ने भारत को अपनी मातृ भूमि नहीं बनाया। यह भूमि केवल उनकी प्राप्त भूमि ही बनी रही। इस देश म न रहने के कारण ये लोग जो कुछ धन सम्पत्ति यहा से उचित अनुचित उपायों से एकत्रित करते थे, उस पूर्वीय विजेताओं के समान सहृदयता के साथ यहीं खर्च कर देने के बजाय, देश से बाहर ढो ले जाते थे। यह केवल मेरी ही सम्मति नहीं, देखो तुम्हारे अर्थ शास्त्र के जन्मदाता, एडम स्मिथ, ईस्ट इण्डिया कम्पनी की हुकूमत के सम्बन्ध म क्या लिखते हैं —

" यह भी एक विचित्र शासन पद्धति है जिस मे शासक मण्डल का प्रत्येक सदस्य अपना शासन कार्य छोड कर प्रतिक्षण

देश से चल देने की धुन में लगा रहता है। और जहां एक बार अपनी जमा की हुई सारी पूंजी लेकर यहां से चल देने का मौक़ा उसे मिला फिर उसकी ओर से यह देश जहन्नुम में भी जाय तो उसे कोई परवाह नहीं।"

—एडम स्मिथ, 'वेल्थ आफ़ नेशन्स,' चेप्टर ७ पार्ट ३

इसी शासक मण्डल के सदस्यों को एडमंड बर्क ने उन 'शिकारी परिन्दों' के समान बताया है जो आए शिकार किया और उड़ गए,—न किसी से नाता, न रिश्ता, न आने की ख़ुशी, न जाने का ग़म।

इस प्रकार की शासन प्रणाली किसी भी देश के लिये आपत्तिपूर्ण हुए बिना नहीं रह सकती। इस आपत्ति के आते ही सब से पहले कला कौशल, उद्योग धंधों और विज्ञान का नाश हो जाता है। क्योंकि किसी भी देश में इन कोमल पौदों को हरा भरा रखने के लिये देश के राजा तथा श्रीमन्तों को इन्हें सदा प्रेम से सींचते रहना आवश्यक है। प्रत्येक देश की कलाकौशल और उद्योग धन्धों में एक दूसरे से महान अन्तर होता है। पूर्वीय विजेता इसी देश में बस जाने के कारण शीघ्र ही यहां के इन पुष्पों के सौन्दर्य और सुगन्ध से मोहित हो जाते थे और उनकी रक्षा तथा उन्नति में अपना गौरव समझने लगते थे। अङ्गरेज़ विजेताओं को इस देश में रहना नहीं था इसलिये यहां की कला कौशल के प्रोत्साहन की न उन्हें आकांक्षा ही होती थी, न अवसर मिलता था। इस सब

का नतीजा यह हुआ कि हमारी समस्त कला कौशल, विज्ञान, और सूक्ष्म उद्योग मुरझा कर रह गए। दूसरी आपत्ति यह हुई कि सरकारी कर्मचारियों और प्रजा में कोई विशेष सहानुभूति उत्पन्न न हो सकी। पूर्वीय विजेता देश में रहने के कारण कुछ ही समय के अन्दर देश निवासियों में घुल मिल जाते थे। किन्तु अङ्गरेजी शासक देश वासियों से सदा विलग रहे। यही कारण है कि अङ्गरेजी राज इस देश में केवल एक निर्जीव, हृदयशून्य काल चक्र रूपी मैशीन बन कर रह गया।

तीसरी इस से भी अधिक भयकर आपत्ति एक और थी। पूर्वीय विजेता अधिकतर राजकीय और उच्च वंशों के होते थे। परन्तु अङ्गरेज विजेता मामूली सौदागर थे। जिनका इस देश को पराजित करने का वास्तविक उद्देश्य केवल धन कमाना था।

देखिये इस सम्बन्ध में भी आप के सुविख्यात एडम-स्मिथ क्या कहते हैं —

> "देश के शासकों की हैसियत से ईस्ट इण्डिया कम्पनी का वास्तविक लाभ इसमें है कि जो माल यूरोप से उनके भारतीय राज में लाया जावे वह वहां सस्ते से सस्ता बिक सके। और जो माल भारत से यूरोप खरीद कर ले जाया जाय उसकी वहां अधिक से अधिक कीमत वसूल हो अर्थात् वह यूरोप वालों के हाथ महगे से महगे दामों पर बेचा जावे। किन्तु *कम्पनी का व्यापारिक हित या स्वार्थ इसके सर्वथा विपरीत है।* शासकों की हैसियत से उसके और देश के हितों में किसी

प्रकार का कोई भेद या अन्तर नहीं हो सकता। किन्तु सौदागरों की हैसियत से, उनके हित से देश का अहित और देश के हित से उनका अहित होना स्वाभाविक है। ....

"कम्पनी के नौकरों के हाथों में समस्त व्यापार दे देने का फल यह है कि जिस चीज़ का भी वे लोग व्यापार करना चाहें उसकी पैदावार घटने लगती है, चाहे वह बाहर भेजने के लिये हो, और चाहे देश में खपाने के लिये। इसका परिणाम यह होता है कि सारे देश की उपज गिरने लगती है, और मनुष्य संख्या घटने लगती है। इससे हर क़िस्म की पैदावार, यहां तक कि वे चीज़ें भी जो मनुष्य जीवन के लिये आवश्यक हैं, कम होने लगती है। कम्पनी के नौकर जिस चीज़ का व्यापार करना चाहते हैं, वे जितना माल ख़रीद सकते हैं, और मनमाने फ़ायदे से बेच सकते हैं, उतना ही माल देश में फिर पैदा होने लगता है।

"फलतः इस प्रकार की कम्पनी का शासन सर्वथा हानिकारक है। इससे जिस देश की वह कम्पनी होती है उसे भी थोड़ी असुविधा अवश्य होती है, परन्तु जो क़ौम दुर्भाग्यवश इस कम्पनी के शासन में आ जाती है वह तो सर्वथा नष्ट ही हो जाती है।"

—एडम स्मिथ, 'वेल्थ आफ़ नेशन्स,' चेप्टर ७ पार्ट ३

मिस मेयो, किसी देश की तिजारत के मिटजाने के बाद प्रजा के उस भाग की जीविका का भार भी जो पहले तिजारत पर निर्भर था कृषि पर आ पड़ता है, और फिर कृषि भी अकेली समस्त प्रजा के भार को न उठा सकने

के कारण उस भार के नीचे कुचल कर रह जाती है। जनता भोजन और वस्त्र तक के लिये तरसने लगती है। स्वास्थ्य गिरने लगता है। कष्ट और रोगों का मुकाबला करने की शक्ति बिल्कुल नष्ट हो जाती है। देश में एक के बाद एक अकाल पड़ता है। और इन अकालों के पीछे पीछे, तथा इन्हीं के फल रूप, हैजा, ताऊन, इनफ्लुएन्जा जैसी भयकर महामारियों के प्रेत समस्त देश में भ्रमण करने लगते हैं। और जनता चारों ओर इस प्रकार मरती मिटती दिखाई देती है जिस प्रकार तेज आंधी में विशाल वृक्षों की पत्तियां झड़ती हैं। यही हाल आज भारत का है। जो शासन प्रणाली अङ्ग्रेज विजेताओं ने इस देश में स्थापित की उस में देश का अपनी वर्तमान दुर्दशा को पहुँच जाना अनिवार्य था।

पश्चिमी साम्राज्यवाद के अन्य विनाशक पहलू

मिस मेयो —हे विचार शून्य महिला ! यह तुम क्या कह रही हो। निस्सन्देह यह भी अङ्गरेजी छत्रछाया और पश्चिमी शिक्षा का प्रताप है जो तुम्हें इस प्रकार के विचार प्रगट करने का साहस हुआ। तुम प्राचीन विजेताओं को पश्चिमी विजेताओं से अच्छा बताती हो। तुम उन स्वेच्छचारी भोग विलास में डूबे हुए पूर्वीय विजेताओं के दुर्बल शासनों की तुलना उन पश्चिमी शासनों से करती हो जिनकी क्षमता, और न्यायपरता, जिनके व्यापारिक सुप्रबन्ध और जिनकी सैनिक शक्ति

इस समय समस्त संसार को चकाचौंध कर रही है। जो लाभ अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार द्वारा एक मुल्क से दूसरे मुल्क को पहुँचता है उस की तुलना तुम पुराने विजेताओं की लूट मार और अकथनीय अत्याचारों से कर रही हो, जो वे अपनी अधम कामनाओं की तृप्ति के लिए किया करते थे। क्या तुम यह भूल गईं कि पुर्वीय विजेता धन की लूट के साथ साथ जनता के धर्म और मान मर्यादा को भी लूट लिया करते थे? सैकड़ों, गिरे हुए मंदिर, सैकड़ों टूटी हुई मूर्त्तियां अपनी मौन ज़बानों से अपनी दुःख गाथा संसार को सुना रही हैं। परन्तु तुम्हारे कान बन्द हैं। पश्चिमी साम्राज्यवाद से तुम्हें इतना द्वेष है कि तुम महमूद ग़ज़नवी, तैमूर लंग, नादिर शाह इत्यादि को पश्चिमीय विजेताओं से अच्छा बनाती मालूम होती हो। अंगरेज़ी राज्य ने यदि और कुछ न भी किया तो कम से कम ऐसे पिशाचों का इस देश में आना तो सदा के लिये बन्द कर दिया। इसका तुम्हें और तुम्हारे देश वासियों को दिल से कृतज्ञ होना चाहिये।

प्रत्युत्तरः— मिस मेयो, आप ख़फ़ा न हों। मैं उन पुराने विजेताओं का ज़िक्र कर रही हूँ जिन्हों ने इस देश में साम्राज्य स्थापित किये। महमूद ग़ज़नवी, तैमूरलंग नादिर शाह इत्यादि विजेता न थे वे केवल आक्रमक थे। उन के आक्रमण देश को हानि अवश्य पहुँचाते थे, किन्तु, केवल

एक क्षण के लिये, जिस से देशके वास्तविक जीवन, अर्थात् कृषि, व्यापार, कला कौशल, इत्यादि को कोई स्थायी हानि नहीं पहुँचती थी। इनकी लूट को देश की लूट नहीं कह सकते। वह केवल एक सामयिक, स्थानीय और परिमित लूट होती थी। विजयी राजा और उसके सिपाही पराजित राजा उसके सिपाहियों का और प्रजा का जो कुछ माल हाथ लगा लूट ले जाते थे। परन्तु देश में कोई स्थायी कपट प्रबन्ध इस प्रकार का नहीं कर जाते थे जिस से देश की समस्त आय उन के आधीन हो जावे, देश के समस्त सिविल और फौजी ओहदे उनके हाथ में रहें, और देश का व्यापारिक प्रबन्ध भी वे ही किया करें। मिस मेयो! उन पूर्वीय आक्रमणकर्त्ताओं में जिस का आपने नाम लिया और पश्चिमी साम्राज्यवादियों में यही महान अन्तर है। देश की धन सम्पत्ति दोनों सूरतों में देश के बाहर चली जाती है। परन्तु पूर्वीय आक्रमण द्वारा एक क्षणिक और परिमित रूप में, और पश्चिमीय साम्राज्यवाद द्वारा एक व्यापक चिरस्थायी रूप में। इसलिये पश्चिमी साम्राज्यवाद का प्रभुत्व मानों महमूद गजनवी के एक विशाल, व्यापक और अनन्त कालिक हमले के समान है।

मिस मेयो! आप चकित क्यों होती हैं? मैं अपना मतलब और अधिक साफ कर देने का प्रयत्न करती हूँ। सुनिये, मैं आप को इतिहास की एक गुप्त घटना सुनाती हूँ।

यह घटना पुस्तकों में नहीं मिलती, परन्तु सम्भव है कि आप इस की सचाई पर विश्वास करलें। सुनिये,

प्राचीन काल में दक्षिण एशिया में भारत नाम का एक बड़ा समृद्धिशाली देश आबाद था। उस की राजधानी इन्द्रप्रस्थ थी, और वहां का राजा बहादुरशाह था, जो पूर्वीय विजेताओं के एक प्रसिद्ध वंश की सन्तान था। इस वंश के तीन सौ वर्ष के लगातार शासन काल में इस देश ने सभ्यता, व्यापार, कला कौशल, कृषि तथा जातीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपूर्व और अद्भुत उन्नति की थी। और अपने समकालीन अन्य देशों में धन वैभव और समृद्धि के लिये सर्वोच्च ख्याति प्राप्त की थी।

मध्य एशिया के एक पराक्रमी बादशाह महमूद ग़ज़नवी ने इसकी कीर्ति सुनी। इस बादशाह का अपना देश बड़ा दरिद्र और तमावृत था जिसने सृष्टि के आदि से उस समय तक सभ्यता के किसी क्षेत्र में किसी तरह की कोई उन्नति न की थी। धन की लालसा में एक छोटी सी सेना लेकर वह भारत में घुस आया, और व्यापारियों के रूप में यहां क़दम जमा कर धीरे धीरे समस्त भारत पर अधिकार जमा लिया। आरम्भ में कुछ समय तक तो इस के साथियों ने अटूट लूट मचाई और ग़ज़नी ही के अनेक विद्वानों के हिसाब से लगभग १९,००,००,००,००० उन्नीस अरब रुपये ग़ज़नी को ढो कर ले

गए। परन्तु कुछ समय के बाद उसने देश के शासन का स्थायी प्रबन्ध इस रूप में किया —

१—जितना रुपया उसका और इसके देश निवासियों का भारत को आधीन बनाने में खर्च हुआ था, एक एक पाई जोड़ कर उसे उसने भारत के "कौमी कर्ज" की मद में डाल दिया, और यह निश्चित कर दिया कि देश की सालाना आमदनी में से दस करोड़ रुपये सालाना इस कर्ज के सूद के नाम से प्रति वर्ष गजनी जाया करें।

२—देश की "कौमी" आमदनी को बढ़ाने के नाम पर उसने हजारों माफिया और वसीके इत्यादि जो देश के कला कौशल, शिक्षा, दीक्षा और धर्मार्थ कार्य्य के लिये बहादुर शाह के पूर्वजों के समय से और उनके भी पहले से चले आते थे अधिकतर जब्त कर लिये। और इस प्रकार "कौमी" आमदनी को पहले से बहुत अधिक कर दिया।

३—इस "कौमी" आमदनी के वसूल करने, उस का हिसाब रखने और भारत वासियों के आपस के झगड़े, मुकदमें तय करने के लिये और देश की रक्षा के लिये जो प्रबन्ध बहादुरशाह और उस के पूर्वजों के समय से कायम थे उन्हें उसने उलट पुलट कर दिया। और नए प्रबन्धों का संचालन बहादुरशाह और देशी श्रीमन्तों, नरेशों और देशी कर्मचारियों से "कौमी लाभ" के नाम पर यह कह कर ले लिया कि वे लोग भोग विलास में लीन रहते हैं।

४—इन सब को निकाल कर "सुशासन" और दृढ़प्रबन्ध के नाम पर महमूद ग़ज़नी ने यह हुकुम दे दिया कि जितने फ़ौजी और ग़ैर फ़ौजी ओहदे है, उन सब पर केवल ग़ज़नी निवासी ही नियत किये जावें, कोई भारतनिवासी इन ओहदों पर नियुक्त न किया जावे। इन विदेशी कर्मचारियों के बड़े से बड़े वेतन नियतकर के जो संसार में अन्य किसी जाति के सरकारी कर्मचारियों को नहीं दिये जाते, "क़ौमी" आमदनी में से साठ करोड़ फ़ौजी और चालीस करोड़ ग़ैर फ़ौजी मदों के लिये नियत कर दिये।

५—फिर ग़ज़नी में एक दफ़्तर भारत शासन की देख भाल और नियंत्रण के लिये खोला। भारत के विदेशी सरकारी कर्मचारियों और उनकी सेवाओं आदि की पेन्शनें मुक़र्रर की गईं। और इसी प्रकार के अन्य अन्य ख़र्चों के लिये हुकुम दे दिया गया कि "क़ौमी" आमदनी में से तीस करोड़ रुपये प्रति वर्ष ग़ज़नी को भेज दिये जाया करे।

"६—इस राजनैतिक प्रबन्ध के साथ साथ उसने भारत के व्यापार कृषि इत्यादि में भी इसी तरह के गम्भीर परिवर्तन कर डाले। 'क़ौमी" आमदनी को बढ़ाने के नाम पर मालगुज़ारी के पुराने स्थायी प्रबन्ध को मिटा दिया और आइन्दा के लिये यह आज्ञा दे दी कि देश भर में हर दस या बीस वर्ष के बाद नए सिरे से जांच की जावे और खेतों की माल गुज़ारी बढ़ा दी जाया करे।

७—व्यापार में यह प्रबन्ध कर दिया कि समस्त सरकारी माल गजनी से खरीदा जावे, और भारत के कपड़ों इत्यादि के तमाम कारखाने जो केवल भारत ही की समस्त आवश्यकता को पूरा नहीं करते थे बल्कि संसार के अन्य अनेक देशों को भी अपना माल पहुंचाया करते थे, उचित अनुचित उपायों से बन्द करवा दिये और स्वयं भारत के लिये कपड़ा बनाने का प्रबन्ध गजनी में करवा कर करीब साठ करोड़ रुपये सालाना के जो भारत के कारीगरों को मिलता था गजनी के नए कारीगरों को मिलने का प्रबन्ध कर दिया।

८—इन सब "कौमी" प्रबन्धों को दृढ़ और स्थिर रखने के लिये इस आशङ्का से कि कहीं देश निवासी इस उलट पुलट पर अपने जातीय जीवन को हानि न पहुंचा दें देश निवासियों से हथियार छीन लिए, और यह हुक्म दे दिया कि कोई भारतीय शस्त्र न बांधे और शस्त्र चलाना न सीखने पावे।

यह सब अपूर्व प्रबन्ध करके यह महमूद गजनवी गजनी में जा बैठा। इसके समय में और इसकी मृत्यु के बाद भी दो सौ वर्ष तक बराबर यह प्रबन्ध कायम रहा, और प्रतिवर्ष भारत से गजनी को इस "कौमी स्वत्व" के लिए अगण्य धन पहुंचता रहा। इन दो सौ वर्ष में इस [illegible] कारण गजनी और भारत की अवस्था में एक [illegible] उत्पन्न हो गया।

[illegible] अलबेरूनी

[illegible] [illegible] दरिद्र, [illegible]

दाई के समान हो गया जिसका विकराल चित्र आप ने अपनी पुस्तक में खींच कर उसका नाम " मदर इंडिया " रखा है।

मिस मेयो, पूर्वीय आक्रमकों और पश्चिमी साम्राज्य-वाद में यही अन्तर है। अब आप स्वयं बताइये कि इन दोनों में कौन अच्छा है, और किस से देश को अधिक हानि पहुँचती है। इसी भीषण दृश्य पर परदा डालने के लिये आप और आपके सजातीय हमें महमूद गज़नी की याद दिलाते हैं और हमारे साम्प्रदायिक अन्ध विश्वासों और अन्धे जोश से फ़ायदा उठाने के लिये हमारा चित्त सदा ढये हुए मंदिरों, कटी शिखाओं और टूटे जनेउओं की ओर ले जाते हैं। अभी हमारे बुरे दिन गए नहीं। हम आपकी बातों में फंस जाते हैं। किन्तु यदि हमें संसार में जीवित रहना है तो वह दिन दूर नहीं कि अपनी नींद से उठ कर हम आपके इस भ्रमजाल को तोड़ डालेंगे।

सुनिए, आप हमें यह याद दिलाती हैं कि आपके सजातियों ने हमारे देश को महमूद गज़नवी जैसों के हमले से सुरक्षित कर रखा है। परन्तु आप यह भूल गईं कि जब गज़नवी जैसों का ज़माना था तो वे लोग केवल भारत ही की ओर नहीं पश्चिम की ओर भी गए थे। बनारस की पवित्र पुरी को ही नहीं वरन बिज़ेण्टाइन की पवित्र राजधानी कुस्तुनतुनियां को भी इन्हों ने अपने आधीन कर लिया

गा और आज तक भी वह उन्हीं के कब्जे में है। जब आप स्वयं अपनी रक्षा न कर सके तो दूसरों को क्या बचाते।

और सुनिये, जिस समय भारत आपके मजानियों के कब्जे में आया उस से कुछ ही पहले दो सौ वर्ष तक काबुल भारत का केवल एक प्रान्त रह चुका था। आज आप काबुल का नाम ले लेकर हम हव्वे की तरह डराते हैं। आपने काबुल को वर्षावर्ष पर्यन्त चौबीस लाख रुपया सालाना रिश्वत देकर समस्त भारत को अपमानित किया। फिर भी आप उसे अपने साथ न रख सकीं। जितना रुपया इस देश का काबुल में भारत की रक्षा करने के नाम पर आप ने खर्च किया है उतना रुपया महमूद गजनवी सात जन्म लेकर भी इस देश में न ले जा सकता था। मिस मेयो, फिर भी आप यह चाहती हैं कि हम आपकी इस अपूर्व सेवा के सदा कृतज्ञ रहें।

इङ्गलिस्तान की आदत

मिस मेयो —चुप रहो! चुप रहो! यह क्या कहती हो! पश्चिमी और पूर्वीय शासनों की तुलना करने का तुम्हारा ढंग गलत और भ्रान्त है। सुनो, यह तो तुम्हें मानना पड़ेगा कि पश्चिमीय सभ्यता में अनेक ऐसे अंश मौजूद हैं जिनका पूर्वीय सभ्यता में पता नहीं। और यह भी तुम्हें मानना पड़ेगा कि भारत के प्राचीन वैभव के स्वप्न सुन्दर तथा आनन्दमय अवश्य हैं किन्तु सच्चे नहीं। यदि सच्चे भी हों तो इन

मधुर लोरियों को गा गाकर अपनी घातक निद्रा को और भी गम्भीर बना लेने में कोई लाभ नहीं। यह खूब याद रखो कि अपने पतन का दूसरों को ज़िम्मेदार ठहराना देश की वास्तविक कठिनाइयों को सरल नहीं कर सकता।

प्रत्युत्तर:—मिस मेयो, मैं अपने पतन की ज़िम्मेदारी किसी दूसरे पर नहीं डालती। किन्तु जब तक हम इस पतन के वास्तविक कारणों को सम्पूर्ण रीति से समझ न लेंगे तब तक हम इनके दूर करने में सफल नहीं हो सकते। जब तक हम प्राचीन महमूद ग़ज़नवियों के पीछे दौड़ते रहेंगे तब तक हमारे लिये अपनी वर्तमान शासन पद्धति के वास्तविक रूप को समझ सकना असम्भव होगा। इसलिये जिस प्रकार आप ने एक अभागी, अशिक्षित, नयन विहीन, दुर्गन्धमय अछूत दाई के रूप में भारत को संसार के सन्मुख उपस्थित किया है, मैं भी उस शासन पद्धति का वास्तविक चित्र आप के सन्मुख उपस्थित करती हूँ जिसके अपनी पुस्तक में आपने अनन्त गुण गाये हैं। मेरा यह अटल विश्वास है कि जबतक वर्तमान शासन पद्धति में मौलिक परिवर्तन करके इसके समस्त अंगों को राष्ट्रीय बुनियादों पर क़ायम न कर दिया जाएगा तब तक हम अपने देश में कोई वास्तविक उन्नति नहीं कर सकते। इस लिये, मिस मेयो, मैं उन लोगों को जो आपकी तरह हमारी दृष्टि अपने जातीय जीवन की इस प्रधान आवश्य-

कता से हटा कर, अन्य अन्य बातों की ओर ले जाते हैं, देश के सच्चे पथ प्रदर्शक नहीं समझती। सुनिये, आप ने जो पूर्वीय और पश्चिमी सभ्यताओं का जिक्र किया, सो मुझ में भिन्न भिन्न सभ्यताओं के एक एक अंश को अलग अलग करके देखने की सामर्थ्य नहीं। परन्तु मैं इतना अवश्य कहती हूँ कि सोलहवीं शताब्दी से ले कर अठारहवीं शताब्दी तक यदि इङ्गलिस्तान की पश्चिमी सभ्यता का नमूना मान कर वहां के जातीय जीवन के किसी भी पहलू को देखा जावे तो वहां की सभ्यता में हमें कोई अपूर्व विशेषताएं नजर नहीं आतीं। आप स्वयं देख आपही के देश निवासी डे पर साहब अपनी गम्भीर, विचारपूर्ण और सुविख्यात पुस्तक "इन्टेलेक्चुअल डवलपमेन्ट आफ यूरोप" में क्या कहते हैं। सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ में इङ्गलिस्तान की सामाजिक अवस्था को देखिये —

सामाजिक अवस्था

सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में इङ्गलिस्तान के लोग सामाजिक और राजनैतिक दृष्टि से इतने पिछड़े हुए थे कि जिसका इस समय आम तौर पर हम लोग अनुमान नहीं कर सकते। इङ्गलिस्तान की जन संख्या उस समय ५० लाख से कम थी। और आगे बढ़ना बन्द हो गयी थी। इस आबादी के न बढ़ने का मुख्य कारण यह न था कि लोग देशी और विदेशी लड़ाइयों में मारे जाते थे, बल्कि मुख्य कारण यह था कि देश की साधारण आर्थिक स्थिति अत्यन्त गिरी हुई थी। उन दिनों

अधिक बच्चे पैदा करने का कोई कारण ही न था। इङ्गलिस्तान के राजनीतिज्ञों की कोशिशें इसी बात में लगाई जाती थीं कि आबादी को बढ़ने न दें। इस विषय में जो समस्त राज्य की नीति थी वही एक एक नगर की थी. इङ्गलिस्तान की उस समय की अवस्था इतनी उन्नत भी न थी जितनी की उस समय के दक्षिण अमरीका के पेरू नामक देश की थी।

वे अन्य स्थान पर कहते हैं:—

"बड़े बड़े ज़िलों की जगह जंगल खड़े हुए थे। चालीस चालीस और पचास पचास मील लम्बी दलदलें थीं, जिनमें ज्वर तथा अन्य अनेक रोग बढ़ते रहते थे। दूसरी ओर धार्मिक मठों की दिवारों के चारों ओर सुन्दर बागीचे, घास के हरे मैदान, सायेदार रास्ते और बहुत से कल कल नाद करने वाले चश्मे बह रहे थे। पथ शून्य जगलों में जहां पर मनुष्यों की आबादी होनी चाहिये थी, वहां हिरनों के झुंड के झुंड फिरते रहते थे। रेतीली पहाड़ियों पर खरगोश दौड़ते थे। ढालू मैदानों में पक्षी उड़ते रहते थे। किसानों की झोपड़ियां नर्कुलों या वृक्षों की टहनियों की बनी होती थीं जिनके ऊपर गारा फेर दिया जाता था। किसान के चूल्हे के ऊपर धुंआं निकलने के लिये किसी तरह की चिमनी न होती थी। किसान का भोजन प्रायः सूखी हुई घास को जलाकर उस पर तैयार किया जाता था। जिस तरह पर और जिस उद्देश्य से उस समय के इङ्गलिस्तान के किसान जीवन व्यतीत करते थे उससे मालूम होता था कि

उन का जीवन उन मेहनती पशुओं से किसी भांति बढ़कर न था, जो पास की नदियों में खोह बना कर रहते थे। सड़कों पर डाकू भरे हुए थे, नदियों पर समुद्री लुटेरे और लोगों के कपड़ों और बिछौनों में जूएं भरी रहती थीं। लोगों का आहार, आम तौर पर मटर, उर्द, मोठ इत्यादि और वनस्पतियों की जड़ें और दरख्तों की छाल होती थी। देश में कोई व्यापार न था जिससे दुष्काल को टाला जा सके। मनुष्य का जीना केवल ठीक समय पर वर्षा होने या न होने पर निर्भर था। आबादी पहिले ही कम थी किन्तु महामारियां और दुर्भिक्ष उसे प्रतिदिन और कम करते रहते थे। यह भी नहीं कि शहर के लोगों की हालत गांव के लोगों से अच्छी रही हो। शहर के लोग भुस के थैले का बिस्तरा बना कर उस पर सोते थे। और कोई गोल सी सख्त लकड़ी उतार तकिये के सिरहाने रखते थे। यदि कोई शहर वाला सुखी हाल होता था तो चमड़े के कपड़े पहनता था, यदि गरीब होता था तो सर्दी से बचने के लिये अपने हाथ पैरों पर भुस बांध लेता था। जिस समाज के अन्दर एक ओर दलदलों में नरकुल की बनी हुई गारे वालों की निकृष्ट झोंपड़ियां थीं, दूसरी ओर रईसों के महलों और पादरियों के मठों की ऊंची ऊंची दीवारें, उस समाज की अवस्था शोक जनक अवश्य ही होगा। इन महलों और झोंपड़ियों के बीच में कोई और चीज न थी। जो लोग उस जमाने में रहते थे वे सच मुच ज्वर पीड़ित किसानों की अवस्था को देखकर अत्यन्त दुःखी होते थे और बड़े भाव के

साथ इन तीर्थ-यात्रियों, साधुओं, पापमोचकों तथा छोटे बड़े तरह तरह के हज़ारों ईसाई पादरियों का ज़िक्र करते थे जो कि गिर्जा के चारों ओर भरे रहते थे। इसी तरह जिन महलों के चारों ओर खाड़ियां होती थीं, क़िलेबन्दी होती थी और पहरा रहता था, उनके अन्दर रात रात भर शराब कबाब और ऐयाशी के दौर चलते रहते थे, जब कि बाहर लाखों किसानों की बुरी हालत थी। इन महलों में रक्त रञ्जित हाथों वाले वे लार्ड लोग रहते थे जिन्हें सिवाय रक्तपात और अत्याचार के और कुछ न सूझता था। और या वे पादरी रहते थे जो हद दर्जे की ऐयाशी में डूबे रहते थे, शानदार कपड़े पहिनते थे, सुन्दर घोड़े रखते थे, बाज़ पालते थे और शिकारी कुत्ते पालते थे। इन लार्डों और इन पादरियों के चारों ओर सारा समाज घूमता था। रोमन सम्राट सीज़र के समय से लेकर उस समय तक गाँव वालों के जीवन में किसी प्रकार की भी उन्नति न हुई थी। गांवों की ऊपरी अवस्था अत्यन्त हीन थी। कारीगरों का तो ऐसे ग्राम में कोई काम ही नहीं रह जाता था, जहां पर कि शीशे की अथवा तैल पत्र तक की कोई खिड़की देखने तक को न मिलती थी कोई ऐसा कारख़ाना न था जिसमें अंगीठी जलती हो। गरीबों के लिये कोई वैद्य न था। मरते हुए लोगों के पास केवल पादरी अपनी सलीब लेकर पहुंच जाता था। पादरी का उद्देश्य रोगी को इस लोक के लिये बचाना न होता था। जो काम सफ़ाई से लिया जाता है वह ईसा मसीह और कुमारी मेरी से प्रार्थनाएं कर के सिद्ध किया

जाता था। शहरों में महामारियां ने रोक टोक फैलती थीं, और इन महामारियों के शिकारों की संख्या का पता, या तो गलियों के अन्दर चिल्ला चिल्ला कर मृत्यु की घोषणा करने वालों की आवाज़ों से लग सकता था, और या मरने वालों के लिये गिर्जाघरों में जो घंटे बजाये जाते थे उनकी टनटन की आवाज़ से लगाया जा सकता था।

सैकड़ों काहिल पादरियों की विषैली मिसाल को देख देख कर साधारण जनता में भी सुस्ती और अकर्मण्यता इस सीमा तक पहुंच गई थी कि समाज सुधारकों के मार्ग में यह एक भयङ्कर कठिनाई बन गई थी। इस तरह के काहिल लोग "वेलियन्ट बेगर्ज़" अर्थात् साहसी भिखमङ्गे कहलाते थे, और हर गांव में उन्हें दण्ड देने के लिये लकड़ी के शिकंजे रक्खे रहते थे जिनमें उनकी टांगें कस दी जाती थीं। सन् १५३१ ईसवी में यह कानून पास हुआ जिसके अनुसार उन आवारागर्दों को जो "शरीर से हृष्ट पुष्ट" हों यदि वे पहिली मर्तबा भीख मांगते हुए पकड़े जावें तो ठेले के पीछे बांध कर कोड़े लगाये जाते थे। यदि वे दूसरी बार भीख मांगते हुए पकड़े जाते थे तो उनके कान चीर दिये जाते थे। सन् १५३६ में एक कानून पास हुआ कि यदि इस तरह के लोग तीसरी बार भीख मांगते हुए पकड़े जावें तो दण्ड मार डाला जावे। चारों ओर बड़े बड़े नगर उजड़ते जा रहे थे। इसका कारण आम तौर पर यह समझा जाता था कि निम्न श्रेणी के लोग दिन प्रतिदिन सुस्त होते जा रहे थे, किन्तु

इसका वास्तविक कारण और ही कुछ था ......तमाम अंग्रेज़ क़ौम इतनी अशिक्षित थी कि पार्लियामेंट के अन्दर बहुत से लार्ड ऐसे थे जो न पढ़ सकते थे न लिख सकते थे। इस तरह की क़ौम के लिये अपनी कुरीतियों के ठीक ठीक कारणों को ठीक ठीक समझ सकना असम्भव था।

धार्मिक परिस्थिति

इंग्लिस्तान पादरी मठों को तोड़ने के लिये तैयार था। इन मठों को लोग अपनी सारी बुराइयों की जड़ या केन्द्र समझने लग गये थे। लोभवश किये हुए पादरियों के बेहूदा व्यापारों, और दुराचारों से लोग ऊब उठे थे और वे दुराचार भी ऐसे अश्लील तथा गन्दे कि आज कल कोई भी भला मानस उनको जबान पर लाने में संकोच करेगा। उनके आचार में ढोंग अधिक था, लोगों से बड़ी बड़ी रक़में ज़बरदस्ती वसूल करने के लिये वे कुछ भी कर बैठते थे और अपने कर्तव्य पालन का उन्हें जरा भी ध्यान न था। उनके नैतिक पतन का लोगों को इस कदर विश्वास हो गया था कि लोग खुल्लम खुल्ला यह कहने लग गये थे, कि इंग्लिस्तान में आज दिन एक लाख महिलायें हैं, जिनका सतीत्व इन पादरियों की वजह से सर्वथा नष्ट हो चुका है और उन्हें वेश्या बन कर चकलों की शरण लेनी पड़ी है। लंदन के चकले इन पादरियों ही की तृप्ति के लिये चल रहे थे।

यह बात ज़ोर देकर कही जाती थी कि 'पाप स्वीकार' (कन्फ़ेशन) नामक ईसाई प्रथा का ये पादरी लज्जा जनक

दुरुपयोग करने लगे हे और एकान्त में पाप स्वीकार करने के लिये जो महिलायें आती थीं, उन पर—बलात्कार तक किया जाता है। पादरियों के घोरतम पाप भी पैसे लेकर क्षमा किया जाता था और कर्ता को क्षमा मिल जाता था। और यदि कोई पादरी हत्या अथवा भ्रूण हत्या का भी अपराधी होता था, तो उससे केवल ६ शिलिंग ८ पेंस जुर्माना लेकर उसे छोड दिया जाता था।

इन आम शिकायतों के सिवाय, और भी कई बातें ऐसी थीं जिनकी लोगों को शिकायत थी ये यद्यपि छोटी बातें थीं, किन्तु लोगों को इन से भी कम नफरत न थी। मसलन, जब कोई साधारण पुरुष व स्त्री दफन किये जाने के लिये लायी जाती थी, तो ये पादरी उस पोशाक को मांगते जो वह व्यक्ति मृत्यु से पहिले पहिने रहता था अथवा उसके बदले में एक बहुत अधिक और बेजा रकम मांग बैठते थे।

नैतिक स्थिति

अमरिका महाद्वीप का पता लगने के साथ ही साथ सारे युरोप में एक नई बीमारी के फूट पडने से लोगों का ध्यान अचानक उस बीमारी की ओर खिंच गया। सन् १४९४ ई० में नेपिल्स पर आठवें चार्ल्स की जो फ्रान्सीसी सेना घेरा डाले हुए थी पहिले पहल उसी में इस बीमारी ने विशेष जोर पकड़ा और महामारी की तरह उग्र रूप धारण किया। इस बीमारी का नाम सिफलिस था। यद्यपि कई डाक्टर ऐसे भी हो गये हैं जिनकी

यह धारणा रही की इस बीमारी का पता लोगों को बहुत प्राचीन काल से था और उसी ने इस समय ज़ोर पकड़ लिया था. तथापि इस सम्बंध में खोज द्वारा इतनी प्रामाणिक बातें एकत्रित हो गयी हैं कि उक्त राय को महत्व नहीं दिया जा सकता। यह युरोप में एक नयी बीमारी थी। इस बात का पता भी लगता है, कि प्रायः सभी युरोपीय राष्ट्र एक दूसरे पर यह इल्ज़ाम लगाने लगे थे कि यह बीमारी हमारे नहीं वरन तुम्हारे यहां से शुरू हुई। किन्तु बहुत जल्द बात खुल गयी कि कोलम्बस के साथी नाविकों द्वारा अमेरिका से यह बीमारी युरोप में आई इसका ठीक रूप और उसके फैलने का तरीक़ा पर्नक नामी व्यक्ति ने खोज निकाला।

प्रत्येक इस बात को मान लेने पर भी कि महामारी का प्रथम आक्रमण बड़ा भयङ्कर होता है, सिफ़लिस को कभी भी कोई आदमी संक्रामक बीमारी नही क़रार दे सकता। यह बीमारी तो एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति के साथ संसर्ग द्वारा ही होती है।

सिफ़लिस की बीमारी किस प्रकार के ख़ास संसर्ग से होती है, इस बात का ध्यान रखकर जब हम उस तेज़ी का विचार करते हैं जिससे कि बीमारी यह बिजली की तरह उस समय यूरोप में फैल रही थी, तो तात्कालिक दुराचार का सजीव भयङ्कर चित्र हमारे सामने आ खड़ा होता है। यदि उस समय के लेखों पर विश्वास किया जा सके, तो उस समय ऐसा एक

भी विवाहित या अविवाहित व्यक्ति, किसी भी श्रेणी का, पादरी या गैर पादरी न था जिसे यह बीमारी न हुई हो। सभी सिफलिस के शिकार हो रहे थे। जगद्गुरु इसवें पोप लियो से लेकर एक साधारण फकीर तक कोई इस बीमारी से खाली न था। जैसा कि हैजे इत्यादि के समय तो ऐसा भी होता है, कि कुछ स्थानों में तो बीमारी ज़ोरों पर रहती है और कुछ स्थान बीच बीच में सुरक्षित भी रह जाते हैं, इधर उधर के बड़े बड़े नगरों में बीमारी फैल जाती है, लेकिन कुछ नगर बीच बीच में बच हो जाते हैं। किन्तु इस सिफलिस की बीमारी का प्रसार ऐसा था कि बीच का एक भी स्थान न बच पाया। अपने मार्ग के समस्त स्थानों को समेटता और आक्रमण करता हुआ यह रोग आगे बढ़ता गया। यूरोप के दक्षिण में शुरू हो कर और वहां पूरी तौर से अपनी जमा कर यह रोग बढ़ता और शीघ्रता से आगे बढ़ा और बहुत कम समय में ही सारे महाद्वीप में फैल गया। तात्कालिक समाज के पाशविक मनोभावों और गन्दे दुराचार का यह अकाट्य प्रमाण और कसौटी थी।

—लायर, वाल्यूम २ पृष्ठ २३३, २३४, २३५,

जिस मेयो, ने अङ्गरेजी सभ्यता का यह चित्र आरकी नहर अस्पतालों, अमर गृहों, और सफाई के जमादारों की रिपोर्टों पर नहीं—बल्कि, शाही खानदानों अमीरों के आन्तरिक जीवन की वीभत्स अवस्था पर भी नहीं—बल्कि केवल उस देश की साधारण सामाजिक स्थिति के आधार पर खींचा है।

शब्द भी मेरे नहीं, आपके ही एक विद्वान देश निवासी के हैं, जिसकी योग्यता निपुणता और विद्वता को पश्चिमी शिक्षित संसार मानता है। यदि मैं ने उन अकथनीय और अविश्वसनीय आन्तरिक घटनाओं पर से परदा उठा दिया होता, जो इस चित्र के पीछे छिपी हैं तो आपकी " मदर इण्डिया " का सारा चित्र अपने समस्त झूठों और अत्युक्तियों सहित श्रीहीन ही नहीं बल्कि इङ्गलिस्तान के चित्र की तुलना में सुसभ्य दिखाई देने लगता।

मुझे क्षमा कीजिये, सम्भव है कि मैं देख नहीं सकती, मगर मुझे तो इस सभ्यता के चित्र में कोई भी ऐसा अपूर्व सौन्दर्य वा चमत्कार नज़र नहीं आता जिसे देख कर मैं विस्मित रह जाऊं, और यह मान लूं कि इस सभ्यता या इस जातीय चरित्र में कोई भी अंश पूर्वीय सभ्यता से बढ़ कर थे।

मिस मेयो का उत्तर :—हे महिला, तुम यह भूल गईं कि जो चित्र भारत का मैं ने अपनी पुस्तक में खींचा है वह, सोलहवीं शताब्दी का नहीं बीसवी सदी का है। पश्चिमीय सभ्यता का वास्तविक उद्भव सोलहवीं शताब्दी के बाद ही हुआ है इसकी विशेषता धार्मिक अन्ध विश्वासों से स्वतंत्र होना, साम्प्रदायिक प्राचीन बन्धनों से मुक्त होना है। इसकी विशेषता वह वैज्ञानिक उन्नति है जो संसार ने आज तक नहीं देखी।

इसने तुम्हें रेलें दीं, हवा के समान तेज चलने वाले जहाज दिये, हवा में उड़ने वाले विमानों के स्वप्न जो तुम्हारी जराजीर्ण पुस्तकों में दफन थे उन्हें पुनरुज्जीवित करके प्रत्यक्ष रूप दे दिया। हवा और बिजली को तुम्हारा दूत बनाकर तार और टेलीफोन द्वारा संसार के भिन्न भिन्न दूर दराज देशों को एक विशाल नगर के मोहल्लों के समान बना दिया। प्रकृति के विकराल गुप्त रहस्य उस से छीन कर उसकी वेताल रूपी शक्तियों को अपने अधीन बनाया। ये वेताल आज अधम चाकरों के समान तुम्हारे जहाजों, तुम्हारी रेलों, तुम्हारे कारखानों, नहीं बल्कि तुम्हारे घरों के एक एक कोने में तुम्हारी चाकरी कर रहे हैं। इस पर भी तुम पश्चिमी सभ्यता से रुष्ट हो। इसके जवाब में मैं केवल यही कह सकती हूं कि यदि कोई नेत्र विहीन सूर्य के प्रकाश को न देख सके तो इसमें सूर्य का कोई दोष नहीं।

यूरप की वैज्ञानिक उन्नति

प्रत्युत्तर—मिस्र मेयो, मैं वैज्ञानिक उन्नति को बुरा नहीं कहती। मेरी सम्मति में प्रत्येक सभ्यता का वैज्ञानिक उन्नति से वही सम्बन्ध होता है जो आत्मा का शरीर से है। परन्तु मैं यह कहती हूँ कि वैज्ञानिक उन्नति का ठेका पश्चिमी सभ्यता ही ने नहीं ले रखा है। इस तरह की उन्नति पश्चिम का अनन्य अधिकार नहीं है। भाँति भाँति की ईजादें और आविष्कार,

भोग विलास की सामग्रियों और साधनों की बहुतायत और नगरों की विशालता और सौन्दर्य मुझे चकाचौंध नहीं कर सकते। यह सब चीज़ें तो प्राचीन काल से लेकर आज तक प्रत्येक जाति की सपन्नता के स्वाभाविक फल फूल रही हैं। सभ्यताओं के पतन के समय यह पुष्प अवश्य कुम्हला जाते हैं, सम्भव है कि इन में से कुछ पुष्पों के वृक्ष सूख भी जाते हों। परन्तु अधिकतर इन के बीज नष्ट न हो कर उस समय की अन्य उभरती हुई जातियों के काम में आ जाते हैं। इस प्रकार संसार की प्रत्येक सभ्यता प्राचीनतम काल से लेकर आज तक दूसरी सभ्यताओं को अपना विज्ञान, अपना कला कौशल अपने व्यापारिक रहस्य अपनी ईजादें प्रदान करती रही हैं। और नवीन सभ्यतायें सदा अपने से पहले की सभ्यताओं की डाली हुई बुनियादों पर ही अपने प्रासाद ऊंचे करती रही हैं इस लिये पश्चिमीय सभ्यता का वर्त्तमान चमत्कार कोई असाधारण घटना नहीं है। इसके आगमन से पहिले ही संसार का ज्ञान उन शिखरों पर पहुँच चुका था, जहां से वर्तमान आविष्कारों और ईजादों की झलकें धुन्धली धुन्धली नज़र आने लगी थीं। इस कथन के सुबूत में, मैं ड्रेपर साहब की पुस्तक से एक और दृष्टान्त सुनाती हूं। अरबों के उन्नतकाल में स्पेन की इस्लामी हुकूमत ने जो असाधारण उन्नति की थी, और उस उन्नति से यूरोप ने जो लाभ उठाया है, उसका वर्णन करते हुए वे कहते हैं:—

यरोप के साहित्य ने सदा इस बात को हमारी आखों से छिपा कर रखने का यत्न किया है कि हम विज्ञान के क्षेत्र में मुसल्मानों के कितने ऋणी हैं। मैं इस बात के ऊपर शोक प्रगट किये बिना नहीं रह सकता। निस्सन्देह यह सचाई बहुत दिनों तक छिपी नहीं रह सकती, मुसलमानों के साथ यह हमारा घोर अन्याय है। किन्तु जिस अन्याय की जड़ धार्मिक द्वेष और राष्ट्रीय घमंड में है वह अन्याय हमेशा कायम नहीं रह सकता। आज कल के युरोपीय ज्योतिषज्ञ क्या कहेंगे जब उन्हें यह बताया जावे कि उस समय जब कि युरोप बिलकुल जंगली अवस्था में था, ज्योतिषज्ञ अरब अबुल हसन उन ट्यूब्स (Tubes) का जिक्र करता है जिनके द्वारा तारों को देखने और उनकी दूरी नापने के लिये तरह तरह के यंत्र लगे हुए थे। शायद उन में इसी तरह के शीशे लगे हुए थे जिस तरह के 'मिराघा' में काम आते थे। वह क्या कहेगा जब उसे यह पता लगे कि अब्दुर रहमान सूफी सितारों के फोटो लेने की कला को उन्नति देने के प्रयत्नों में लगा हुआ था। क्या इब्ने यूनिस (सन् १००८ ई०) के ज्योतिष विद्या सम्बन्धी अङ्क पत्र जिन्हें "हैकेमाइड टेबिल्स" कहते हैं, अथवा नसीर उद्दीन तूसी के "ऊलकानिक टेबिल्स" जो कि सन् १२५९ ई० टारिस के निकट मिराघा की ज्योतिष सम्बन्धी महान यंत्रशाला में बनाये गये थे, अथवा लटकन (Pendulum) की हरकतों से समय का मापना और विधिवत निरीक्षण करके ज्योतिष सम्बन्धी अङ्कों का ठीक करना—क्या ये सब इस प्रकार की चीजें हैं जिनसे उस समय के अरब निवासियों की असाधारण

मानसिक उन्नति का पता नहीं चलता? इसलिए युरोप निवासियों को शीघ्र ही यह स्वीकार करना पड़ेगा कि अरब निवासी अर्वाचीन युरोप के ऊपर अपनी मानसिक छाप छोड़ गये हैं। किसी भी मनुष्य को, जो आज कल के एक साधारण भूगोल में सितारों के नाम पढ़ कर देखे, मालूम हो जायगा कि अरब निवासियों ने अपने नाम आकाश के अन्दर इस तरह की लेखिनी से लिखे हैं कि उन्हें कोई नहीं मिटा सकता।

उच्च विज्ञान में हमने जितना स्पेन के मुसलमानों से सीखा है उससे कहीं अधिक हमने उनसे जीवन के साधारण उद्योग धन्धों में शिक्षा ग्रहण की है। शायद इसका एक मात्र कारण यह है कि उस समय हमारे पूर्वज दैनिक रहन सहन में जितना कुछ सीख सकते थे उतना विज्ञान में सीखने के वे योग्य न थे। मुसलमानों ने हमारे यहां विधिवत कृषि विद्या की बुनियाद कायम की। इस कृषि के लिये उनके यहां बाज़ाब्ता क़ायदे बने हुए थे। उन्होंने पौदों की कृषि की ओर ध्यान दिया। अनेकानेक नये पौदे इस महाद्वीप में जारी किये। पशुओं की उन्नति और वृद्धि विशेष कर भेड़ और घोड़ों की वृद्धि की ओर विशेष ध्यान दिया। अनेक बड़े बड़े पदार्थ जैसे कि चावल, चीनी, कपास और बाग़ बग़ीचों के लगभग समस्त सुन्दर फल और अनेक कम महत्व के पौदे जैसे स्पेनिस और ज़ाफ़रान (केसर) हमारे इस महाद्वीप में मुसलमानो ही ने लाकर प्रचलित किये। स्पेन में रेशम का उगाना मुसलमानों ही से प्रारम्भ हुआ। ज़ेरीज़ और मलागा की प्रसिद्ध शराबों का प्रारम्भ मुसलमानो के ही समय

से हुआ। आबपाशी के लिये मिस्र देश की वह पद्धति जिसमें बड़े बड़े रहटों, पहियों और पम्पों का उपयोग किया जाता है मुसलमानों ही ने आकर यूरोप में प्रचलित की। उन्होंने और भी अनेक महत्त्वपूर्ण उद्योग धंधों को उन्नति दी। उन्हों ने ही कपड़ा बुनने के धंधे, मिट्टी के बरतनों का बनाना, लोहे और फौलाद का बनाना हमारे यहां प्रचलित किया। उनके समय की तलवारों की धार और आब की सब जगह प्रशंसा की जाती थी।

जिस समय अरब लोग स्पेन से निकाले गये उस समय वे अपने साथ साथ एक खास किस्म के चमड़े का धंधा मोरक्को ले गए। इस चमड़े के तैयार करने में अरब लोग विशेष सिद्ध हस्त थे और आज तक यह चमड़ा मोरक्को के नाम से प्रसिद्ध है। उन्होंने कुछ अधिक महत्त्व की ईजादें भी बाहर से लाकर हमारे महाद्वीप में प्रचलित कीं—जैसे बारूद और कागज। जो तोपें ये लोग काम में लाते थे वे पक्के लोहे को पीटकर उससे बनाई जाती थीं। किन्तु शायद बढ़कर एक और उन्होंने जो बड़ी शानदारी ईजादें की उन्होंने मनुष्य जाति के सामने उपकार के लिए जरूरी कम्पास का इस महाद्वीप में लाकर प्रचार किया और उसके द्वारा मानव जाति का भारी उपकार किया।

जहाजी कम्पास का जिक्र करते ही हमें यह ध्यान आता है कि प्राचीन अरब व्यापारिक व्यापार में भी बहुत दिलचस्पी रखते थे, यह बात बिल्कुल ठीक है कुछ अरब ज्योतिषियों का नाम-

गुज़ारी की ओर ध्यान देने से हमें इस बात का और भी विश्वास हो जाता है। ख़लीफ़ा अब्दुर रहमान तीसरे की मालगुज़ारी पचपन लाख पौंड सालाना थी—यदि यह ध्यान रक्खा जावे कि उस समय के पौंड और आजकल के एक पौंड के मूल्य में कितना बड़ा अन्तर है तो यह मालगुज़ारी बहुत ही ज़बरदस्त मालूम होने लगती है। केवल भूमि की पैदावार से इतनी ज़बरदस्त मालगुज़ारी वसूल नहीं की जा सकती थी। सम्भवतः उस समय के समस्त ईसाई देशों के समस्त बादशाहों की कुल आमदनी मिला कर भी इसके बराबर न थी। बारसेलोना और अन्य बन्दरगाहों से भूमध्य सागर के पूर्वीय प्रदेशों के साथ बहुत ज़बरदस्त तिजारत होती थी। यह तिजारत अधिकतर यहूदियों के हाथों में थी, उस शुरू ज़माने से जबकि मूसा ने स्पेन पर पहली बार हमला किया यहूदी लोग अरब निवासियों के सदा पक्के मित्र रहे और उनके साथ मिलकर कार्य करते रहे। उन दोनों क़ौमों ने मिलकर आक्रमण की आपत्तियों को सहन किया, मिलकर उस आक्रमण की अनन्त सफलता का यश प्राप्त किया, मिल कर उन जंगली लोगों की ओर अनादर, मज़ाक और कभी कभी घृणा तक प्रगट की जो पिरेनीज़ पहाड़ियों के पार रहते थे। और जिन्हें वे हंस कर स्त्रियों के उपासक और अनेक देवी देवताओं के उपासक जंगली लोग कहा करते थे। इन्हीं जंगली लोगों का प्रतिकार बहुत दिनों की प्रतीक्षा के बाद अन्त में उन्हें सहन करना पड़ा। यहूदी और अरब दोनों साथ साथ ही यूरोप से निकाल दिए गये। जो यहूदी पीछे बाकी रह गये उन्हें इनक्विज़ीशन

(Inquisition) की धार्मिक ईसाई कचहरियों द्वारा भयङ्कर यातनाएं पहुंचाई गयी। किन्तु जिस जमाने में ये यहूदी मुसहाल थे उस जमाने में एक हजार जहाजों से ऊपर इनके व्यापार में लगे रहते थे। ट्यूनिस के ऊपर उनकी कोठियाँ और उनके गुमाश्तों के रहने के स्थान बने हुए थे। अकेले कुस्तुन्तुनिया के साथ उनकी बहुत बड़ी तिजारत थी। यह तिजारत ब्लैक सी और भूमध्य सागर के पूर्वीय तट से लेकर मध्य एशिया तक फैली हुई थी। हिन्दुस्तान और चीन के बन्दरगाहों तक य लोग आते जाते थे और अफरीका के किनारे के बराबर बराबर मंडेगेस्कर व टापू तक फैले हुये थे। इस व्यापार में भी यहूदियों और अरब निवासियों का अद्भुत मस्तिष्क साफ चमकता हुआ नजर आता था। हजरत ईसा की दसवीं शताब्दी में जब कि यूरोप की लगभग वही असभ्य अवस्था थी जो इस समय केफ़रिया की है, उस समय अबुल कासिम जैसे अरब के विद्वान व्यापार और वाणिज्य के सिद्धान्तों पर ग्रन्थ लिख रहे थे। जिस तरह की और सब क्षेत्रों में उसी तरह इस क्षेत्र में भी उनके पद चिन्ह अभी तक मौजूद हैं। व्यापार में जिस छोटे से छोटे बाट का वे उपयोग करते थे वह जव का दाना था, चार दानों को मिलाकर एक मोठी मटर होती थी जिसे अरबी में कैरेट कहते थे। आज दिन तक हम लोग ग्रेन (दाना) के हिसाब से चीजों का वजन करते हैं और जब सोने शुद्ध को बयान करते हैं तो कहते हैं कि इसमें इतने कैरेट शुद्ध सोना है।

—ड्रेपर-इन्टेलेक्चुअल डेवलपमेंट आफ योरप, वाल्यूम दो पृष्ठ ४२ ४४

मिस मेयो, यह तुमने देखा। इसके बाद इसी लेखक ने विज्ञान के भिन्न भिन्न क्षेत्रों में दिखाया है कि लगभग वह समस्त मौलिक युक्तियां तथा सिद्धान्त जिन पर वर्तमान वैज्ञानिक उन्नति आधारित है उस समय एक न एक रूप में सामने आरहे थे। इस प्रकार की अनन्त मिसालें और दी जा सकती हैं। इसलिये, मिसमेयो, संसार में वैज्ञानिक उन्नति तो सदा होती रही है और पश्चिमी सभ्यता के मिट जाने के बाद भी होती रहेगी। परन्तु अन्तर इतना है कि पूर्वीय सभ्यता में वैज्ञानिक उन्नति के साथ साथ नैतिक विकाश भी होता जाता था। इसलिये उस समय वैज्ञानिक उन्नति से मानव जाति को हानि पहुँचने की कम सम्भावना रहती थी।

मिस मेयो, आप पश्चिमी हैं, आप यह नहीं जानतीं कि वैज्ञानिक उन्नति के साथ साथ यदि नैतिक विकाश न होता जावे तो वैज्ञानिक उन्नति मानव जाति के लिये एक भयंकर आपत्ति बन जाती है। पूरब में प्रायः शक्ति संचार की पहली सीढ़ी आत्म संयम मानी जाती थी। प्रकृति के रहस्यों को जान कर उसकी शक्तियों को अपने आधीन कर लेना केवल उसी समय उपयोगी होता है जब आप उन शक्तियों का उचित उपयोग करने के समर्थ हैं। पश्चिम इस समय अनेक अन्ध-विश्वासों में फंसा हुआ है। इसलिये इस के हाथों में प्रकृति के वैतालों का आ जाना मानव जाति के विध्वंस का विकराल साधन बन गया है। मिस मेयो, ये रेलें, ये जहाज़, ये विमान,

भेद भाव केवल आचार व्यवहार अर्थात् खाना पीना, शादी विवाह तक ही परिमित रह गए थे। परन्तु पश्चिम में इसी भेद भाव पर राजनीति की बुनियादें क़ायम की गई हैं। पश्चिमी हुकूमतें 'राष्ट्रीयता' और 'आत्मरक्षा' के नाम पर अपने देशों में पूर्वीय और अन्य जातियों का बसना, व्यापार करना, तथा आना जाना तक परिमित और बन्द कर रही हैं। मानव जाति के ऐतिहासिक युग के आरम्भ होने से पहले किसी प्राचीनतम काल में ब्राह्मणों ने अपने धार्मिक अन्ध विश्वासों द्वारा, अपनी समाज के एक अंग को अछूत बना दिया था। आज इस आधुनिक युग का, नवीन ब्राह्मण यूरोप, अपने अतिरिक्त समस्त संसार को अछूत बना रहा है। प्राचीन पूर्वीय ब्राह्मण ने अपनी समाज के तीन विभागों पर दया का व्यवहार किया था। परन्तु हमारा आधुनिक कुलीन किसी पर भी कृपा दृष्टि करने को तय्यार नहीं।

इसके अतिरिक्त पूरब ने तो ब्राह्मणों के प्रभुत्व की बुनियाद असीम विद्वता, विरक्तता, आत्म संयम तथा सदाचार पर रखी थी; परन्तु वर्तमान श्वेताङ्ग जातियों के पुरोहित, योरप ने इन जातियों के प्रभुत्व की बुनियादें विलास प्रियता के उच्च आदर्श पर रखी हैं। इस वैज्ञानिक शास्त्री ने यह व्यवस्था दे दी है कि विलास प्रियता मानव उन्नति का एक मात्र साधन है। स्पष्ट — तीव्र — विकराल स्वरों

में पश्चिमी सभ्यता का यह निर्लज्ज आदेश, संसार भर में, गूंज रहा है —

" उठो ! अपनी सांसारिक लालसाओं को असीम बनाकर इनकी तृप्ति के लिए असीम प्रयत्न करो। इसी में तुम्हारा वास्तविक कल्याण है "।

पूर्वीय जातियां इस विचित्र आदेश की प्रतिध्वनि सुन सुन कर व्याकुल — विस्मित — तथा आकर्षित हो रही हैं। और यदि यह पैशाचिक शंख नाद शीघ्र ही बन्द न कर दिया गया तो यह अभागी जातियां भी इसी नाश कर बेताली नृत्य में शामिल हो जावेंगी।

मिस मेयो, निस्सन्देह विलास प्रियता पूर्वीय सभ्यता का भी एक मुख्य अंग था। किन्तु उस सभ्यता ने इसे मानव उन्नति का साधन नियत नहीं किया था। प्राचीनतम काल से अनन्त अनुभव कर कर के पूरब ने यह देख लिया था कि सांसारिक सुख भोग की अभिलाषा मानव स्वभाव की प्रबल तथा असाध्य मनोवृत्ति है। पूरब ने यह भी अनुभव कर लिया था कि जब तक मनुष्य समाज की यह मनोवृत्ति अनियंत्रित रहेगी तब तक समाज की विविध श्रेणियों पर उन पवित्र आदर्शों का प्रभाव जम सकना असम्भव है—जो आदर्श कि वास्तव में मनुष्य जाति के लिये कल्याण कर हैं।

इसलिये पूरब ने इस मनोवृत्ति को उत्तेजना देने के स्थान पर उसे अपनी शक्तिभर नैतिक तथा धार्मिक शृङ्खलाओं में जकड़ देने का प्रयत्न किया, और इस प्रकार इस मनोवृत्ति का भरसक प्रतिरोध किया। तिस पर भी पूरब विलास प्रियता के कुप्रभावों से अपनी समाज को सर्वथा सुरक्षित न रख सका।

किन्तु आज यह कल का वैज्ञानिक यूरोप, इन प्राचीनतम अनुभवों का जी भर कर तिरस्कार कर रहा है। इस ने विलास प्रियता को वास्तविक उन्नति का साधन मानकर अपनी समाज में वैयक्तिक स्वतंत्रता का एक नया युग आरम्भ कर दिया है। पुत्री को माता से—पुत्र को पिता से—स्त्री को पुरुष से—पुरुष को स्त्री से—चाकर को स्वामी से—स्वामी को चाकर से,—अर्थात् समाज के भिन्न भिन्न अङ्गों को और प्रत्येक व्यक्ति को एक दूसरे से सर्वथा स्वतंत्र कर के यूरोप ने उन्हें उदारता के साथ समान अधिकार प्रदान कर दिये हैं। साथ ही कर्तव्य भी सब का एक ही है, अर्थात् अपनी सांसारिक सुख भोग की अभिलाषा को असीम बनाना और उसकी तृप्ति के लिये असीम प्रयत्न करना। —मिस मेयो, यह सब देख कर हमें यही कहना पड़ता है कि ईश्वर आप पर, और आप के सजातियों पर, दया करे, और पूर्व इससे कि आप के करतूत आप का विध्वंस कर डालें आप की आँखें खुल जावें।

परन्तु हां, मैं भूल गई। आपने ईश्वर को भी तो पराश्त करके एक बड़े मूर्ती को मारा है। इसमें सन्देह नहीं कि काली के ऐसे मन्दिर, जिन पर जीवित पशुओं की भेंट चढ़े आपने समस्त यूरोप से निर्मूल कर दिये। और इन सब को निर्मूल करके आप ने अपने देश को अपना ईश्वर बनाया है। इसी अपने इष्ट देव की अनन्त उपासना करना आपका मुख्य धर्म है। परन्तु मिस मेयो, मैं यह पूछती हूँ कि आपने अपने देश पूजन के मुख्य साधनों पर भी कभी विशेष ध्यान दिया है। यदि दिया होता तो आप देख लेतीं कि साम्राज्यवाद तथा अन्ध व्यापारिक संघर्ष ही आपके इस इष्ट देव की पूजा के मुख्य साधन हैं। और इन साधनों में जीवित पशुओं की नहीं बल्कि जीवित जातियों तथा देशों के बलिदान की आवश्यकता पड़ती है। ये बलिदान चारों ओर विकराल रूप में हो रहे हैं। परन्तु आपको और आप के सजातियों को ये दिखाई नहीं पड़ते। और यदि दिखाई भी पड़ते हैं तो इन्हें देख कर उन्हें रोमाञ्च नहीं होता। इतना ही नहीं, मिस मेयो, स्वयं आप ने इन्हीं बलिदानों के कीर्ति गान को, इनके चिरस्थाई बनाने के प्रयत्न को, अपनी जीविका का साधन बना लिया है। इन्हीं की कीर्ति गा गा कर आप धन बटोरती हैं। फिलीपाइन्स जाने में, भारत आने में, और अब कोरिया जाने की तैयारी में आपका यही एक मात्र उद्देश्य है। फिर मिस मेयो, आप ही बताइये कि किसका अन्ध विश्वास अधिक हीन, अधिक

भयंकर और अधिक बीभत्स है ? आपका अथवा उस अज्ञानी, विचारशून्य स्त्री का, जिसने काली के मन्दिर के अन्दर रुधिर से अपना वस्त्र भिगो लिया था ?

मिस मेयो, पूर्वी अन्ध विश्वासों को ढूंढ़ ढूंढ़ कर निकालना, उनसे घृणा करना, आपके लिये कैसा सरल और स्वाभाविक है। परन्तु, पश्चिमी समाज के भयंकर, विनाशकारी अन्ध विश्वास आप को दिखाई भी नहीं देते। आप समझती है कि आप ने प्रकृति के वैतालों को अपने आधीन बना लिया है। परन्तु यह आप नहीं देखतीं कि ये वैताल आप से क्या भेंट ले रहे हैं। मिस मेयो, आपके विशाल कारख़ाने, जिनका आप को इतना घमन्ड है स्वयं आप के तथा अन्य देशों के असंख्य दस्तकारों के मुंह से अन्न छीन कर उनके मृत्यु शरीरों पर क़ायम हैं। इन विशाल कारख़ानों से जिन मुट्ठी भर व्यक्तियों का पेट भर सकता है, वे अपना स्वास्थ्य, गृहस्थ जीवन तथा वह सदाचार जो गृहस्थ जीवन का स्वाभाविक अंश है — सभी को खोकर, अपनी रोटी प्राप्त कर पाते हैं। इस दुर्घटना का रोना स्वयं आपके विचारशील विद्वान बड़े करुण स्वरों में रो रहे हैं। इन कारख़ानों के विषमय जीवन तथा उस समस्त वायुमण्डल ने, जो इन कारख़ानों का वास्तविक जन्म दाता है — मानव समाज के स्त्री पुरुष सम्बन्धी विषयों में विकराल परिवर्तन

कर दिया है। यह परिवर्तन मानव उन्नति हो का नहीं बल्कि मानव समाज के स्थित को ही खतरे म डाल रहा है।

इस के अतिरिक्त इन प्राकृतिक बेतालों की वे मशीन रूपी भयकर मूर्त्तियां जो इन कारखानों म स्थापित हैं अपने उपासकों का ही रक्त नहीं चूसतीं बल्कि इनकी तृप्ति के लिये अन्य अन्य देशों तथा नई मण्डियों में जनता का शिकार खेलना पडता है। इन्ही का धन धान्य अथवा मास मिला मिला कर आप इन्हें सतुष्ट कर पाते हैं। इनके मुह से बचे हुए टुकडे आपका भोजन हैं। इन टुकडों को खा खा कर, प्राचीन पुजारियों के समान, इन्हीं मूर्तियों के चारों ओर, विलास प्रियता में चूर हो, आप अनन्त अशांति—अनन्त अन्ध व्यापारिक सघर्ष—तथा असीम नैतिक पतन—का बेतालो नृत्य नाच रहे हैं। मिसमेयो, मानव समाज ने नैतिक विकाश द्वारा प्रकृति को अपने आधीन बना कर, पाशविक जीवन से उच्चतर, मानव जीवन का प्रासाद उठाया था। इस प्रासाद की बुनियादें आत्म संयम — परोपकार — सतोष—कर्तव्य पालन — तथा आदर्श प्रियता पर रखी थीं। परन्तु आज आप पाशविक मनोवृत्तियों से मदान्ध होकर इन सब बातों को धार्मिक अन्ध विश्वास बताते हैं। फिर भला आप यह कैसे देख सकें कि प्रकृति के बेतालों को अपने आधीन बनाने के स्थान पर आप उनके आधीन बन रहे हैं। व्यापार मानव समाज के सुख तथा समृद्धि का मुख्य साधन था।

आपने मानव समाज को व्यापार की सम्पन्नता तथा समृद्धि का साधन बना दिया है।

मिस मेयो, हमारे अन्ध विश्वास जरा जीर्ण हो चुके हैं और स्वयं हम उनके निर्मूल करने के लिये व्यग्र हैं। दूसरे हमारे अन्ध विश्वास केवल आचार विचार सम्बन्धी थे। इसलिये उनका क्षेत्र अत्यन्त परिमित था। किन्तु पश्चिम के अन्ध विश्वासों के कुप्रभावों का क्षेत्र केवल आचार विचार तक ही परिमित नहीं है। इन अन्ध विश्वासों के राजनैतिक तथा व्यापारिक होने के कारण इनका प्रभाव क्षेत्र अधिक विशाल है। इसके अतिरिक्त पूर्वीय अन्ध विश्वासों के समान पश्चिमी अन्ध विश्वास दिन प्रति दिन फीके तथा शक्तिहीन नहीं हो रहे हैं। पश्चिमी अन्ध विश्वासों में अभी नवीनता की उमङ्ग तथा चमत्कार मौजूद है। इस चमत्कार को वर्त्तमान पश्चिम की ऊपरी प्रकाश ने और भी स्वर्णमय बना दिया है। इसलिये पश्चिमी अन्ध विश्वास एक घोर तूफ़ान के समान चारों ओर फैल रहे हैं। यदि मानव जगत शीघ्र ही इनका सम्पूर्ण प्रतिरोध न कर सका तो वह समस्त उन्नति जो मानव स्वभाव तथा मानव चरित्र में सहस्रों वर्षों के अन्दर हो पाई थी, सर्वथा नष्ट भ्रष्ट हो जावेगी।

मिस मेयो, मुझे क्षमा कीजिये। जिसे आप मेरी घृणा और क्रोध समझेंगी वह केवल दुःख की वाणी है। अन्य देशों

के साथ साथ आर के साम्राज्यवाद की वेदी पर इस समय मेरा देश भी वलि चढ़ाया जा रहा है। फिर यदि म व्याकुल हूँ, यदि मेरे शब्द वेदनापूर्ण ह, तो इस म कोई आश्चर्य नहीं। साथ ही साथ में यह भी देख रही हूँ कि पश्चिमी वैज्ञानिक उन्नति के अनमोल रत्न आपकी रेलें, आपके जहाज, आपके विमान सब इसी भयङ्कर यज्ञ में सहायता दे रहे हैं। इन सब का एक मात्र पैशाचिक उपयोग इस वलि को सफल बनाना है। मुझे क्षमा कीजिये। जो वैज्ञानिक उन्नति असहाय देशों तथा निरपराध जातियों के विनाश का साधन बन रही है, जो स्वय पश्चिमी देशों म विलास प्रियता तथा, अन्ध व्यापारिक सघर्ष के विषेले पौदों के सींचने मे निमग्न हे, उसे मे ससार के लिये हितकर नहीं समझ सकती।

मिस मेयो —हे महिला, हम लोगों मे एक कहावत ह कि अज्ञान से अधिक आनन्दमय वस्तु ससार में और कोई नहीं होती। म इस कहावत को सुनती थी परन्तु इसके सत्य होने का निश्चय आज ही हुआ।

यूरोप के अन्ध विश्वासों का दुखड़ा तो मने खूब सुना। अब मैं तुम से इस "बलिदान" का वास्तविक अर्थ समझना चाहती हूँ। तुम कहती हो कि ये जहाज, ये रेलें, ये हवाई जहाज तुम्हारे शत्रु ह। जरूर होंगे! शायद इन जहाजों के गोलों की आवाज और मार के भय ने ही तुम्हारे समस्त देश

को अशिक्षित तथा निरक्षर बना दिया है। सम्भव है कि ये रेलें ही तुम्हारे समस्त कला कौशल, उद्योग, व्यापार आदि को लाद लाद कर समुद्र में डुबो आईं। और ये हवाई जहाज़ तुम्हारी समझ, विज्ञान, विद्वत्ता की सारी पूंजी अन्य अन्य देशों को उड़ा ले गए। इसी से तुम आज निरक्षर, दरिद्र और बुद्धिहीन हो। बुरा न मानो, परन्तु मैं तुम्हारे इन समस्त विचारों को, इन भावों को मूर्खता तथा कृतघ्नता की अन्तिम सीमा समझती हूँ।

सुनो, मैं बेकार वाद विवाद करना नहीं चाहती। मुझे तुम यह बताओ कि तुम साम्राज्यवाद को अपने देश के लिये बुरा क्यों कहते हो? इसने तुम्हें क्या हानि पहुँचाई? साम्राज्य-वाद को केवल गालियां देने से कोई लाभ नहीं। मैं केवल तीन चार मौलिक प्रश्न चुने लेती हूँ जिन पर प्रत्येक देश की सांसारिक उन्नति निर्भर होती है। पिछले युगों की आध्यात्मिक तथा नैतिक उन्नति की न मुझे कुछ ख़बर है न उसके सम्बन्ध में मैं जानना चाहती हूँ। इसलिये नैतिक, आत्मिक, तथा आध्यात्मिक आदर्शों इत्यादि का दुखड़ा फिर न ले बैठना। सुनो, वे प्रश्न ये हैं, एक—साम्राज्यवाद ने तुम्हारे देश को शिक्षित बनाने का प्रयत्न किया या नहीं और आज भी कर रहा है या नहीं?—दूसरा—साम्राज्यवाद ने तुम्हारे उद्योग धन्धों और व्यापार को लाभ पहुँचाया या नहीं और

आज भी पहुँचा रहा है या नहीं—तीसरा—साम्राज्यवाद ने तुम्हारे असहाय देश की बाहरी शत्रुओं से रक्षा की या नहीं और आज भी कर रहा है या नहीं ?—

यही तीन मुख्य बातें हैं जिन से किसी शासन पद्धति की उपयोगिता अथवा अनुपयोगिता की परीक्षा की जा सकती है। परन्तु इन बातों में मैं रामायण तथा महाभारत की कहानियां सुनना नहीं चाहती। मैं यह चाहती हूँ कि तुम अपने उत्तर को केवल साम्राज्यवाद के देश में आने के समय तक ही परिमित रखो, और अपनी बातों की पुष्टि में ऐसे हवाले दो जिन्हें में समझ और मान सकूं। मुझे तो यह देख कर अत्यन्त आश्चर्य और दुःख होता है कि तुम उसी शक्ति को, उस शक्ति के उन साधनों को जिन्होंने तुम्हारी इस समय तक रक्षा की है, तुम्हें उन आसपास की जातियों से बचाया है, जो इस रक्षा बिना हें नोच नोच कर खा गई होतीं। इन्हीं सब को तुम अपना वास्तविक शत्रु समझती हो। सच है परमात्मा को जिसका विनाश करना होता है उसकी बुद्धि वह पहले ही हर लेता है।

साम्राज्यवाद और शिक्षा

प्रति उत्तर —मिस मेयो, मैं आप से बिल्कुल सहमत हूँ। आप ने जो तीन प्रश्न चुने हैं मैं भी उन्हें मौलिक समझती हूँ। आप की आज्ञानुसार मैं अपने उत्तर में केवल इन्हीं प्रश्नों

पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करूँगी। पहले शिक्षा को ही ले लीजिये।

सुनिये मिस मेयो, साम्राज्यवाद ने सदा श्वेताङ्ग जातियों के प्रभुत्व को क़ायम करने तथा उसे स्थाई बनाने के लिये अपनी पराजित जातियों को अशिक्षित तथा निरक्षर बनाने का प्रयत्न किया है। अफ़्रीका में, आस्ट्रेलिया में, स्वयं आपके देश अमरीका में सदा उनकी यही नीति रही है। अमरीका के आदि निवासियों को तो जाने दीजिये क्या आप भूल गईं कि कैसे आप के देश बन्धु, निरपराधी हब्शियों को उनके देश से धोका दे देकर चुरा लाते थे? क्या आप वे सब क़ानून भी भूल गईं जो इन्हें निरक्षर रखने के लिये आपके देश में रचे गए थे? मैं उन्हें आप को याद दिलाती हूँ। सुनिये, इनके सम्बन्ध में हेमवर्थ साहब अपनी "हिस्ट्री आफ़ दी वर्ल्ड" में क्या कहते हैं*:—

> "इस के विपरीत हब्शियों की शिक्षा का स्पष्ट निषेध कर दिया गया। मिसाल के तौर पर सन १८४२ में वर्जीनिया में एक क़ानून पास हुआ था जिस के कुछ वाक्य ये थे—'यदि पढ़ना या लिखना सीखने के उद्देश्य से हब्शी लोग कहीं पर भी जमा होंगे तो उनका जमाव न्याय विरुद्ध समझा जावेगा। कोई भी न्यायाधीश, किसी भी अफ़सर या दूसरे मनुष्य के सुपुर्द, इस

* जिल्द चार पृष्ठ २८१४

बात का वारण्ट कर सकता है, कि वह अफसर या मनुष्य किसी भी जगह में घुस कर, इस तरह के जमाव में शामिल होने वाले हब्शियों को गिरफ्तार कर ले। और वही न्यायाधीश, अथवा कोई भी, इस तरह के हब्शियों को कोड़े की सजा की आज्ञा दे सकता है। यदि कोई गोरा मनुष्य लिखना पढ़ना सिखाने के लिये हब्शियों को जमा करे तो उसे छे महीने तक की कैद की और सौ डालर तक जुरमाने की सजा दी जावेगी।

"सन् १८३४ में एक कानून दक्षिण करोलिना में हुआ था जिसकी एक धारा इस प्रकार थी,—'यदि इसके बाद कोई मनुष्य किसी गुलाम को पढ़ना या लिखना सिखाएगा या किसी गुलाम को पढ़ने लिखने में सहायता देगा या किसी गुलाम के पढ़ाने लिखाने का प्रयत्न कर या करायेगा तो इस तरह के मनुष्य को अपराध साबित हो जाने पर यदि वह गोरे रङ्ग का स्वतंत्र मनुष्य है तो हर इस तरह के अपराध के लिये सौ डालर तक जुर्माने और छे महीने तक कैद की सजा दी जावेगी, यदि वह काले रङ्ग का है तो उसे पचास तक कोड़े और पचास डालर तक जुर्माने की सजा दी जावेगी। यदि अपराधी स्वयं गुलाम वर्ग का होगा तो पचास कोड़े तक की सजा दी जावेगी।' इसी तरह के कानून अमरीका की ज्यार्जिया और ऐले बामा रियासतों में भी पास किये गए।"—मेजर बामनदास बसु की पुस्तक "एजूकेशन इन इण्डिया अण्डर ईस्ट इण्डिया कम्पनी" से उद्धृत।

मिस मेयो, साम्राज्यवाद जिस जिस देश में पहुँचा वहां उस का अपनी पराजित जाति के साथ यही वर्ताव रहा है। यदि यह साम्राज्यवाद कहीं पर शिक्षा सम्पूर्ण रीति से बन्द न कर पाता था, तो उसे परिमित और दूषित बना देता था। अमेरिका का हाल आप सुन चुकीं, अब भारत का हाल सुनिये। देखिये कि मिस्टर जी० जे० मार्शमेन ने १५ जून सन् १८५२ को हाउस आफ़ लार्डस् के सामने गवाही देते समय क्या कहा था:—

"हिन्दोस्तान में ब्रटिश गवर्नमेण्ट के स्थापन होने के बहुत दिनों बाद तक भारतवासियों के लिये किसी तरह की भी शिक्षा प्रणाली का ज़बरदस्त विरोध किया जाता था। इस विषय में इङ्गलिस्तान के शासकों के भावों का पता सब से पहिले सन् १७९२ में लगा, जब कि मिस्टर विलबरफ़ोर्स ने उस वर्ष के चारटर ऐक्ट में दो वाक्य जोड़ने की तजवीज़ की जिनका उद्देश्य यह था कि भारतवर्ष को इङ्गलिस्तान से शिक्षक भेजे जावें; कोर्ट आफ़ डाइरेक्टर्स ने इसका सब से अधिक विरोध किया और विलबरफ़ोर्स को अपनी तजवीज़ वापिस ले लेनी पड़ी। इस तजवीज़ के ऊपर जो बहस हुई वह अत्यन्त स्मरणीय है। हमारे भारत पर क़ब्ज़ा करने के समय से उस बहस में पहली बार यह मालूम हुआ कि शिक्षा के विषय में कोर्ट आफ़ डाइरेक्टर्स का मत क्या था। उस अवसर पर एक डाइरेक्टर ने कहा कि हम अमरीका अपनी इसी मूर्खता के कारण खो बैठे, क्योंकि हमने वहां पर स्कूल और

कालिज कायम होने दिये, अब हमारे वही मूर्खता भारत के विषय में भी करने से काम नहीं चलेगा, और यदि भारतवासियों को किसी तरह की शिक्षा की आवश्यकता है तो वे उसके लिये इङ्गलिस्तान आ सकते हैं। इसके बीस वर्ष बाद तक अर्थात् सन् १८१३ तक इङ्गलिस्तान के शासकों के भाव इसी तरह भारतवासियों को शिक्षा देने के विरुद्ध रहे।"

हमारा शिक्षण प्रबन्ध,—आज से सौ वर्ष पूर्व

मिस मेयो, यदि इतना ही होता, कि हमारी शिक्षा का कोइ विशेष प्रबन्ध न किया जाता तो केवल यही कहा जा सकता था कि राजा ने अपना धर्म पालन नहीं किया। किन्तु हमारे देश में जो कुछ शिक्षा का प्रबन्ध पहिले से था उसे भी साम्राज्यवाद ने आकर मिटा दिया। सुनिये मैं आप को ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स के एक सरकारी पत्र से थोड़ा सा भाग सुनाती हूं। यह पत्र १८१३ ईसवी में लिखा गया था, जिस समय अङ्गरेजी राज इस देश में कायम हुए लगभग पचास वर्ष हो चुके थे। इस पत्र से आपको मालूम होगा कि इस देश में पहिले जनता की प्रारम्भिक शिक्षा का क्या प्रबन्ध था।

"इस अवसर पर हम विशेष सन्तोष के साथ उस प्रशंसनीय आन्तरिक व्यवस्था का जिक्र करते हैं जो भारत के कुछ हिस्सों में प्रचलित है। इस व्यवस्था के अनुसार भूमि की पैदा-

चार का एक निश्चित भाग जनता की शिक्षा पर खर्च किया जाता है, ग्राम पाठशालाओं के अध्यापकों के लिये और भी स्थाई जाय-दाद आदिक का प्रबन्ध कर दिया जाता है, इस प्रकार उन अध्या-पकों को समाज के सेवक बना दिया जाता है।

"इन अध्यापकों के आधीन जिस तरह की शिक्षा अत्यन्त प्राचीन काल से भारत में दी जाती रही है, उसकी सब से ज़बर-दस्त क़द्र यह है कि इङ्गलिस्तान में भी उसकी नक़ल की गई है। रेवरेण्ड डाक्टर बेल जो पहले मद्रास में पादरी थे इसकी देख रेख करते हैं. हमारी राष्ट्रीय संस्थाओं में अब इसी प्रणाली के अनु-सार शिक्षा दी जाती है, क्योंकि हम लोगों को विश्वास हो गया है कि यह प्रणाली इतनी सरल है कि इससे बच्चों को भाषा बड़ी ही आसानी से आ जाती है।

"कहा जाता है कि हिन्दुओं की यह अत्यन्त प्राचीन और परोपकारी संस्था राज क्रान्तियों के धक्कों से भी नहीं टूटी, और इसी के कारण भारतवासी आम तौर पर मुन्शीगीरी और हिसाब रखने में इतने कुशाग्रधी हैं।"—

मिस मेयो, जिस "अत्यन्त प्राचीन और परोपकारी" संस्था को बड़े से बड़े धार्मिक तथा राजनैतिक परिवर्तन भी हानि न पहुँचा सके उसे पश्चिमी साम्राज्यवाद ने कुछ ही समय के अन्दर नष्ट भ्रष्ट कर डाला। पूर्वीय विजेता चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान अपनी प्रजा की प्राचीन संस्थाओं को सुरक्षित रखना अपने राज धर्म का मुख्य अङ्ग समझते थे।

इन विजेताओं की लड़ाई राजा राजा की लड़ाई होती थी। जो राजा विजय प्राप्त करता था वह चूंकि इसी देश में रहता सहता था, इस कारण उसका वास्तविक लाभ, उसका वास्तविक गौरव, अपने से पहले के राजा के समान देश की उन्नतिशील संस्थाओं की रक्षा तथा उनकी समृद्धि करने में ही होता था। यदि कोई राजा अपनी विलास प्रियता के कारण अपनी प्रजा से जबर्दस्ती करके कुछ अधिक धन भी वसूल कर लेता था तो भी वह समस्त धन शीघ्र ही किसी न किसी रूप में प्रजा के पास फिर पहुँच जाता था। यही कारण था कि शासकों के आए दिन बदलते रहने पर, तथा शासकों के स्वेच्छाचारी होते हुए भी, प्रजा की सम्पन्नता तथा उसकी उन्नतिशील संस्थाओं को कोई विशेष हानि न पहुँच सकती थी। इस देश में अपनी प्रजा को शिक्षित बनाने के लिये अनन्त काल से देशी नरेशों तथा श्रीमन्तों ने सहस्रों जागीरें, माफियां तथा वजीफे इस महान कार्य के लिये नियुक्त कर दिये थे। यह समस्त सम्पत्ति सदा बढ़ती ही रहती थी। यदि कोई परकीय राजा इन माफियों को बढ़ाता न था तो भी इन्हें जब्त कर लेने का विचार तो किसी के भी मस्तिष्क में आना सर्वथा असम्भव था। इसीलिये अङ्गरेजों के देश में आने के समय तक हिन्दोस्तान की प्राचीन शिक्षा पद्धति बराबर कायम रह सकी। और यही कारण था कि अङ्गरेजों के देश में आने के समय तक भारत अपने समकालीन देशों में सब से अधिक

शिक्षित था। मिस मेयो, यह केवल मेरी राय नहीं है। देखिये सर टामस मनरो ने कम्पनी के डाइरेक्टरों के एक फ़ैसले पर टिप्पणी करते हुए क्या कहा है। डाइरेक्टरों से एक स्कूल के लिये सहायता मांगी गई थी, और मनरो साहब के शब्दों में उन्होंने इन्कार इस बिना पर किया था :—

"………कमेटी ने इस बिना पर इन्कार किया कि प्रान्त स्कूलों में और अधिक वृद्धि करने के लिये काफ़ी धन कमेटी के पास नहीं है, क्योंकि शिक्षा की दृष्टि से ब्रिटिश भारत के बहुत से हिस्सों में किसानों की जितनी अच्छी अवस्था है उतनी अच्छी संसार के किसी भी दूसरे देश के किसानों की नहीं है, इसलिये हमारे पास जो थोड़ा सा फ़ण्ड कम्पनी का मंज़ूर किया हुआ है उसका अधिक अच्छा उपयोग यह होगा कि उच्च श्रेणी के भारतवासियों को उदार शिक्षा दी जावे।"

मिस मेयो, शायद आप को भी यह सुनकर आश्चर्य हो कि जिस फ़ण्ड का हवाला पूर्वोक्त वाक्य में दिया गया है वह फ़ण्ड केवल एक लाख रुपया सालाना था जो १८२३ ई० में अङ्गरेज़ी राज स्थापित होने के बाद पहली बार समस्त भारत की उच्च शिक्षा की मदद तथा प्रोत्साहन के लिये डाइरेक्टरों ने नियत किया था। ख़ैर, कुछ भी हो। इस पत्र से यह बात स्पष्ट रूप में सिद्ध हो जाती है कि १८२३ ईस्वी में,

जब यह पत्र लिखा गया था, भारत की ग्रामीण जनता अन्य देशों के लोगों से अधिक शिक्षित थी।

मिस्टर केर हार्डी अपनी "इण्डिया" नामक पुस्तक में लिखते हैं;—

"अङ्गरेजों के बङ्गाल पर कब्जा करने से पहले के सरकारी कागजों और ईसाई पादरियों की एक रिपोर्ट के आधार पर मैक्समूलर लिखता है कि अङ्गरेजों के आने से पहले बङ्गाल में ८०,००० पाठशालाएं थीं, अर्थात् हर ४०० मनुष्य संख्या पीछे एक पाठशाला मौजूद थी। लडलो साहब अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री आफ ब्रिटिश इण्डिया' में लिखते हैं कि, 'मुझे विश्वास है कि प्रत्येक ऐसे हिन्दू ग्राम में जिसका पुराना रूप अभी तक कायम है बच्चे आम तौर पर लिखना पढ़ना और हिसाब जानते हैं, किन्तु जहां कहीं हम ने प्राचीन ग्राम संस्थाओं का नाश कर डाला है जैसा कि बङ्गाल में, वहां पर ग्राम पाठशाला भी साथ साथ ही लोप हो गई।"

मिस्टर मौन्ट स्टुअर्ट एलफिन्सटन अपने शिक्षा सम्बन्धी सरकारी पत्र में दक्षिण भारत के बारे में सुनिये क्या कहते हैं —

"यह हालत बहुत दिनों जारी नहीं रह सकती। इस समय शिक्षित लोग बहुत अधिक मिलते हैं, इसका कारण यह है कि मराठा शासन में शिक्षितों की मांग बहुत [illegible]। अब वह बात नहीं रही। इसका शीघ्र ही [illegible]

कि शिक्षितों की संख्या घट जावेगी। और जब तक कि हमारी सरकार इस विषय में कोई विशेष प्रयत्न न करे तब तक इसमें कोई सन्देह नहीं कि शिक्षा के सम्बन्ध में देश की जो अवस्था पेशवाओं के राज्य मे थी उससे हमारे राज्य में अधिक हानि होगी।"*

मिस मेयो, मैं विलारी के कलेक्टर मिस्टर ए० डी० केम्वेल की एक शिक्षा सम्बन्धी रिपोर्ट आप को सुनाती हूँ। जिससे यह मालूम होता है कि इस देश में उस समय ग्राम शिक्षा प्रबन्ध की क्या दुर्दशा हो गई थी और इस रिपोर्ट से उस दुर्दशा के वास्तविक कारणों का भी पता चलता है। अपने ज़िले विलारी की दशा वे इस प्रकार बयान करते हैं:—

'देशी स्कूलों में जिस किफ़ायत के साथ बच्चों को लिखना लिखाया जाता है और जिस पद्धति के अनुसार अधिक ऊंचे दरजे के विद्यार्थी कम दरजे के विद्यार्थियों को शिक्षा देते हैं, और साथ साथ अपना ज्ञान भी पक्का करते जाते हैं, वह सब पद्धति वास्तव में प्रशंसनीय है। इङ्गलिस्तान में इस भारतीय शिक्षा पद्धति का अनुकरण किया गया है और वास्तव में यह अनुकरण के सर्वथा योग्य है। ....

* शिक्षा के विषय में अधिकतर वाक्य मेजर बसु की पुस्तक 'हिस्ट्री आफ़ एजुकेशन इन इण्डिया अण्डर दी रूल आफ़ दी ईस्ट इण्डिया कम्पनी' से लिये गये है।

"यद्यपि भारतवासियों की वर्तमान शिक्षा श्रपूर्ण है, तथापि कम भारतवासी ऐसे है जो श्रपने बच्चों को यह शिक्षा भी दे सकें।

"मुझे यह कहते हुए दुख होता है कि इसका कारण यह है कि समस्त देश दिन प्रति दिन दरिद्र होता जा रहा है। हाल मे हिन्दुस्तान के बने हुए सूती कपडे के स्थान पर हमारे यहा के श्रङ्गरेजी कपडों के भारत में श्राने का परिणाम यह हुश्रा है कि उद्योग धन्धों मे लगे हुए श्रनेकों भारतवासियों की रोजी छिन गई। हम ने श्रपनी बहुत सी सेना श्रपने इलाके से हटा कर श्रपनी नई मित्र रियासतों की दूर दूर की सरहदों पर भेज दी हैं इससे नाज की माग में बहुत बडा श्रन्तर श्रा गया है। देश की पूजी देशी सरकारों श्रौर उनके कर्मचारियों के हाथों से निकल कर यूरोपियनों के हाथों में श्रा गई है। देशी नरेश श्रोर उनके कर्मचारी इस पूजी का उदारता के साथ भारत ही मे व्यय किया करते थे, यूरोपियनों के लिए श्रब यह कानून बना दिया गया है कि वे थोडे दिनों के लिये भी इस पूजी को भारत मे खर्च नहीं कर सकते। यह पूजी प्रति दिन भारत से दुल कर बाहर चली जाती है। इसके श्रतिरिक्त सरकार की श्रोर से इस समय माल गुजारी की वसूली भी श्रत्यन्त कडाई के साथ की जाती है। इन सब बातों के कारण देश की दरिद्रता बढती जा रही है। नीच की श्रौर नीचे की श्रेणियों के लोगों मे से श्रधिकाश की इस समय यह हालत है कि वे श्रपने बच्चों के लिये शिक्षा का खर्च बरदाश्त नहीं कर सकते। इसके विपरीत उन्हे मजबूर होकर

अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये अपने बच्चों के नन्हें कोमल अङ्गों से मज़दूरी करानी पड़ती है।

" सरकार को अवश्य पता होगा कि इस ज़िले की लगभग दस लाख आबादी में से इस समय घटते घटते केवल सात हज़ार बच्चे स्कूल जाते हैं। इससे साफ़ मालूम होता है कि हमारे शासन का परिणाम कितना बुरा हुआ है। बहुत से ग्रामों में जहां पहले स्कूल थे, अब कोई स्कूल नहीं है, और बहुत से ग्रामों में जहां बड़े बड़े स्कूल थे अब केवल अत्यन्त धनाढ्य लोगों के थोड़े से बच्चे शिक्षा पाते हैं। दूसरे लोग इतने ग़रीब हो गये हैं कि स्कूल नहीं जा सकते अथवा वहां का ख़र्च नहीं बरदाश्त कर सकते।

"......विद्या......किसी भी देश में कभी भी बिना राजा की उत्तेजना और सहायता के नहीं बढ़ी, और भारत के इस भाग में विज्ञान को पहले जो सहायता और उत्तेजना मिला करती थी वह अब बन्द कर दी गई है।

"इस ज़िले में इस समय शिक्षा के लिये ५३३ संस्थाएं हैं और मुझे यह कहते हुए लज्जा आती है कि इस समय इनमें से किसी एक संस्था को भी सरकार की ओर से सहायता नहीं दी जाती......।

" इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्राचीन समय में विशेष कर हिन्दुओं के राज्य में विद्या को उन्नति देने के लिये धन की बड़ी

बडी रकमें और बडी बडी जमीनें बतौर माफी के राज्य की ओर से दी जाती थीं।

"पहले समय में राज्य की आमदनी का एक बडा भाग विद्या के बढाने और उन्नति देने में लगाया जाता था जिससे राज्य का यश बढता था, अब हमारे शासन में इतना पतन हुआ है कि इसी धन के द्वारा लोगों के अज्ञान को कायम रखा जाता है। विज्ञान को राज्य की ओर से पहले जो जबर-दस्त सहायता दी जाती थी वह अब बन्द कर दी गई है। नतीजा यह है कि अब विज्ञान को अपने गुजारे के लिये प्राय दानशील व्यक्तियों की आकस्मिक उदारता का अनिश्चित आश्रय लेना पडता है। भारत इस समय ऐसी पतित अवस्था में है, और दुर्भाग्यवश इतना अज्ञानान्धकार देश में फैला हुआ है कि भारत को इस अवस्था से निकालने और इस अन्धकार को दूर करने के लिये देश को राज्य की जितनी सहायता की इस समय आवश्यकता है उतनी भारत के समस्त इतिहास में शायद पहले कभी किसी समय में भी न हुई थी।"

मिस मेयो, यह तो प्रारम्भिक शिक्षा का हाल हुआ। सुनिये मिस्टर वाल्टर हैमिल्टन ने सरकारी पत्रों की बिना पर ८०८ में उच्च शिक्षा के सम्बन्ध में क्या कहा है —

"लोग सब विज्ञान के पठन पाठन को छोडते जाते हैं सिवाय उन विद्याओं के जिनका काम धार्मिक कर्मकाण्ड आदिक में अथवा लोगों की ज्योतिष और फलित में पडता है

और सब विद्याओं को छोड़ते जाते हैं। विद्या के इस पतन का मुख्य कारण यह मालूम होता है कि पहले समय में देशी राजाओं के आधीन राजा लोग, सरदार लोग और श्रीमन्त लोग विद्या के फैलने को जो सहायता और उत्तेजना दिया करते थे वह अब अङ्गरेज़ सरकार की ओर से नहीं दी जाती।"

मिस मेयो, मैं ने यहां की शिक्षा के विनाश का चित्र सम्पूर्ण रूप में आपको इसीलिये दिखाया है कि आप इसके प्रत्येक पहलू को खुद देख और समझ लें। अब यदि आप में तनिक भी न्याय का अंश है, तो आप स्वयं बतलाइये कि साम्राज्य-वाद ने शिक्षा के विषय में कैसा अनर्थ किया है। आप यह भी सोचिये कि जातीय शिक्षा का यह विशाल और आश्चर्यजनक प्रबन्ध जिसका इस समय हमें विश्वास होना भी कठिन है, किसने किया था। और अनन्तकाल से अनेक अनेक विजेताओं के आने जाते रहने पर भी यह प्रबन्ध किस प्रकार क़ायम रह सका।

आपकी यह अनोखी तथा द्वेषपूर्ण युक्ति कि भारत में सार्वजनिक शिक्षा इसलिये असम्भव है क्योंकि शिक्षण कार्य में देश की स्त्रियों से किसी प्रकार की सहायता नहीं मिल सकती, सर्वथा असत्य और निस्सार है। वे समस्त कुप्रथाएं जिन्हें आपने इस सम्बन्ध में गिनाया है। आप ही के कहने के अनुसार मुग़लों के समय में अंगरेजों के समय से अधिक

थी । फिर इनके रहते हुए मुगलों के समय म केवल आज से सौ वष पहिले विना स्त्रियों की सहायता के समस्त देश म ऐसे विशाल पैमाने पर शिक्षा का काय कैसे चलता रहा ?

मिस मेयो —सुनो । जो बातें तुमने मुझसे शिक्षा के सम्बन्ध म बताई उन्हें सुनकर मुझे दु ख हुआ । परन्तु पुरानी बातो का क्या रोना अब तो भारतीय सरकारें शिक्षा का यथाथ प्रबन्ध कर रही हैं ।

नवीन शिक्षा प्रणाली की वास्तविकता

प्रत्युत्तर —मिस मेयो , तीस करोड जनता के प्राचीनतम शिक्षण प्रबन्ध को तोड डालना, उन बुनियादों का ढा देना जिन पर वह प्रबन्ध कायम था , और फिर यह आशा करना कि यह समस्त जनता आसानी से शिक्षित की जा सकती है , केवल एक स्वर्णमय स्वप्न है । फिर भी बहुत कुछ हो सकता था । किन्तु मिस मेयो , हमारी वर्त्तमान शिक्षा प्रणाली का इतिहास कम दु खमय नहीं । जब वह विनाशक तूफान जो आप न देश म आते ही मचा दिये थे कुछ शान्त हुआ और अभागी , स्तब्ध जनता का फिर कुछ होश आया , तो उसने अपनी शिक्षा आदि का स्वय प्रबन्ध करने के प्रयत्न आरम्भ किये । थोडे ही समय में यह आन्दोलन इतना फैला कि शासक मण्डल को इसको रोकना कठिन दिखाई देने लगा । देखिये , सर चार्ल्स्

मेटकाफ़ ने १८३५ में जब वे गवर्नर जनरल हो गये थे, अपने एक सरकारी पत्र में लिखा था:—

"किन्तु लार्ड बेण्टिङ्क को शिक्षा के फैलने और समाचार पत्रों की कार्रवाइयों में राज्य के लिये और अधिक खतरा दिखाई देता है ? .... मैं दावे के साथ यह नहीं कह सकता कि शिक्षा के फैलने से खतरा नहीं है. किन्तु यदि शिक्षा के फैलने से लए खतरे की सम्भावना है तो भी यह एक ऐसा खतरा है जिस से हम सर्वथा बच नहीं सकते। परिणाम चाहे कुछ भी हो शिक्षा फैलाना हमारा फ़र्ज़ है, और यदि हम शिक्षा को रोकने का भी प्रयत्न करें तो भी शिक्षा फैले बिना नहीं रह सकती। यह एक अत्यन्त संदिग्ध बात है कि समाचार पत्रों के रोकने से हमारा राज्य अधिक सुरक्षित रहेगा। किन्तु यदि यह सच भी हो तो भी समाचार पत्रों को सफलता पूर्वक रोक सकना अब हमारे क़ाबू से बाहर है। हमारे लिये इस तरह के खतरनाक प्रयत्नों में पड़ना भी बुद्धिमत्ता नहीं है। इस लिये यदि वास्तव में शिक्षा के बढ़ने से हमें अधिक खतरा है तो हमें हंसी खुशी इस खतरे का सामना करना चाहिये। हमें उसे रोकना नहीं चाहिये और यदि हम रोकने के प्रयत्न करेंगे भी तो सफल न हो सकेंगे।"

—(मेजर बसु की पुस्तक "एजूकेशन इन इंडिया अण्डर ईस्ट इंडिया कम्पनी" पृष्ठ ६४)

मिस मेयो, यह देख कर कि अब शिक्षा के प्रचार को

रोकना कठिन है, आपके राजनीतिज्ञों ने, अपूर्व योग्यता स काम लिया। उन्हों ने समस्त स्कूलों में देशी जबानों के स्थान पर अङ्गरेजी को शिक्षा का माध्यम बना दिया और इन्हीं स्कूलों में पढे हुए लोगों के लिये सरकारी नौकरियां मिलना निश्चित हो गया। अन्य प्राइवेट स्कूल जिन्हें स्वय देश निवासियों ने खोला उनको भी अनेक शर्तों द्वारा अपना आश्रित तथा आधीन बनाते रहे। इस नीति स एक तो हमारी समस्त देशी जबानों की उन्नति का अन्त हो गया। साथ ही साथ देश के शिक्षित लोग अङ्गरेजी म शिक्षा पाने के कारण इस प्रकार के बन गए कि उन म और देश के अन्य लोगों में स्वभाव, विचार तथा रीति नीति आदि में कोई विशेष सम्बन्ध बाकी नहीं रहा। हमारी शिक्षित श्रेणी रहन सहन तथा जीवन के प्रत्येक विषय में अपने देशवासियों से पृथक हो कर अङ्गरेजों की आश्रित हो गई। देखिये सुविख्यात प्रोफेसर राधे क्या कहते हैं —

> हम जानते हैं कि भारत में अंगरेजों ने पाश्चात्य शिक्षा किन उच्च उद्देशों से देनी शुरू की थी तथापि यदि कोई मैक्यावेलि (कूटनीति का अनुयायी) भारतीय शिक्षा प्रणाली की रचना करता तो वह भारतवासियों की स्वाभाविक नेतृत्व शक्ति को बन्ध्या कर देने के लिये इससे अधिक चतुर उपाय दूसरा कोई नहीं निकाल सकता था कि उनकी समस्त मानसिक उन्नति को विदेशी और किताबी बना डाले।
>
> —"इनटेलेक्चुअल एण्ड पोलिटिकल करन्टस इन दी फार ईस्ट" पृष्ठ ११।

साम्राज्यवाद की इस कूटनीति का यही मुख्य उद्देश्य था और यह कूटनीति अपनी इस उद्देश्य सिद्धि में ऐसी सफल हुई कि हम देख कर दंग रह जाते हैं। सुनिये, मैं आपको सर चार्ल्स ट्रेवेलियन के एक निबन्ध से जो उन्हों ने पार्लियामेण्टरी कमेटी के सामने सन् १८५३ में पेश किया था, कुछ वाक्य सुनाता हूँ।* यह निबन्ध कुल पढ़ने योग्य है। किन्तु मैं आपको केवल इसके कुछ अंश सुनाता हूँ। देश में फ़ारसी और संस्कृत की शिक्षा क़ायम रहने देने में अङ्गरेज़ी सरकार के लिये जो भयंकर खतरे थे उन्हें बताने के पश्चात् वे कहते हैं:—

"......... हमारे बड़े से बड़े शत्रु भी इससे अधिक और कुछ नहीं चाह सकते कि हम उन प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणालियों को पुनरुज्जीवित करें जिनसे मानव स्वभाव के प्रबल से प्रबल भाव हमारे विरुद्ध भड़क उठें।

"इसके विपरीत अङ्गरेज़ी शिक्षा का प्रभाव अङ्गरेज़ी राज्य के लिये हितकर हुए बिना नहीं रह सकता। जो भारतीय युवक अङ्गरेज़ी साहित्य द्वारा हम से सुपरिचित हो जावेंगे वे हमें फिर विदेशी न समझेंगे। वे इङ्गलिस्तान के महापुरुषों का उसी उत्साह के साथ नाम लेवेंगे जिस उत्साह के साथ कि हम लेते

* दी पोलीटिकल टेन्डेन्सी आफ़ दी डिफ़रेन्ट सिस्टमस् आफ़ एजूकेशन इन यूज़ इन इण्डिया।

है। हमारी तरह शिक्षा पाकर, हमारी सी प्रवृत्तियां अपने में पैदा करके और हमारे जैसा रहन सहन रख कर उन में हिन्दूपन कम रह जावेगा और अङ्गरेजियत अधिक आ जावेगी, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि रोमन्स के अधीन विविध देशों के लोग देशी नहीं रह जाते थे बल्कि रोमन हो जाते थे। (अङ्गरेजी शिक्षा पाकर) वे लोग बजाय हमारे घातक, विद्रोही अथवा उदासीन हो जाने के उत्साह और समझ के साथ हमारे सहयोगी बन जायेंगे फिर वे विद्रोह द्वारा हमें बाहर निकालने का विचार न करेंगे।

" जब तक हम भारतवासियों को इस बात का मौका देंगे कि वे अपनी पिछली स्वाधीनता का सोचते रहें, तब तक उन्हें अपनी दशा सुधारने का एक मात्र उपाय यह दिखाई देगा कि वे तुरन्त अंगरेजों को देश से सर्वथा बाहर निकाल दें। पुराने तरीके के भारतीय देशभक्त के सामने और कोई विचार आ ही नहीं सकता।

इन लोगों में यूरोपियन विचार उत्पन्न करके ही हम उनके राष्ट्रीय विचारों को दूसरी ओर मोड़ सकते हैं। जो नौजवान हमारे विद्यालयों में शिक्षा पाते हैं वे उस अपमान स्वेच्छा शासन की ओर घृणा के साथ देखते हैं जिसमें उनके पुरखा रहते थे और अपनी राष्ट्रीय संस्थाओं को अङ्गरेजी तर्ज पर उन्नति देने की आशा करते हैं। बजाय इसके कि वे अंगरेजों को समुद्र में ढकेल देने का विचार करें उन्हें सिवाय अंगरेजों के साथ मिल कर काम

करने के और कोई उन्नति का उपाय सूझ ही नहीं सकता। वे अंगरेजी रक्षा और अंगरेजी शिक्षा पर आश्रित हैं।......

"क्रान्ति को रोकने और धीरे धीरे शान्त उन्नति कराने का एक मात्र उपाय हमारे पास यह है कि भारतवासियों के सामने यूरोपियन ढग की उन्नति का मार्ग खोल दें, भारतवासी इस समय भी इस ओर काफ़ी झुक रहे हैं। यदि हम ऐसा कर दें तो फिर वे न प्राचीन स्वाधीनता की इच्छा करेंगे और न उसे अपना लक्ष्य बनावेंगे। क्रान्ति ऐसी सूरत में असम्भव होगी और हमें बहुत दिनों तक भारत पर राज्य करते रहने का विश्वास हो जावेगा......भारतवासी हमारे विरुद्ध विद्रोह न करेंगे ......उनका सारा राष्ट्रीय कार्य यूरोपियन शिक्षा प्राप्त करने और अपने यहां यूरोपियन संस्थाएं कायम करने तक ही परिमित रहेगा, जिससे हमें कोई हानि न होगी। शिक्षित श्रेणी के लोग......स्वभावतः हमसे चिपटे रहेंगे।......हमारी प्रजा में कोई और लोग ऐसे नहीं है जो हमें अपने लिये इतना अधिक आवश्यक समझते हों जितना वे जिनके विचार हमने अङ्गरेज़ी सांचे में ढाल दिये हैं. शुद्ध स्वदेशी राज्य के वे योग्य ही नहीं रहे। यदि जल्दी से स्वराज कायम हो गया तो उन्हें हर तरह का डर है, उनकी शिक्षा ही तब उनकी ऊपर आपत्तियां आने का मूल कारण बन जावेगी।

"इस मामले में यदि हम यह करें (अर्थात् अंगरेज़ी तालीम देकर भारतवासियों को अपना आश्रित बना लें) तो यह

कोई नया तजरबा न होगा। रोमन्स ने भी (अपने साम्राज्य के लिये) ऐसा ही किया था। टैसीटस लिखता है कि (जब इ गलिस्तान रोमन्स के आधीन था तब) रोमन शासक जूलियस ऐग्री कोला की नीति यही थी कि मुख्य मुख्य अगरेजों के लडकों को रोम का साहित्य और रोम का विज्ञान पढाया जावे और उनमें रोमन सभ्यता की नफासतों का शौक पैदा कर दिया जावे। हम सब जानते है कि यह नीति कितनी सफल हुई। बजाय रोमन्स के बराबर कट्टर शत्रु बनते रहने के ब्रिटेन लोग शीघ्र ही उनके आज्ञाकारी और विश्वस्त मित्र बन गए और इन अगरेजों के पुरखों ने रोमन्स की सत्ता को जमने से रोकने के लिये जितने प्रयत्न किये थे उससे अधिक प्रयत्न उन अगरेजों ने रोमन्स का अपने देश में कायम रखने के लिये किये।

"ये बातें मैंने तजरबे से सीखी है। भारत के कुछ हिस्सों में मैं वर्षो रहा हूं जहा हमारा राज्य नया था, जहा हमने देश वासियों के भावों को मोडने का प्रयत्न नहीं किया था वहा छोटे और बडे, धनी और दरिद्र सबका केवल एक ही विचार था और वह था अपनी राजनैतिक दशा सुधारने का इसके बाद मैं कुछ वर्ष बगाल में रहा। वहा मैंने पढे लिखे बंगालियों में दूसरी ही तरह के विचार देखे। बजाय अगरेजों के गले काटने की चिन्ता के वे लोग अंगरेजी शासन के अधीन वेख मजिस्ट्रेट बनने अथवा जूरी में नाम लिखाने की आकाक्षा करते हैं। "

जिस दूरदर्शिता से यह विनाशक नीति निश्चय की गई थी उसे वैसी ही गम्भीर तथा विनाशक सफलता भी प्राप्त हुई। जो जाल आज से सौ वर्ष पहले हमारे लिये फैलाया गया था उस का कोई भी फन्दा आज तक कमज़ोर नहीं हुआ। हम उसी में फंसे हैं। अब तो दशा यह हो गई है कि इस जाल की डोरियों का सुनहरा रङ्ग देख देख कर हमें एक विचित्र आनन्द प्राप्त होता है। हम अलौकिक मधुर स्वरों में सिखाये हुये गान गाते हैं, सिखाई हुई सीटियां बजाते हैं और अपने अशिक्षित देश भाइयों से स्वयं उत्तम तथा श्रेष्ठ होने के अभिमान द्वारा अपूर्व प्रसन्नता प्राप्त करते हैं। यह विचार कि हम क़ैदी हैं हमें कभी नहीं आता। हम यह भी भूल गये कि जिस बाग़ पर यह स्वर्णमय जाल पड़ा है वह कभी हमारा ही था। पक्षी अपने जाल के फन्दे टूट जाने पर कभी उस के भीतर नहीं रुकता। परन्तु हम मनुष्य हैं! दूरदर्शी हैं! इसलिये जाल के तार टूट जाने के विचार ही से हमारा दिल धड़कने लगता है! मालिक के क्रोध का भय, अन्य स्वतंत्र पक्षियों का डर हमें सहमा देता है। और यदि हमें यह शंका भी हो जावे कि इस जाल की डोरियां टूट रही हैं तो हम इनकी मज़बूती का स्वयं प्रबन्ध करते हैं और स्पष्ट वेदनापूर्ण स्वरों द्वारा अपने मालिक का ध्यान इस भयंकर अवस्था की ओर आकर्षित करते हैं।

'मिस मेयो, आपने यह योग्य कपटप्रबन्ध करके

अर्थात् हमारे समस्त शिक्षित विभाग को अंगरेजी साँचे में ढाल कर, साथ ही साथ अंगरेजी शिक्षा को हमारी जीविका कमाने का एक मात्र साधन बना कर हमारे नवयुवकों को, जिन पर इस देश की समस्त भावी कामनाओं का दारोमदार था, हम से छीन लिया। जिस प्रकार मैन्चेस्टर की मशीनें इस देश के लिये वस्त्र बनाती हैं उसी प्रकार आप की पाठशालाएं इस देश में सरकारी चाकर ढालती हैं। फिर यदि यह अभागे लड़के आपके पीछे "नौकरी दो या मौत" कहते न फिरें तो क्या करें? इन की यह वेदनापूर्ण आवाज सुन कर आप हंसती हैं? ये स्वाभाविक है। आप को इन से नफरत आना इससे भी अधिक स्वाभाविक है। परन्तु, मिस मेयो, यह आवाज हमारे कलेजे के पार हो जाती है। हमारे यह अभागे नवयुवक आपकी कूट नीति का नहीं समझ सकते। यह क्या जानें कि अपने देश में साम्राज्यवाद की कालचक्र रूपी मशीन के वास्तविक चलाने वाले वे ही हैं। यह यह भी नहीं जानते कि आप ने इन्हें एक विचित्र पश्चिमी कठपुतली इसलिये बना दिया है, कि शासन कार्य सञ्चालन के साथ साथ वे आप के देश के बने हुए माल के ग्राहक बनें। और अपने देश में, आप की बनाई हुई वस्तुओं के प्रचार के लिये, जीवित विज्ञापनों का काम करें। न इन्हें यह खबर है कि आप के समान बनने की कोशिश कर के वे आपके तो कदापि नहीं बन सकते, परन्तु अपने देश से अवश्य छूट जाते हैं।

मिस मेयो, यह असम्भव है कि इस कूट नीति के सारे पहलुओं को आप जानती न हों, किन्तु यह सब ज्ञान होते हुए भी जान बूझ कर, इन्हें इस प्रकार की शिक्षा देने के बाद, इन अभागों को अपने ग्रामीण देश बन्धुओं की सेवा का व्यंगपूर्ण उपदेश देते हुए आप का दिल न दुखा। खैर, यह सब सुनने के बाद यह बताइये कि जो व्यङ्ग आप ने अपनी पुस्तक में हमारी शिक्षित श्रेणियों की वर्तमान स्थिति पर किये हैं उनका वास्तविक उत्तरदायित्व किस पर है।

मिस मेयोः—इस में संदेह नहीं कि जो बातें तुम सुनाती हो और जिन लोगों के वाक्य प्रमाण में उपस्थित करती हो यह सब देख कर मुझे कुछ आश्चर्य अवश्य होता है। परन्तु प्रश्न यह है कि यदि इस देश में आज से सौ वर्ष पहिले शिक्षा का प्रबन्ध वैसाही होता जैसा तुम साबित करना चाहती हो तो यह देश कदापि विज्ञान, कला कौशल, उद्योग इत्यादि में अन्य देशों के पीछे नहीं रह सकता था। जब यह अपनी सांसारिक आवश्यकताओं को ही पूरा न कर सका तो मैं कैसे मान लूं कि यहां कभी वैज्ञानिक उन्नति अन्य देशों से अधिक थी।

हमारी तिजारत आज से सौ वर्ष पूर्व

प्रत्युत्तरः—मिस मेयो, कला कौशल, उद्योग धन्धों में यह देश अन्य देशों से पीछे न था। मैं आप को इस सम्बन्ध में

भी कुछ प्रसिद्ध अङ्गरेजा की गवाही सुनाती हूँ जो उन्हों ने सन् १८१३ म पार्लिमेन्ट की लार्डस् कमेटी के सामने दी थीं। प्रश्न यह था कि भारत म विलायती माल की खपत किस प्रकार की जाय। गवाही केवल उन अनुभवी अगरेजों की ली गई थी जो भारत म वर्षावर्ष रह चुके थे। बयान लिये जाने के पहले इन गवाहा को सच बोलने की शपथ दी जाती थी। लीजिये सर जान मालकम की गवाही सुनिये :—

"सवाल —क्या आप की सम्मति में हिन्दुस्तान आमतौर पर एक ऐसा देश है जहा कला कौशल तथा उद्योग धन्धे बहुत बढे हुए हैं।

जवाब —मैं समझता हू कि हिन्दुस्तानी अत्यन्त मेहनती लोग हैं, और उनमें समस्त पसे कला कौशल तथा उद्योग धन्धों का सीख लेने की विशेष योग्यता है, जो उन्हें सिखाए जावें।"

मिस्टर स्टीफन गेसरोल्ड वाशिङ्गटन ने यह जवाब दिये थे —

सवाल —यह बताइये कि आप की राय में हिन्दुस्तानी वैसे ही मेहनती, वैसे ही जहीन और कला कौशल तथा उद्योग धन्धों मे होशियार और निपुण है या नहीं जैसे उन सब अन्य देशों के लोग जिन देशों से आप स्वय परिचित है ?

जवाब —कोइ भी जीवित मनुष्य हिन्दुओं से अधिक परिश्रमी अधिक धैर्यशील तथा सन्तोष पूर्ण नहीं हो सकता। यह

लोग अपने पूर्वजों से कला कौशल तथा उद्योग धन्धों की शिक्षा ग्रहण कर लेते हैं और अपना तमाम ध्यान अपने धन्धे की ओर लगा देते हैं संसार की कोई जाति इनका मुकाबला नहीं कर सकती।

मिस्टर विलियम फ्रेजर्स्नी ने जो तीस वर्ष तक बङ्गाल में एक व्यापारी की हैसियत से रह चुके थे यह गवाही दी थी :—

सवाल:—क्या आपकी राय में वर्तमान स्थिति में हिन्दुस्तान में विलायती सामान और तिजारत का माल खपाने की गुंजाइश बिल्कुल नहीं है।

जवाब:—हां, मेरे ख्याल में इस वक्त वहां बिल्कुल गुंजाइश नहीं है। क्योंकि कुछ साल पहिले जब मैं हिन्दुस्तान से लौटा हूं तो यहां का माल वहां कुछ नुकसान से बेंचा जा रहा था और मेरे ख्याल में यहां का माल वहां अब भी नुकसान पर बेंचा जा रहा है।

सवाल:—क्या आप कमेटी को बताएंगे कि वह क्या क्या वस्तु है कि जिनकी मांग हिन्दुस्तान के लोगों में है।

जवाब:—ख़ास ख़ास चीज़ें लोहा, सीसा, ताम्बा, ऊनी चीज़ें और कुछ अन्य प्रकार की वस्तु जैसे ऐनक, और दर्वाज़ों के कब्ज़े आदि, तथा अन्य कुछ इसी प्रकार की छोटी छोटी चीज़ें। किन्तु हिन्दुस्तानी प्रत्येक ऐसी वस्तु को स्वयं तैयार कर सकते हैं जिनकी इनको आवश्यकता होती ह।

सर टामस मनरो जो उस समय अट्ठाईस वर्ष तक हिन्दोस्तान म रह चुके थे और जो बाद को मदरास प्रान्त के गवर्नर नियत किये गये थे, इस सम्बन्ध में जो कुछ कहते ह वह आप के सुनने योग्य है सुनिये :—

मैं ने हिन्दुस्तानियों में यहा के माल के लिये कभी कोई विशेष रुचि के चिन्ह नहीं देखे। मैं ने अपने यहा जाने, रहने और वापस आने के कुल समय में, जो लगभग अट्ठाइस वर्ष है, हिन्दुस्तानियों में इस रुचि के विषय में कोई तबदीली नहीं पाई। मेरे ख्याल म इसकी वजह यह नहीं है कि यहा की चीजों की कीमत ज्यादा होती है बल्कि इस परिस्थिति के वास्तविक कारण चीजों के माल के प्रश्न से अधिक गम्भीर, अटल, तथा चिरस्थाई ह

सवाल —क्या मैं यह समझूं कि आप की राय में हिन्दुस्तान के लोग इतने कला कौशल उद्योग धन्धों आदि में निपुण हैं, और योग्य व्यापारी हैं, इसलिये वे हर ऐसी वस्तु के बना लेने की सामर्थ्य रखते हैं जिनकी माग हिन्दोस्तान में उत्पन्न हो सके।

जवाब —हां मेरे ख्याल में वे लोग हर ऐसी वस्तु को तयार कर लेने की योग्यता रखते हैं जिसकी मांग वहा हो सके, और हम अपना तिजारती माल वहां बेच कर लाभ उठाने के सम्बन्ध में सब से बड़ी कठिनाई यह है कि हम लोग कला कौशल तथा उद्योग धन्धों के लिहाज से (as a manufacturing Nation) हिन्दोस्तान से पीछे ह।

मिस मेयो, जितनी गवाहियां इस कमेटी के सामने हुई थीं और जिनकी तादाद लगभग सौ के क़रीब थी उन सब ने एक आवाज़ में यही विचार दोहराये थे। अब बताइये कि यह सब सुन कर आपको कुछ आश्चर्य होता है या नहीं?

यह पौराणिक युग की कथा नहीं, मिस मेयो, यह सन १८१३ की भारतीय अवस्था का चित्र है। उस समय तक अङ्गरेज़ी राज को इस देश में क़ायम हुये लगभग पचास वर्ष हो चुके थे। अब यदि आप यह भी देखना चाहती हैं, कि सन् १८१३ तक, हिन्दोस्तान के व्यापार को सफलता प्राप्त किये हुए कितने युग हो चुके थे और किस अविश्वसनीय रूप में इसने संसार की समस्त मंडियों को अपना लिया था, तो सुनिये डाक्टर राबर्टसन इस विषय में क्या कहते हैं। उनका कहना है कि "हज़रत ईसा के जन्म के समय से लेकर "उन्नीसवीं सदी के शुरू तक" भारत के साथ अन्य देशों का व्यापार बराबर इस ढंग का रहा":—

> हर ज़माने में सोना और चांदी और ख़ास कर चाँदी दूसरे मुल्कों से हिन्दोस्तान को भेजी जाती रही है। जिससे हिन्दोस्तान को बहुत बड़ा फ़ायदा रहा है। पृथिवी का और कोई हिस्सा ऐसा नहीं है जहाँ के लोग अपने जीवन की आवश्यकतायें अथवा अपने ऐश की चीज़ों के लिये दूसरे देशों पर इतना कम निर्भर करते हों। ईश्वर की दी हुई निहायत अच्छी आब हवा, उपजाऊ

जमीन और इनके ऊपर यहाँ के लोगों की दक्षता यह सब चीजें मिल कर हिन्दुस्तानियों की समस्त इच्छाओं को पूरा कर देती हैं। नतीजा यह है कि इनके साथ सदा एक ही ढंग से तिजारत होती रही है, और इनके यहाँ की विचित्र कुदरती तथा हाथ की बनी हुई चीजों के बदले सोना चाँदी इन्हें दी जाती रही है।

—ए हिस्टारिकल डिसकवरीज़ रिलेटिंग इण्डिया, पेज ८१०

यदि आप यह सुनना चाहते हैं कि यह सोना चाँदी किन किन देशों से आता था तो देखिये मिस्टर मोर्लैण्ड साहब* ने इसका निम्न लिखित ब्योरा दिया है।

अनेक स्थानों से भारत में खजाना आता था। ऊपर कहा जा चुका है कि पोर्तुगाल से सरकारी तौर पर जो कुछ माल भारत आता था वह सब केवल चान्दी होती थी, यह चांदी भारत का बना हुआ माल खरीदने में खर्च की जाती थी और यह माल भारत से जहाजों में लाद कर पूर्व की ओर तथा पश्चिम की ओर दोनों ओर भेजा जाता था। लाल समुद्र के ऊपर भारतीय माल की जो तिजारत होती थी उससे बड़ी बड़ी रकमें भारत आती थीं मोखा में भारत का बना हुआ जो माल बेचा जाता था उसमें से अधिकांश के बदले में वहाँ नकदी वापिस आती थी। ईरान के साथ जो भारत का व्यापार था उसके कारण ईरान से भी बहुत कुछ चांदी आती थी, मोज़ाम्बीक और मुज़म्बीक में पोर्तुगालियों की जो बस्तियाँ थीं इनका मुख्य

*इण्डिया एट दी डेथ आफ अकबर, सफा / पेज २८३

उद्देश्य पूर्वीय अफ़रीका का सोना था, और यह सोना भी भारत आता था। पूर्व से और पश्चिम से, पेरु से, स्याम से, टापुओं से और जपान से अर्थात् सिवाय चीन के लग भग समस्त देशों से भारत में ख़ज़ाना आता था, केवल चीन से ख़ज़ाने को बाहर भेजा जाना क़ानूनन मना था। मालूम होता है कि इसी तरह का नियम भारत में भी था।

मिस मेयो. ग्रिनी के ज़माने से लेकर अट्ठारहवीं शताब्दी के अन्त तक यूरोप तथा अन्य देशों के राजनीतिज्ञ भारत की सफलता सम्पन्नता को देख कर हाथ मलते थे। टेलर लिखता है कि जब हिन्दुस्तान का माल 'हिन्दुस्तानी जहाज़ों में लदा हुआ' टेम्स नदी में पहुँचता था तो इङ्गलिस्तान में ऐसा तहलका मच जाता था कि 'जैसे किसी शत्रु के जहाज़ी बेड़े ने देश पर आक्रमण किया हो।'

मिस मेयो— यह हिन्दोस्तानी जहाज़ विलायत में कैसे? यह आप के टेलर साहब ने कोई ख़्वाब तो नहीं देखा था।

हिन्दुस्तानी जहाज़ी उद्यम का अन्त

प्रत्युत्तरः— मिस मेयो तुम तो क्या हम ख़ुद ही भूल गये हैं कि आज से सौ वर्ष पूर्व हम क्या थे। नहीं मिस मेयो, टेलर साहब ने स्वप्न नहीं देखा था। आज से सौ वर्ष पूर्व हम सहस्रों जहाज़ बनाते थे, और इंगलिस्तान से सस्ते और अच्छे बनाते थे। सुनो सन् १८०० ईसवी में हिन्दोस्तान के गवर्नर जनरल

लार्ड वेलेस्ली ने यहा के जहाजों के सम्बन्ध म अपने मालिक ईस्ट इण्डिया कम्पनी के डाइरेक्टरों को क्या लिखा था —

"बङ्गाल में, प्रिन्स आफ वेल्स टापू में और अन्य समुद्री स्थानों में, बढ़िया जहाज बन सकते हे।

एक अन्य स्थान पर बङ्गाल के सम्बन्ध म लिखा हे,—

कलकत्ते के बन्दरगाह में लोगों के निजी जहाज जितने इस समय मिल सकते ह उसे देख कर, और यह देख कर कि जहाज बनाने कि विद्या में बङ्गाल ने इस समय तक कितना जबरदस्त कमाल हासिल किया हे (और आइन्दा इससे अधिक वेग के साथ उन्नति की आशा हे और लकड़ी भी यहा खूब काफी और दिन प्रति दिन अधिकाधिक मिल सकती है) यह सब देखकर इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता कि बङ्गाल के वैयक्तिक अङ्गरेज सौदागरों की तिजारत का लन्दन के बन्दरगाह तक पहुचाने के लिये, जितने जहाजों की भी जरूरत होगी उतने इस बन्दरगाह में सदा मिल सकेंगे।

बम्बई के सम्बन्ध म,—

अकेले बम्बई मे अङ्गरेजों के जहाजी बेड़े के लिए हर डेढ़ साल में दो बड़े युद्ध के जहाज या एक बड़ा और एक छोटा युद्ध का जहाज बन सकता है। बम्बई के डाक्स (जहाजों के बनने और मरम्मत होने की जगह) में जो जगह है उसमें बड़े से बड़े जहाज आ सकते हैं।

बम्बई मलाबार के जङ्गलों और गुजरात के जङ्गलों

के बीच में है, इसलिये वहां पर हवा के हर झोंके के साथ लकड़ी के लट्ठे आते रहते हैं। हमारे भारतीय इलाकों में अच्छी क़िस्म का सन भी पैदा होता है। यह अन्दाज़ा लगाया जा चुका है कि इङ्गलिस्तान के जहाज़ी बेड़े का प्रत्येक जहाज़ हर बारह साल में नए सिरे से बनाया जाता है। यह बात सुप्रसिद्ध है कि साखू की लकड़ी के बने हुए जहाज़ पचास साल तक और कभी कभी उस से अधिक चलते हैं। बम्बई के बने हुए कई जहाज़ १४ या १५ साल तक चलने के बाद इङ्गलिस्तान के युद्ध के बेड़े के लिये ख़रीद लिये गए और यह देखा गया कि वे इतने ही मज़बूत थे जितना कोई भी नया जहाज़ हो सकता था। 'सर एडवर्ड ह्यूजीज़' नामक जहाज़ मैं समझता हूं आठ बार भारत से यूरोप आया गया और उसके बाद हमारे नेवी (युद्ध के बेड़े) ने इसे ख़रीद लिया। कोई यूरोप का बना हुआ तिजारती जहाज़ इस योग्य नहीं होता कि छै बार से अधिक भारत और यूरोप के बीच सुरक्षित यात्रा कर सके। बम्बई में जो जहाज़ बनाये जाते हैं उनकी क़ीमत उन जहाज़ों के मुकाबिले जो इङ्गलिस्तान के डाक्स में बनाये जाते हैं एक चौथाई कम पड़ती है। .... अंगरेज़ी बने हुए जहाज़ों को चूंकि हर बारहवें साल नये सिरे से बनाना पड़ता है इसलिये कीमत का फ़र्क़ (हर पचास वर्ष में) चौगुना हो जायगा"।

लार्ड वेलेस्ली ने बहुत चाहा कि यहां की जहाज़ बनाने की तिजारत का विनाश न किया जाय परन्तु डाइरेक्टरों

ने न माना। जो वजह इन कारखानों के बन्द कर देने की दी थी उनमें से दो सुनने के योग्य हैं —

"भारतीय मल्लाह अधिकतर मुसल्मान होते हैं। ये लोग जब अपने जहाजों में इङ्गलिस्तान आते हैं तो यहां पहुंचते ही उन्हें इस प्रकार के दृश्य देखने को मिलते हैं कि जिनके कारण वह आदर और सम्मान जो उन्हों ने भारत में रहते हुए यूरोपियन चरित्र के विषय में अपने दिल के अन्दर कायम कर रखा था वह एक दम जाता रहता है। इस से हमारे राष्ट्रीय चरित्र का बड़ा अपमान होता है। इन भारतीय मल्लाहों की जो कुछ थोड़ी बहुत पूंजी होती है वह यहां लूट ली जाती है, यहां तक कि वे विवश होकर हमारी गलियों में फटे कपड़े और दरिद्र अवस्था में घूमने लगते हैं।

अभी तक पूर्व में हमारे प्रभुत्व के कायम रहने का कारण यही है कि हमारी एशियाई प्रजा हमारे चरित्र के लिये बड़ा आदर अनुभव करती है। इस आदर का बहुत दरजे तक यह कारण है कि वे दूर बैठे हुए भारत में बहुत थोड़े से और वह भी अधिकतर उच्चतर वर्गों के अंगरेजों को देखते हैं। भारतीय मल्लाह जो घृणित बातें हमारे राष्ट्रीय चरित्र के विषय में फैलाएंगे उसका परिणाम यह होगा कि भारतवासी हमारी ओर आदर प्रकट करने के बजाय धीरे धीरे हमारे विषय में अत्यन्त नीच विचार कायम कर लेंगे। उन्हें यह देख कर क्रोध होगा कि अभी तक वे हमारी ओर अनुचित आदर दिखलाते रहे अथवा

हमें बहुत बड़ा समझते हैं। यदि ये विचार एक बार उनमें फैल गया तो इसके परिणाम हमारे लिये अत्यन्त हानिकर होसकते हैं।

दूसरी वजह सुनिये :—

निस्सन्देह शांति क़ायम होजाने के बाद हमें हिन्दोस्तानी मल्लाहों की जगह अङ्गरेज़ मल्लाह नियुक्त करने पड़ेंगे। इन में से बहुत से अङ्गरेज़ मल्लाहों को सौदागरों की नौकरियां करनी पड़ेगी। किसी अङ्गरेज़ का दिल इस बात को गवारा नहीं कर सकता कि जिन बहादुर अङ्गरेज़ों ने अपने देश की इतनी सेवा की है उन्हें रोटी खाने को न मिले और हिन्दोस्तान के मल्लाह अङ्गरेज़ों के जहाज़ अङ्गरेज़ी बन्दरगाहों में लेकर आवें।

आपने ये कारण सुनें। मिस मेयो, इस समय यह अन्दाज़ कर सकना कि आज से सौ वर्ष पूर्व किस संख्या में ये जहाज़ यहां बनते थे असम्भव है। लेकिन आप कुछ अन्दाज़ा इससे लगा सकती हैं कि सन् १८५७ में ३४२८६ जहाज़ भारत के बने हुए इंगलिस्तान की बन्दरगाहों में गये थे। मिस्टर विलियम डिग्बी ने पार्लिमेन्टरी कागज़ात से उद्धृत कर के यह ब्योरा दिया है* :—

सन् १८५७	जहाज़	वज़न (टन में)
हिन्दुस्तानी (आये और गये)	३४२८६	१,२११९५८
विलायती और हिन्दोस्तानी विलायती	५२२४१	२४७५४७२

मिस मेयो :—लेकिन सुनो तो। सम्भव है कि धार्मिक प्रपंचों

* —'प्रासपरस ब्रिटिश इण्डिया' पेज ८६, ८७, ८८,

म फसे होने के कारण, तुम्हारा देश, वैज्ञानिक उन्नति के युग में योरप के साथ न चल सका हो फिर जब तक तुम्हारे पास कोई विशेष सुबूत इस बात का न हो कि साम्राज्यवाद ने तुम्हारे व्यापार को हानि पहुँचाई में उस पर जिम्मेदारी कैसे रख सकती हूँ।

अन्य उद्योगों का विनाश

प्रत्युत्तर — मिस मेयो, में इस बात का सुबूत आप को दो तरह से दे सकती हूँ। एक तो यह दिखा कर कि इङ्गलिस्तान न इस देश, के व्यापार के साथ स्वय इङ्गलिस्तान में क्या किया, दूसरे यह दिखा कर कि इसी देश म क्या किया। पहले इङ्गलिस्तान को लीजिये, देखिये सुविख्यात लेकी इसके विषय म क्या कहता है —

> भारत के बने हुए कपडे उन दिनों इतने सुन्दर सस्ते और मजबूत होते थे कि १८ वीं शताब्दी के शुरू ही में इङ्गलिस्तान के कपडा बुनने वालों को हिन्दुस्तान के कपडा के मुकाबिले में अपने रोजगार के नष्ट हो जाने का डर हो गया। उसी समय से इङ्गलिस्तान को पार्लियामेन्ट ने कई तरह के भारतीय कपडों का इङ्गलिस्तान में आना कानून बन्द कर दिया और दूसरी तरह के कपडों पर अगरेजी कारीगरों की रक्षा के उद्देश्य से भारी महसूल लगा दिये।*

---

* लेकीज हिस्ट्री आफ इङ्गलैण्ड इन दी एटीन्थ सेंचुरी वाल्यूम ७ पेज २५५—२६६, ३२०

इतना ही नहीं सन १७६६ में लेकी के बयान के अनुसार इंगलिस्तान के अन्दर यदि कोई अंगरेज़ स्त्री हिन्दोस्तानी कपड़े की पोशाक पहनती थी तो उसे राज दण्ड दिया जाता था। जनता में यहां का माल ख़रीदने के विरुद्ध इतना घोर प्रोपोगेन्डा किया गया कि इंगलिस्तान में स्त्रियों का भारत में बने हुए कपड़े पहन कर बाहर निकलना कठिन हो गया। एक ही नहीं अनेक बार अंगरेज़ व्यापारियों को स्त्रियों के कपड़े सड़कों पर फाड़ डालने के अपराध में जुरमाने और सज़ाएं भोगनी पड़ीं। परन्तु यह सब जाने दीजिये।

मिस मेयो :—जनता के भावों की ज़िम्मेदारी राज पर नहीं डाली जा सकती—

अच्छा मिस मेयो, मैं आप को उन महसूलों आदि का ब्योरा सुनाना चाहता हूँ जिनका लेकी ने हवाला दिया है। देखिये राबर्ट ब्राउन नामक एक अंगरेज़ व्यापारी ने पार्लिया-मेन्टरी कमेटी (१८३०-१८३२) के सामने इस सम्बन्ध में जो गवाही दी थी उसका सारांश सुनिये :—

उन दिनों हिन्दोस्तान से जाने वाले कपड़ों पर इंगलिस्तान में दो तरह का महसूल लिया जाता था। एक, माल के अंगरेज़ी बन्दरगाहों में उतरते ही और दूसरे इंगलिस्तान निवासियों के उपयोग के लिये इंगलिस्तान की मंडियों में माल के पहुचने के समय। इसके अतिरिक्त तमाम हिन्दोस्तानी माल को तीन श्रेणियों में बांट दिया गया था। पहिली श्रेणी में

मलमल इत्यादि थी, जिन पर बन्दरगाह में उतरते समय १० फी सदी और इंगलिस्तान की मंडियों में जाते समय २०$\frac{1}{3}$ फी सदी महसूल लिया जाता था। दूसरी श्रेणी में कैलिको (कालीकट का एक खास कपड़ा) इत्यादि थे जिन पर बन्दरगाह में उतरते समय ३$\frac{1}{2}$ फी सदी और मंडियों में जाते समय ६८$\frac{1}{4}$ फी सदी महसूल लिया जाता था। तीसरी श्रेणी में वे कपड़े थे जिनका बेचना व पहिनना इंगलिस्तान के अन्दर जुर्म समझा जाता था। इस तरह के माल पर बन्दरगाहों में उतरते समय ३$\frac{1}{2}$ फी सदी महसूल लिया जाता था और व्यापारियों के लिये आवश्यक था कि उस माल को फौरन दूसरे मुल्कों को भेज दें। बावजूद इतने भारी महसूल के दूसरी श्रेणी के कपड़े उस तरह के अँगरेजी कपड़ों के मुकाबले में इङ्गलिस्तान के बाजारों में ६० फी सदी तक कम दाम में मिलते थे।

१८१३ से १८३२ तक हिन्दोस्तान से जाने वाले कपड़ों और अन्य तरह तरह के माल पर जिनमें हाथ की चूड़ियें, बरतन, चटाइयाँ, शकर, साबुन, और कागज जैसी चीजें भी शामिल थीं। इंगलिस्तान की आवश्यकतानुसार महसूल बराबर घटता बढ़ता रहा। कई तरह के कपड़ों—खास कर रेशमी रुमालों और रेशम की बनी हुई चीजों का बिकना इंगलिस्तान में सन् १८२० तक बिल्कुल बन्द रहा। बहुत सी चीजों पर १०० फी सदी से भी ज्यादा महसूल लिया जाता था, कई पर ६०० फी सदी तक और रिकार्ड नामक एक अंगरेज ने सन् १८३२ की पालियामेंटरी कमेटी के सामने बयान किया कि किसी एक चीज पर ३००० फी

सैकड़ा तक टेक्स लिया जाता था, अर्थात एक रुपये की चीज़ पर तीन रुपये टेक्स लिया जाता था।

मिस्र मेयो, जिस जिस प्रकार का माल हिन्दोस्तान से इंगलिस्तान जाता था और जो जो चुंगी उस पर देनी पड़ती थी उसका अन्दाज़ा आप को निम्न लिखित फ़ेहरिस्त से हो जावेगा।

माल की किस्म			चुंगी
ऐलुआ	—	—	२८० फी० सदी० (पौंड)
हींग	—	—	६२२ ,, ,,
इलायची	—	—	२६६ ,, ,,
काफी	—	—	३७२ ,, ,,
काली मिर्च	—	—	४०० ,, ,,
चीनी	—	—	३९३ ,, ,,
चाय	—	—	१०० ,, ,,
अखरोट	—	—	६८ ,, ,,
हाथ में लेने की रंगीन, सोना चाँदी मढ़ी हुई, कामदार छड़ियां			८१ ,, ,,
चीनी और पोरसलेन के बर्तन			१२९ ,, ,,
रस्सी	—	—	८१ ,, ,,
सूती कपड़े, मलमल, मार्कीन, केलिको इत्यादि			८१ ,, ,,

माल की किस्म			चुङ्गी
ऊन	—	—	८१ फी० सदी० (पौंड)
वार्निश का सामान	—		८१ ,, ,,
चटाइया	—	—	८१ ,, ,,
रेशम के कपडे सन १८२० तक मन्द			
उसके बाद	—	—	३० ,, ,,
साबुन	—	—	८१ ,, ,
शराब	—	—	१ गि० फी सदी०

मिस मेयो —इस म क्या हुआ अपने व्यापार को बचाने का प्रत्येक देश को अधिकार होना है।—

प्रत्युत्तर — परन्तु मिस मेयो यह आप भूलती हैं कि उस समय भारत और इङ्गलिस्तान दोनों एक ही साम्राज्य के अग हो चुके थे। खैर यह जाने दीजिये। अब मैं आप को यह सुनाती हू कि स्वय भारत म इस विषय में क्या क्या किया गया। शायद इसे सुन कर आप के दिल पर असर पडे। जरा यहां के चुङ्गी के प्रबन्ध को देखिये। फ्रेडरिक शोर नामक उस समय के एक अङ्गरेज विद्वान ने यहा की चुङ्गी के सम्बध म जो कुछ लिखा है आप के देखने योग्य है। साराश सुनिये —

चु गी वसूल करने का पुराना हिन्दोस्तानी तरीका अथात् मुगलों या नवाबों के वक्त का तरीका यह था कि हर चालीस,

पचास अथवा साठ मील के ऊपर चुंगी घर बने हुये थे। हर चुंगी घर को पार करते समय व्यापारी को अपने माल पर चुंगी देनी पड़ती थी जो एक लदे हुये बैल पर, एक खास रक़म, टट्टू पर इससे कुछ ज़्यादा, ऊँट पर और कुछ ज़्यादा, बैलगाड़ी पर उससे कुछ अधिक इत्यादि—इस हिसाब से मुकर्रर थी। माल की क़ीमत या क़िस्म से चुंगी का कोई सम्बन्ध न था। इसके अतिरिक्त चुंगी इतनी हलकी होती थी कि कोई उससे बचने की कोशिश न करता था। न किसी को माल खोल कर देखने की आवश्यक्ता होती थी, न किसी 'पास' या रवन्ने की ज़रूरत और न किसी और खटराग की। जो व्यापारी अपना माल अधिक दूर ले जाता था उसे हर ५० या ६० मील के बाद वही बंधी हुई रक़म दे देनी होती थी। इसके स्थान पर जो नया तरीक़ा अंगरेज़ों ने जारी किया वह यह था :—

पुराने चुंगी घरों के अलावा देश भर में अनेक 'चौकियां' बना दी गई थीं जिन में तमाम माल को खोलकर देखा जाता था। चुंगी घर में व्यापारी से एक बार चुंगी ले ली जाती थी और उसे एक पास या रवन्ना दे दिया जाता था ताकि उस व्यापारी को दोबारा कहीं चुंगी न देनी पड़े। चुंगी की रक़म माल की क़ीमत और क़िस्म के अनुसार नियुक्त थी। चाहे व्यापारी को अत्यन्त दूर जाना पड़े चाहे निकट, किन्तु रक़म वह मुकर्रर की गई थी जो इससे पहिले दूर से दूर जाने वाले व्यापारी को रास्ते भर के चुंगी घरों पर मिला कर भी न देनी पड़ती थी। इस

प्रकार पहिली बात तो यह हुई कि देश के आन्तरिक व्यापार पर चुंगी पहिले की अपेक्षा कई गुनी बढ़ गई।

दूसरी खास बात, इस नए तरीके में रवन्ना थी। एक व्यापारी के किसी एक स्थान से चलते समय उसके तमाम माल पर एक रवन्ना दिया जाता था। यदि कहीं पर व्यापारी अपना आधा माल बेच देवे, तो शेष अथवा बचे हुए माल के लिये उसे पास के चुंगी घर पर जाकर पिछला रवन्ना दिखला कर माल का रवन्ने के साथ मुकाबला करवा कर और आठ आने सैकड़ा नया महसूल देकर आवश्यकतानुसार एक या अधिक नये रवन्ने ले लेने होते थे। यदि माल में से कोई हिस्सा न भी बिका हो तो भी बारह महीने के बाद हर रवन्ना रद्दी हो जाता था। व्यापारी के लिये जरूरी था कि बारह महीने खतम होने से पहिले किसी पास के चुंगीघर पर जाकर पिछले रवन्ने से अपने माल का मुकाबिला करवा कर और आठ आने सैकड़ा नया महसूल देकर नया रवन्ना हासिल कर ले, अन्यथा बारह महीने समाप्त होने के बाद उसे अपने तमाम माल पर फिर नये सिर से चुंगी देनी पड़ती थी।

तीसरी और सब से बढ़ कर चीज इस नये तरीके में चुंगी की चौकियां थीं। ये चौकियां देश भर में जगह जगह बना दी गई थीं। चौकियों के छोटे से छोटे मुलाजिमों को किसी भी माल को रोक लेने, उसे खुलवा कर देखने और रवन्ने से मुकाबिला करने आदि का अधिकार था। यदि माल रवन्ने के

मुताबिक़ न होता था अथवा व्यापारी के पास रवन्ना न होता था तो इन चौकियों पर सारा माल क़ानूनन ज़ब्त कर लिया जा सकता था। इस पर तारीफ़ यह कि यदि कोई व्यापारी किसी ऐसे स्थान से माल लेकर चलता था कि जहां से घाने के चुंगी घर तक पहुंचने से पहिले उसे किसी तलाशी की चौकी पर से जाना पड़े तो उस से यह आशा की जाती थी कि वह अपने घर से माल लेकर निकलने से पहिले ही किसी पास के चुंगी घर से अपने माल के लिये रवन्ना हासिल करले। इस विचित्र और असम्भव नियम का परिणाम यह था कि जो साधारण व्यापारी अपने घर से दूर, ख़ास मेलों या बाज़ारों से माल ख़रीद कर दूसरे स्थानों पर जाकर बेचते थे, उन्हें प्राय: अपने घर के पास के चुंगी घर वालों को पहिले ही से यह बता देना होता था कि वे क्या, कितना और किस क़ीमत का माल ख़रीदेंगे, और पहिले ही से उसके लिये रवन्ना ले लेना होता था। जिस व्यापारी को यह पता न हो सकता था कि उसे कौन सा माल और कितना परते पर मिल सकेगा उसके व्यापार और रोज़गार के लिये यह नियम सर्वथा घातक था।

चुंगी के बेहद बढ़ा दिये जाने के अतिरिक्त इन चौकियों पर प्रायः इतना समय नष्ट होता था। माल के मुक़ाबला करवाने में इतनी कठिनाइयें होती थीं, चौकी के छोटे मुलाज़िमों के लिये माल को पहिचान सकना, उसकी क़ीमत का अन्दाजा लगा सकना, अथवा व्यापारी के लिये यह साबित कर

सकना कि माल ठीक नहीं है, तो रास्ते में दण्ड है—इतना कठिन होता था और चौकियों और चुंगी घरों के मुलाजिमों के अधिकार इतने विस्तृत होते थे कि इस तमाम नई पद्धति के कारण देश के व्यापारियों और कारीगरों की कठिनाइयां बेहद बढ़ गई। उनके हौसले टूट गये और अमूल्य देशी कारीगरियें तथा देश के आन्तरिक व्यापार का सत्यानाश होगया।

"हम इस बात की बड़ी बड़ी शिकायतें सुनते हैं कि देश के लोग गरीब होते जा रहे हैं, देश का आन्तरिक व्यापार नष्ट होता जा रहा है और देश के कारीगरियें बजाय उन्नति करने के गिरती जा रही हैं। इसमें आश्चर्य ही क्या है? हमारी इस चुंगी की प्रणाली के कारण समस्त सौदागरों को जिन असह्य क्लेशों का सामना करना पड़ता है उनसे क्या किसी और नतीजे की आशा की जा सकती थी?"*

मिस्र मेयो, यह अपूर्व चुंगी वसूल करने का ढंग ही यहां के व्यापार के मिटाने के लिये काफी नहीं समझा गया। स्वयं कारीगरों के साथ जो बर्ताव किया गया वह भी मैं तुम्हें दिखाती हूँ। रिचर्ड्स साहब ने सूरत की अंग्रेजी कम्पनी की कोठी के रोजनामचों से उद्धृत कर के सन् १८०३ का हाल इस प्रकार बताया है।

जो कपड़ा सूरत से विलायत भेजा जाता था। वह अत्यन्त कड़े और निष्ठुर अत्याचारों द्वारा वसूल किया जाता

* नोट्स आन इण्डियन अफेयरस् बाई आनरेबिल फ्रेडरिक शोर

था। जुलाहों को उनकी इच्छा के विरुद्ध, और उनके हित के विरुद्ध, कम्पनी से ठेका लेने और कम्पनी के लिये काम करने को मजबूर किया जाता था। कभी कभी जुलाहे इस प्रकार जबरन काम करने की निस्बत भारी जुर्माना दे देना अधिक पसन्द करते थे। कम्पनी के मुक़ाबिले में नमूने के अनुसार अथवा बढ़िया माल के लिये डच, पोर्तुगाली, फ्रांसीसी और अरब सौदागरों से ज़्यादा दाम मिल सकते थे।... .कम्पनी का व्यापारी रेज़ीडेन्ट साफ़ कहता था कि कम्पनी का उद्देश्य कम अथवा निश्चित दामों पर थान ख़रीद कर समस्त कपड़े के व्यापार का अनन्य अधिकार अपने हाथों में रखना है। इस को पूरा करने के लिये ज़बरदस्ती और सज़ाओं से इतना अधिक काम लिया जाता था कि अनेक जुलाहों ने मजबूर हो कर अपना पेशा तक छोड़ दिया। इस बात को रोकने के लिये यह नियम कर दिया गया कि किसी जुलाहे को फ़ौज में भरती न किया जावे। एक मरतबा तो यह भी हुक्म दे दिया गया कि कोई जुलाहा बिना अंगरेज़ अफ़सर की इजाज़त के शहर के दरवाज़ों से बाहर न निकल सके। जब तक जुलाहे सूरत के नवाब की प्रजा थे, उन्हें दण्ड देने और उन पर दबाव डालने के लिये नवाब को बार बार अर्ज़ियां दी जाती थीं .....नवाब अङ्गरेज़ सरकार के हाथों में केवल एक कठपुतली था. ..। आस पास के देशी नरेशों पर भी ज़ोर दिया जाता था। कि वे अपने इलाक़ों में इस बात का हुक्म दे दें कि कपड़ों के थान केवल कम्पनी के सौदागरों और दलालों के हाथ ही बेचे जाव और

किसी सूरत में भी दूसरों के हाथ न बेचे जावें। सूरत के अंगरेजी अमलदारी में मिल जाने के बाद इसी तरह के अन्यायों और अत्याचारों को जारी रखने के लिये बार बार अंगरेजी अदालतों का उपयोग किया जाता था। जब तक कम्पनी सूरत में कपड़े का व्यापार करती रही कम्पनी के मुलाजिमों का काम करने का ढंग बिल्कुल इस तरह का रहा। ठीक यही नमूना दूसरी कोठियों के व्यापार के ढंग का था।"[1]

सूरत की मंडी से भी बङ्गाल की मंडी बड़ी थी। वहाँ का वृत्तान्त बोल्ट्स साहब के मुख से सुनिये —[2]

"यदि हिन्दोस्तानी जुलाहे उतना काम पूरा नहीं कर सकते, जितना कि कम्पनी के गुमाश्तों ने जबरदस्ती उन पर मढ़ दिया है, तो कमी पूरा करने के लिये उनका माल असबाब लेकर उसी जगह नीलाम कर दिया जाता है, और कच्चे रेशम के लपेटने वालों के साथ भी इतना अधिक अन्याय किया गया है कि इस तरह की मिसालें देखी गई हैं जिनमें उन्हों ने अपने अंगूठे काट डाले ताकि कोई उन्हें रेशम लपेटने के लिये मजबूर कर ही न सके।"

एक और स्थान पर यही लेखक लिखता है —

"सूरत की एक और कम्पनी के व्यापारी गुमाश्ते मार कर

1—इस विषय में अधिकतर उद्धरण मेजर बी० डी० बसु की पुस्तक "दी रुइन आफ इण्डियन ट्रेड एण्ड इन्डस्ट्रीज" से लिये गए हैं।
2—कन्सीडरेशन्स आन इण्डियन अफेयरस् बाइ बोल्ट्स्

लिये इस प्रकार दिक् करते थे जिससे वे अपनी भूमि का ठीक रखने और सरकारी लगान तक देने के नाक़ाबिल हो जाते थे. दूसरी ओर लगान वसूल करने वाले अफ़सर उन्हें लगान के लिये सताते थे, "और अनेक ही बार ऐसा हुआ है कि इन निर्दय लुटेरों ने लगान अदा करने को उन्हें अपने बच्चे तक बेच डालने अथवा देश छोड़ कर भाग जाने पर मजबूर कर दिया है।"

पूर्व इस के कि मैं इस विषय को समाप्त करूं मैं आप को प्रोफ़ेसर विल्सन ने इन घटनाओं को सामने रखकर जो आलोचना की है सुनाना चाहती हूँ। सुनिये :—

"स्वतन्त्र व्यापार के पक्षपाती यह चाहते हैं कि बाहर के माल पर भारी महसूल लगाकर देश के बने हुए मंहगे माल की रक्षा करने की बजाय बाहर के सस्ते माल को बे रोक टोक देश में आने देना चाहिये, किन्तु भारत के साथ हमारे सूती कपड़े के व्यापार का इतिहास इस बात की एक अपूर्व मिसाल है कि स्वतन्त्र व्यपार का यह असूल हर समय में और हर परिस्थिति में उपयोगी साबित नहीं हो सकता। हमारे सूती कपड़े के व्यापार का यह इतिहास इस बात की भी एक शोक प्रद मिसाल है कि हिन्दुस्तान जिस देश के आधीन हो गया था उसने हिन्दुस्तान के साथ किस तरह अन्याय किया। गवाहियों में यह बयान किया गया था कि सन् १८१३ तक हिन्दुस्तान के सूती और रेशमी कपड़े इङ्गलिस्तान के बाज़ारों में इंगलिस्तान के बने हुए कपड़ों के मुक़ाबिले में फ़ायदे के साथ ५० फ़ी सदी से ६० फ़ी सदी तक

दाम कम पर बिक सकते थे। इसलिये यह आवश्यक हो गया कि हिन्दुस्तान के माल पर ७० और ८० फी सदी महसूल लगा कर अथवा उसका इंगलिस्तान में आना साफ बन्द करके इंगलिस्तान के व्यापार की रक्षा की जावे। यदि ऐसा न होता, यदि इस तरह की श्राज्ञाये न दी गई होतीं और इस तरह के भारी निषेधक महसूल न लगाये गये होते। तो पेसली और मैञ्चेस्टर के पुतलीघर शुरू ही बन्द हो गये होते और फिर भाप का ताकत से भी दोबारा न चलाये जा सकते। इन पुतलीघरों का निर्माण भारतीय कारीगरों के बलिदान पर किया गया था। यदि भारत स्वाधीन होता तो वह इसका बदला लेता, इंगलिस्तान के बने हुए माल पर निषेधकारी महसूल लगाता और इस प्रकार अपने यहा की कारीगरी को सर्वनाश से बचा लेता। किन्तु उसे इस प्रकार की आत्म रक्षा की इजाजत न थी। वह विदेशियों के चंगुल में था। इंगलिस्तान का माल बिना किसी तरह का महसूल दिये जबरदस्ती उसके सिर मढ दिया गया, और विदेशीय कारीगरों ने एक ऐसे प्रतिस्पर्धी को दबा कर रखने और अन्त में उसका गला घोंट देने के लिये, जिसके साथ बराबरी की शर्तों पर मुकाबला न कर सकते थे, राजनैतिक अन्याय के हथियार का उपयोग किया।"*

मिस मेयो! यदि आप का शुद्ध और शहादत चाहिये तो लीजिये देखिये कि स्वय इस्ट इण्डिया कम्पनी के डाइरेक्टरों ने यहा के शासक मंडल तथा अङ्गरेज व्यापारियों की नीति के सम्बन्ध में क्या कहा है।

* मिल हिस्ट्री आफ इण्डिया वाल्यम ७ पेज ३८०

" कल्पना कीजिये कि उन लोगों के कारनामे कितने सियाह रहे होंगे जब कि कम्पनी के डाइरेक्टरों तक ने इस बात को स्वीकार किया है कि—' भारत के आन्तरिक व्यापार में जो असंख्य धन कमाया गया है वह सब इस तरह के घोर अन्यायों और अत्याचारों द्वारा प्राप्त किया गया है कि जिनसे बढ़ कर अन्याय और अत्याचार कभी किसी देश अथवा किसी ज़माने में भी सुनने में न आये होंगे'। "*

मिस मेयो, जो नीतियाँ तथा विनाशक प्रबन्ध आज से सौ वर्ष पूर्व रचे गये थे वे मौलिक रूप में आज तक क़ायम हैं। यदि आपने इस बहस को केवल शिक्षा तथा व्यापार ही तक परिमित न कर दिया होता तो मैं इसी प्रकार के अकाट्य प्रमाण दे कर आप को दिखला देती कि हमारे काश्तकारों पर, हमारे दस्तकारों तथा व्यापारियों से कहीं अधिक अत्याचार हुए।

ख़ैर यह सब जाने दीजिये। अब आप यह बताइये कि जब औरंगज़ेब के समय तक जिस के बाद ही आप को राज मिला, यह देश जातीय जीवन के मुख्य विभागों में अर्थात् शिक्षा वैज्ञानिक उन्नति तथा व्यापारिक उद्भव में संसार में अपना उच्च स्थान क़ायम रख सका तो आप जो "धर्म स्वरूप" थे 'जो राज्यकार्य में निपुण थे" जो "प्रजा-तांत्रिक राज्य के जन्म दाता थे" इस देश को शिक्षा, व्यापार आदि में संसार के अन्य

---

*" सोशल स्टेटिक्स " — हरबर्ट स्पेन्सर, फ़र्स्ट एडीशन पृष्ठ ३६७

उन्नतिशील दशा के साथ साथ क्यों न रह सके ? क्या मिस मेयो, क्या हमारे धार्मिक प्रपचों और सामाजिक कुरीतियो की वजह से आप को बाधा पड़ी ? तो क्या औरङ्गजेब के समय तक इस देश का वायुमडल कोई दूसरा था ? यदि नहीं था , तो आपके आने के बाद कौन कौन सी नई बुराइया हम म पदा हुई ? और यह भी बताइये कि आपके रहते हुए यह नई बुराइया कैसे उत्पन्न हो सकीं ? आप कहती हैं कि आपके आने से पूर्व इस देश में अराजकता—अन्याय—अत्याचार—लूट- मार के अतिरिक्त और कुछ न था। क्या यह दशा होते हुये भी यह देश शिक्षा—विज्ञान – व्यापार—कला-कौशल आदि म अन्य देशों के आगे रह सका ? परन्तु अन्तिम सो वर्ष में न कोई बाहिरी आक्रमण यहा आये , न किसी अन्य देश से हमने कोई युद्ध किया । फिर इस अपूर्व शाति के होते हुये क्या कारण है कि वह देश जो दो हजार वर्ष म उन्नतिशील ससार के साथ चल रहा था एक बारगी ऐसा असमर्थ हो गया ? क्यों मिस मेयो ! क्या वज्ञानिक उन्नति तथा व्यापारिक विकाश, अराजकता, अन्याचार, लूट मार आदि म अधिक फूलते फलते हैं ? यदि यह नहीं, तो क्या अट्ठारहवीं सदी वाली वज्ञानिक उन्नति किसी ढंग विशेष प्रकार की थी जिसे पूर्वीय सभ्यता न अपना सकती हो ? नहीं, यह भी सत्य नहीं। जापान जो पूर्वीय देशों की अन्तिम सीमा पर है और जो सो वर्ष पहले प्रभा-

और "मार्टेन" तो हर जगह फिरते ही थे, किन्तु प्रायः जंगली सांड भी काफ़ी मिलते थे।"

सड़कों की हालत

किसी भी देश की सामाजिक अवस्था का पता वहां के आने जाने के मार्ग, उनकी दशा, तथा इस के लिये वहां जो सहूलियतें हों, उनसे बाख़ूबी चल जाता है। उन दिनों बरसात में इंगलिस्तान की सड़कें एक दम बे काम हो जाती थीं। और उन पर चलना ग़ैर मुमकिन हो उठता था। रास्ते और सड़कें आधी कीचड़ से भरी रहती थीं। प्रायः बैल ही उन में गाड़ियां खेंचते थे। कभी कभी घोड़े भी इस काम में लाये जाते थे। शहर में तो कभी कभी छे छे घोड़े केवल दिखावे के तौर पर लोग निकालते थे। किन्तु देहातों में कहीं बिना घोड़े जोते गाड़ी खिचना असम्भव था। मैदानों में तो रास्ते को भूल कर भटक जाना बहुत मामूली बात थी। बहुत लोगों को मार्ग से भटक कर रात भर खुले मैदान में कष्ट उठाना पड़ता था। बड़े बड़े नगरों के बीच में आने जाने के मार्गों से लोग इतने कम परिचित रहते थे और गाड़ियों की दिक्कतें इतनी थीं. कि बहुधा लोग लद्दू घोड़ों से काम चलाते थे और इन्हीं लद्दू घोड़ों के दोनों तरफ़ खुर्जी (थैलों) में सामान सहित बैठ कर यात्रा करते थे। फिर अगर इन बिचारों को यह शिकायत थी कि सर्दी में जाड़ा और गर्मी में गरमी बहुत मालूम होती है तो इसमें क्या ताज्जुब था। फ़ी मील एक टन बोझ के लिये १५ पेन्स के हिसाब से किराया देना पड़ता था। शताब्दी के अंतिम वर्षों में कुछ तेज गाड़ियां

चलने लगीं, ये गाड़ियां दिन में ३० से ४० मील तक मार्ग तय करती थीं और इसीलिये इन्हें लोग "उड़न गाड़ी" कहते थे। लेकिन लोग इस सवारी को बहुत खौफनाक समझते और उनसे डरते थे तथा उन्हें "काल सवारी" बताते थे। डाक घोड़ों पर ७ मील फी घण्टे की गति से आती जाती थी। एक पैसे वाले कार्ड बन गये थे और नगरों में उनका उपयोग होने लगा था किन्तु इससे भी लोग घबराते थे। बहुतों का ख्याल था कि लोगों को फासने के लिये पोप ही की यह भी एक चालाकी या जाल है।

समाज की दशा

सार्वजनिक जीवन के समान ही गार्हस्थ्य जीवन भी पतित था। देहात में लोग फूस के झोंपड़ों में रहते थे, और यदि सप्ताह में एक बार भी उन्हें ताजा गोश्त भोजन के लिये मिल जाता था तो वे खुशहाल गृहस्थ समझे जाते थे, क्योंकि इंगलिस्तान में मुश्किल से ५० फी सदी कुटुम्बों की इतनी अच्छी हालत थी। बहुधा लोग अपने बच्चों को ६ वर्ष की उमर में मजदूरी करने के लिये निकाल देते थे। बड़े बड़े जमींदार भी अपना समय गंवार न्हातियों की तरह व्यतीत करते थे और घोड़े वालों तथा गडरियों की सोहबत में समय बिताते थे। और सुअरों को बांधना तथा घोड़ों के नाल लगाना जानते थे। और उनकी पत्नियां और बेटियां भी सीना, पिरोना, कातना, कपड़ों की मरम्मत करना, शराब उतारना और भोजन पकाना, तरकारियां सुखाना इत्यादि काम किया करती थीं।

अतिथि सत्कार का सदुपयोग यह था कि वे हिसाब खाया जावे और वे हिसाब शराब पी जावे। तथा जब तक मेहमान शराब में तर न हो जाय तब तक उसे छुट्टी न मिलती थी। उसके पहिले हाथ खींचना एक बेहूदा बात समझी जाती थी। भोजन-गृह मे दरी आदि न बिछी होती थी, ज़मीन खुली छोड़ दी जाती थी। डा. 'बुग' ने कमरा काला अवश्य हो जाता था और शराब की बदबू वहां बनी रहती थी। कुर्सियों में बैठने की जगह वृक्षों की डालियां लगी रहती थीं।

लंदन में मकानात लकड़ी और गारे के बने होते थे और गलियां इतनी गंदी रहती थीं कि बयान नहीं किया जा सकता। रात को बाहर निकलना खतरे से खाली न था, क्योंकि लोग अपनी खिड़कियां खोल कर बेखटके गन्दा पानी नीचे डाल देते थे। सड़कों पर न लेम्प जलते थे और न रोशनी रहती थी, जब तक कि मास्टर हेमिंग के सरकारी लेम्पों का आविष्कार न हुआ था। फलत: रात को चोर, बदमाश और गिरहकट बड़ी सफ़ाई और सहूलियत से अपना काम करते थे।

शिक्षा की अवस्था

अठारहवीं सदी के प्रारम्भ में २४ काउंटीयां (ज़िले) ऐसी थीं जिन में एक भी छापेखाना न था। इंगलिस्तान में, ट्रेंट की उत्तर ओर पार्क में केवल एक प्रेस था।

निजी पुस्तकालय तो शायद उल्लेखनीय एक भी उस समय न था। कोई भी ईसर, यदि उसके यहां दो चार साधारण

पुस्तकें भी निकल आयीं तो बड़ा विद्वान समझा जाता था। ऐसी दशा में यह मानी हुई बात है कि जब पुरुष ही पढ़ लिखे न रहते थे तब स्त्रियां तो अपढ़ होंगी ही। पादरियों के लिये भी धर्म ग्रंथों का मूल भाषा में पढ़ सकना आवश्यक न रह गया था।

न्याय

न्याय का कार्य बड़ी सख्ती से किया जाता था और चाहे अपराध राजनैतिक हो या धार्मिक, दण्ड अविश्वसनीय क्रूरता के साथ दिया जाता था। लन्दन में टेम्स नदी के प्राचीन पुल के ऊपर अपराधियों के भयंकर नरमुंड लटके रहते थे इसलिये कि लोग इस भयानक दृश्य को देख कर सबक लें और कानून की मर्यादा का उल्लंघन न करें। लोगों की धार्मिक उदारता का अंदाजा उस कानून से लगाया जा सकता है जिसे [illegible] मई १६[illegible] ई० में स्काटिश पार्लियामेंट ने पास किया था। इसके मुताबिक उस समय की प्रचलित ईसाई सम्प्रदाय के विरुद्ध उपदेश देना या ऐसे उपदेश सुनना तक गुनाह था और जो मनुष्य इस तरह के उपदेश देता या सुनता था उसे मृत्यु दण्ड दिया जाता था। और उसकी तमाम जायदाद जब्त कर ली जाती थी। इसीके अनुसार काम भी होता था और इस बात के यथेष्ट प्रमाण हैं कि लोगों को इस तरह से दण्ड दिये जाते थे। उस समय की दशा ही इतनी घृणित थी। एक बार [illegible] नगर का विश्वास प्रचलित सम्प्रदाय से हट [illegible] साधारण गिरजा की पूजा में शरीक होने से

कुछ सिपाहियों ने उसे जा पकड़ा, उसकी जांच हुई। झट पट उसे धर्मच्युत कह कर मृत्यु दण्ड की सज़ा दे दी गई। सज़ा के समय किसान की स्त्री भी मौजूद थी। उसके एक बालक था और साफ़ दिखाई देता था कि वह गर्भवती है। पत्नी के सामने ही पति को गोली से उड़ा दिया गया। वह दुःखी कातर चिल्लाती रह गई कि 'महाशयों तुम्हारी भी सज़ा का दिन आनेवाला है, और तुम्हारा भी न्याय होगा'। स्काटलैण्ड में अविश्वासियों को पीड़ाएं दे दे कर बूटों के अन्दर उनके पैर के गट्टे तोड़ दिये जाते थे। उन स्त्रियों को जो गिरजा में जाने से इन्कार करती थीं तख्तों से बाँध कर समुद्र के किनारे छोड़ देते थे और बढ़ती हुई लहरें उन्हें बहा ले जाती थीं। कभी कभी उनके गाल दाग दिये जाते थे और फिर वे अमेरिका जाने वाले जहाज़ों पर बैठा दी जाती थीं। धर्मच्युत बहादुर सिपाही घायल होने पर फांसी पर लटका दिये जाते थे, इसीलिये कि यदि उन्हें इंग्लिस्तान तक लाया जावे तो वे कहीं मार्ग ही में न मर जावें। मनमथ के बलवे के समय सिर्फ एक काउंटी समरसेटशायर में २३३ आदमी फांसी पर लटका दिये गये थे। जिन लोगों को फौजी सिपाहियों ने फांसी पर लटका दिया उनकी तो बात ही अलग है; क्योंकि सिपाहियों को इस प्रकार की हत्या में आनंद आता था और शराब के प्याले के साथ साथ वे हर घूंट में एक मानव मस्तक को छिन्न कर देना बड़े गौरव की बात समझते थे। और ज्योंही लाश तड़पने लगती त्योंही वे उसकी तड़पन को नाच मान कर उसके साथ बाजे बजाते थे।

इस प्रकार की बर्बरता के अधिक उदाहरण देना व्यर्थ है। जैसे कि करनल कर्क के सिपाहियों के अन्याचार जिनके झण्डों पर 'मेमने' की तस्वीर होती थी, अथवा दाम योन्ल मन का किस्सा जिसे इस बात के लिये विवश किया गया था कि वह अपने दण्डित अपराधी मित्रों की लाशों को खौलते हुये तारकोल में डाल कर उबाले।

डारसेट में स्त्रियों को इस तरह की व्यर्थ बातें कहने के अपराध में जिस तरह कि सब स्त्रियें कहती रहती हैं गाड़ियों के पीछे बाध कर बाजारों में कोडे लगाए जाते थे। टूचिग नाम के एक बालक को यह सजा दी गई कि सात साल तक लगातार हर पन्द्रहवें दिन उसके कोडे लगाए जावें। ८४१ मनुष्यों को एक बार देश निर्वासन की सजा दी गयी और उन्हे अमरीकन डाकुओं को भेजने के लिये जहाज पर सवार कराया गया। मार्ग में उन्हें हद दर्जे की तकलीफें दी गयी और उनके साथ अमानुशिक बर्ताव हुआ। एक तो वे जहाज के डेक पर भी न जाने दिये गये। वे नीचे बन्द रखे गये, जहां पूरा अधकार था दुगन्ध और हर तरह की तकलीफ थी। कुछ बीमार पडे। कुछ दाहडें मार मार कर रोते थे। और किसी ने मृत्यु की गोद में शरण ली। उनमें से पाचवां भाग तो मार्ग ही में समुद्र में फेंक दिये गये और मछलियों ने उन्हे खा लिया। बाकी अध मरे जमैका पहुचे। किन्तु इन्हे बुरी हालत में वहां के अङ्गरेज पादरियों के हाथ गुलामों की तरह बेचने से पहले खिला पिला कर मोटा करना पड़ा क्योंकि हड्डी के पिंजड़ों को कौन खरीदता

दरबारी औरतें और इंगलिस्तान की महारानी तक स्त्रियो-चित दया भाव और साधारण मनुष्यता से इस प्रकार शून्य थी कि वे भी बिना हिचक के इस गुलामों की तिजारत में भाग लेती थीं। महारानी ने यह प्रार्थना की कि एक सौ इस प्रकार के क़ैदी मुझे दे दिये जावें "इन में से जो लोग भूख व ज्वर से गर्मी में मर गए उन्हें छोड़ कर इस व्यापार से महारानी को कम से कम एक हज़ार गिन्नी का लाभ हुआ।"

मिस मेयो, मानव जगत की उत्पत्ति के समय से लेकर आज से दो सौ वर्ष पूर्व तक इङ्गलिस्तान तथा यूरोप अपने मानसिक तथा भौतिक विकाश में इस उच्च स्थान तक पहुँच पाया था। इस समस्त काल में कैसी कैसी स्वर्गीय सभ्यताओं के सूर्य तथा चन्द्रमा उदय हो होकर अस्त हो गये परन्तु संसार के इस उजाड़ कोने में उनका प्रकाश किञ्चित मात्र भी न पहुँच सका। परन्तु सुनो मिस मेयो ...

मिस मेयोः—ज़रा ठहरो मैं बहुत सुन चुकी अब तुम मेरे एक सवाल का जवाब दो। तुम कहती हो कि इङ्गलिस्तान बिल्कुल असभ्य था। तुम अपनी सभ्यता की बड़ी महिमायें गाती हो। परन्तु यह तो बताओ कि तुम्हारी सभ्यता किस प्रकार की थी जिसे एक मुट्ठी भर आदमियों ने टूटे हुये खन्डहर के समान गिरा दिया। यह सभ्यता थी या कोई मिश्र की ममी जो एक झोंके के आते ही मुट्ठी भर धूल की तरह उड़

गइ। दूसरे मे एक बात और पूछनी है। यह तो बताओ कि जब तुम यह दुखड़ा रोती हो कि यों शिक्षा का विनाश किया, या व्यापार मिटाये, यह यह अत्याचार किये, तो कभी तुम्हारा ध्यान उन असंख्य व्यक्तियो की ओर भी जाता है, जिन्होंने मुट्ठी भर लोगो के इन अत्याचारों को सतोष पूर्वक सहन किया। और यदि जाता है तो क्या तुम इतिहास मे ऐसे भयकर दासत्व भाव की कोई और मिसाल दे सकती हो?

पूरब और पश्चिम

प्रत्युत्तर —मिस मेयो, मानव ससार अद्भुत वेग के साथ बढ रहा है। जो लोग केवल वर्तमान ही को देखते है वे एतिहासिक घटनाओं को वास्तविकता को नहीं समझ सकते। संसार मे प्रत्येक देश की जनता ने अविश्वसनीय दुःख सतोष पूर्वक सहन किये हैं। मिस मेयो, या तो आप बनती हैं। या आपको अपने यूरोपीय इतिहास का कुछ ज्ञान नहीं। क्या आप यह नहीं जानतीं कि जो चुंगी के ढग, जो अनन्य अधिकार जो कारीगरो पर अत्याचार, और जो व्यक्तिगत दुराचार अङ्गरेजो ने हिन्दोस्तान पर किये बिल्कुल यही बर्ताव उन्हो ने आयरलेन्ड के साथ किया था। और उस देश पर भी उसका सर्वथा वही असर पड़ा था जो इस देश पर पड़ा। क्या आप यह भी नहीं जानतीं की मध्यकालीन यूरोप मे जो समाज संगठन था उस मे किसानो और दस्तकारों का

अपनी ज़मीन, अपनी धन सम्पत्ति की तो कौन कहे स्वयं अपने शरीरों तथा अपनी स्त्री पुत्र पुत्रियों तक के शरीरों पर अपने लार्ड (स्वामी) के मुक़ाबिले में कोई अधिकार न था। और जो अत्याचार इन अभागों पर इनके यह स्वामी प्रति दिन किया करते थे उनकी उपमा अन्य देशों में मिलना कठिन है। परन्तु तिस पर भी समस्त यूरोप की जनता ने एक सदी नहीं अनेक सदियों तक यह सारे अत्याचार बर्दाश्त किये। इसलिये जनता का अत्याचारों को संतोष पूर्वक सह लेना कोई पूर्वीय जनता की विशेषता नहीं।

राष्ट्रता का आदर्श

सिस मेयो, मध्यकालीन यूरोप की आन्तरिक अवस्था को देखने से यह निश्चित हो जाता है कि यूरोप में प्रजातांत्रिक शासन पद्धति की उत्पत्ति का वास्तविक कारण यह है कि एक तो उस देश में जनता की दुर्दशा असहनीय हो गई थी और दूसरे वहां की जनता और उच्च श्रेणियों में उच्च धार्मिकता, अथवा नैतिक भावों का आश्चर्य जनक अभाव था। यूरोप में छोटे छोटे देश थोड़ी थोड़ी जन संख्या और एक ही मज़हब होने की वजह से राष्ट्रीयता का भाव उत्पन्न होने में बड़ी मदद मिली!

इंगलिस्तान की जनता ने इस सम्बन्ध में पहल की थी। अपने राजा जान पर सन् १२१५ ई० में दबाव डाल कर उन्होंने जो अधिकार पत्र (Magna charta) ले लिया था,

उसने स्वयं इनके और समस्त यूरोप के राजनतिक जीवन पर बड़ा असर डाला। इस नवीन आन्दोलन की उत्पत्ति से पहिले यूरोप की जो दशा थी आपको निम्न उद्धरणों से मालूम हो जायेगी। देखिये स्टब्स साहब मध्य कालीन यूरोपीय समाज सगठन के विषय में क्या कहते हैं [1] —

जनता इतनी बलहीन थी कि उसमें किसी प्रकार की आकाक्षाओं का उत्पन्न होना असम्भव था।

फ्यूडल सिस्टम (जागीरदारी शासन) जमीन के मिल्कियत की बिना पर आधारित था। शासन का ढग श्रेणी बद्ध व्यवस्था के रूप में था। जिसमे प्रत्येक जागीरदार अपने स नीचे की श्रेणी पर अनुशासन करता था, कर लगाता था। और मुकदमों का फैसला करता था। (इस व्यवस्था में) निम्नतम श्रेणियो के लिये अधम गुलामी थी और अदम्य अत्याचार उची श्रेणी के लोगों का अधिकार था। इसमें व्यक्तिगत युद्ध, व्यक्तिगत टकसालें, और व्यक्तिगत कचहरियाँ साम्राजिक संस्थाओं की जगह में कायम हो गये थे।

देखिये ह्यूम साहब क्या कहते है [2] —

अगर हम यूरोप की प्राचीन दशा पर विचार करें तो हमे पता चलेगा कि समाज का अधिकाश भाग अपनी व्यक्तिगत

[1] स्टब्स-कानस्टीट्यूशनल हिस्ट्री २०८

[2] हिस्ट्री आव इगलैंड अध्याय २३ पृष्ठ

स्वतंत्रता से वञ्चित था और उसे अपने स्वामियों की इच्छा का अनुवर्ती होकर रहना पड़ता था। प्रत्येक व्यक्ति जो रईस नहीं था वह दास था ····

यूरोप में स्त्रियों की हालत देखिये :—

हिन्दुओं की स्मृतियों के अनुसार स्त्रियों को दाय भाग का केवल संकुचित अधिकार प्राप्त था और गवाही के लिए सर्वथा अयोग्य समझी जाती थीं। रोमन व्यवस्था के अनुसार ऐतिहासिक काल में भी स्त्रियां पूरी तौर से पराश्रित थीं ······

·········पत्नी अपने पति की ख़रीदी हुई सम्पत्ति थी और दास की भांति केवल पति के लभार्थ प्राप्त की जाती थी। ···· कोई भी स्त्री कोई सिविल और पब्लिक सार्वजनिक पद नहीं प्राप्त कर सकती थीं ·····

ईसाई धर्म के फैलने पर उसके अधिकार और भी परिमित हुए :—

पिछले रोमन क़ानून के अनुसार स्त्रियों को जो कुछ स्वाधीनता प्राप्त भी थी उसे पौरोहित धर्म शास्त्र की व्यवस्था अवज्ञा की दृष्टि से देखती थी और उसका झुकाव प्रतिकूल दिशा को था। धार्मिक विधानों का आदेश यह था कि प्रत्येक वस्तु में पत्नी पति की इच्छाओं की अनुगत और आज्ञाकारिणी बनी रहे······

·······न तो उनको गिरजों में वेदी के पास तक

जाने की इजाजत थी और न वे धार्मिक क्षेत्र में किसी पद पर नियुक्त की जा सकती थीं। जेसूट पर क्या भी नहीं दे सकती थीं। ।

राष्ट्रीयता के नये आदर्श की उत्पत्ति के वास्तविक कारण का पता आपको इस उद्धरण से चलेगा। राजर्स साहब इङ्गलिस्तान के उपरोक्त अधिकार पत्र वाले आन्दोलन के सम्बन्ध में कहते हैं।

सन् १२१५ की घटनाओं की समानता किसी भी यूरोपीय जाति के इतिहास में नहीं मिलती

लेकिन सच पूछिए तो उस समय जब जनता राजकीय विशेषाधिकार के अत्याचारों का सामना कर रही थी अर्थात् तेरहवीं, चौदहवीं, पंद्रहवीं सदी के पूर्वार्द्ध में, तो उस समय से ही उन आदर्शों की उत्पत्ति हुई जिनसे इस जनता के सदस्यों में... वाले पार्लिमेन्टरी विरोध को अत्यन्त लाभ पहुंचा। २

मिस्र मयो, इस नये आदर्श के एक बार उत्पन्न हो जाने के बाद अपने असहनीय अत्याचारों के इलाज के लिये समस्त जनता की शक्ति इसी आदर्श की ओर फिर गई। यही एक उपाय था जिससे यूरोप के देशों की जनता को अपनी उच्च श्रेणियों के लोगों के अत्याचारों से रक्षा मिल सकती थी। जब तक प्रजातान्त्रिक शासन पद्धतियां यूरोप में स्थापित न हो पाई अर्थात् आज से लगभग सौ वर्ष पूर्व तक तब तक

१—इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका जिल्द २४ पृष्ठ ५३८ ६३०।

२—इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका जिल्द ९ पृष्ठ १०५।

समस्त यूरोप अविश्वसनीय दरिद्रता, निरंतर अकाल और भयंकर महामारियों की प्रदर्शनी बना रहा।

परन्तु मिस मेयो, जो रक्षा यूरोप की जनता को प्रजातांत्रिक राज्य से मिली वह भारत में उच्च धार्मिक भावों और नैतिक विकाश के द्वारा मिल रही थी। भारत ने अपनी सभ्यता का आधार सर्व प्रियता और परोपकार पर रक्खा था। इस ने "अधिकार" को नहीं "कर्तव्य पालन" को अपनी समाज में मुख्य स्थान दिया था। और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में समाज को प्रधान चीज़ मानकर व्यक्ति को समाज के अन्दर लीन कर दिया था। इस सब से उच्चतर विजय जो यहां की सभ्यता ने मानव विकाश में प्राप्त की थी, वह यह थी, कि इस ने सांसारिक सुख भोगने की अदम्य मनोवृति को नियमित कर के इस के स्थान पर आदर्श पूजन का आनन्द मय साम्राज्य स्थापित किया था। और इस में भी अद्भुत घटना यह थी कि इस अलौकिक साम्राज्य के प्रभाव क्षेत्र को इसने इतना विशाल कर दिया था कि समाज की निम्न श्रेणियां तक इस के असर में आगई थीं। इसलिये मिस मेयो, यहां की जनता का अपने राजा, स्वामी, गुरु, पति आदि की ओर वह भक्ति रखना जिसे आप दासत्व-भाव कहती हैं, दासत्व भाव नहीं, मानव विकाश की अन्तिम सीमायें थीं। इसमें सन्देह नहीं की सहस्रों व्यक्ति अर्थात् गुरु, स्वामी, राजा, पति आदि इस आदर्श पूजन से अनुचित

लोभ उठाते थे। परन्तु समाज इन अपराधियों को उन्च आदर्शों में जकड़ लेने का प्रयत्न कर रही थी। इस में सन्देह नहीं कि हम अभी अपने वास्तविक ध्येय से बहुत दूर थे। परन्तु इस में भी सन्देह नहीं कि हमारी समाज अपने पुराने अन्ध विश्वासों से मुक्त होने का, अपनी त्रुटियों को सुधारने का, यथा योग्य प्रयत्न कर रही थी। और न हमें इस में कोई सन्देह है कि हमारा लक्ष्य और हमारे उस लक्ष्य की ओर जाने के साधन उचित और उपयोगी थे। नहीं मिस मेयो, हमारी सभ्यता मिश्र की ममी नहीं थी। किसी अन्य देश की जनता आप के अधिकार में पूर्ण रीति से आजाने के बाद अपना अस्तित्व कायम न रख सकी। हम अभी तक जीवित हैं।

मिस मेयो — हे महिला! क्या मैं यह समझूं कि तुम पूर्वीय विजेताओं को ही साम्राज्यवादी शासन से अच्छा नहीं कहती बल्कि प्रजा तान्त्रिक राज्य को ही बुरा समझती हो।

प्रत्युत्तर —मिस मेयो, युरोप की शासन पद्धतियां प्रजातान्त्रिक राज्य नहीं, व्यापारिक मंडलियां हैं। ये मंडलियां स्वयं अपने देश की जनता को अथवा अन्य देशों की जनता को इतना लाभ नहीं पहुँचातीं जितना उन पूंजीपतियों को जो उनके वास्तविक संचालक हैं। इन शासन पद्धतियों को प्रजातान्त्रिक कहना मूर्खता है। अभी इन्हें संसार में आये दो सौ वर्ष भी नहीं हुये परन्तु आप देखिये इतने कम समय में उन्होंने संसार

की कितनी जातियों का सर्वथा विध्वंस कर डाला। यूरोप से निकल कर यह अमेरिका, अफ़रीका, आस्ट्रेलिया, जहां कहीं पहुँची वहां के आदि निवासियों का फ़ैसला हो गया। पूरब की जातियां भी संसार में फैलीं परन्तु वे जहां जाती थीं उस देश को या तो स्वयं सुसभ्य बनाती थीं या अगर वह अधिक सभ्य हुआ तो उसकी सभ्यता से स्वयं लाभ उठाती थीं। मगर प्राचीन जातियों ने ऐतिहासिक युग में किसी जाति पर अधिकार पा लेने के बाद उसे नहीं मिटाया।

इस के अतिरिक्त आप इनके अन्तरजातीय जीवन की ओर देखिये। यह नहीं कि पूरब में राजनीति न थी। यह भी नहीं कि पूरब में एक राजा दूसरे से लड़ता न था। मगर मिस मेयो, वह पैशाचिक छल विद्या जिसे आप राजनीति कहती हैं सर्वथा हीन और अमानुषिक है। दूसरे वह विचित्र विनाशक संघर्ष जो इन नीतियों द्वारा अन्तरजातीय जीवन में उत्पन्न हो गया है, वह केवल राजा राजा की लड़ाई नहीं, जो एक के विजय पाने पर ख़तम हो सके। यह लड़ाई व्यापारिक होने के कारण इस प्रकार की है कि विजय प्राप्त कर लेने के बाद भी यह बड़े भयंकर रूप में जारी रहती है। इस विचित्र लड़ाई का वास्तविक अंत उस समय तक नहीं हो सकता है कि जब तक देश के राजा का पतन ही नहीं, बल्कि पराजित जनता का विध्वंस न हो जावे। जो हुकूमतें इस प्रकार की राजनीति पर

कायम हो व कभी समाज में स्थाई नहीं हो सकती। इस लिये या तो आप शीघ्र ही बदलेंगे या एक दूसरे को मिटा दीजियेगा।

आपकी भयंकर राज नीति ने आपके सामाजिक जीवन की भी अजब दुर्दशा बनादी है। विवाह की संस्था जिस पर समाज की स्वास्थ्य और समृद्धि का दारोमदार है आज पश्चिम में व्यक्तिगत भोग विलास का साधन है। व्यापार जो समाज के सुख चैन बढ़ाने का जरिया होता है, उसे आपने एक विचित्र युद्ध के रूप और लूट में परिवर्तित कर दिया है। वह सदाचार जिसे पूरब ने बड़े परिश्रम से आदर्श बनाकर समाज के सामने रखा था, आपने धार्मिक अन्ध विश्वासों का अङ्ग समझ कर, उसे छोड़ दिया। यह आपके प्रजातान्त्रिक हुकूमत के कारनामे हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रकार का अलौकिक प्रजा तान्त्रिक राज्य कभी भारत में स्थापित नहीं हुआ। परन्तु यदि आप इसका वास्तविक कारण समझना चाहती हैं तो मैं आपको आज से सौ वर्ष पूर्व की जो हिन्दुस्तान की ग्रामीण जनता का जीवन था उसे दिखाती हूँ। फिर इसे देख कर आप बताइएगा कि प्रजातान्त्रिक शासन यहां था या आज यूरोप में है।

देखिये एल्फिन्स्टन यहां के जीवन की बाबत क्या कहते हैं।

यद्यपि नाम मात्र के लिये प्रधान राजसभियों की सत्ता

अनियंत्रित होती थी तथापि अनेक ऐसी प्रबल संस्थाएं मौजूद थीं जिनके कारण राजा अपनी अनियंत्रित सत्ता का दुरुपयोग न कर सकता था; ये संस्थाएं, सामन्त सरकारें, पुरोहितों के अधिकार, न्यायालय, उस समय की म्युनिसिपैलिटियां और इन सब से बढ़ कर यह नियम था कि प्रत्येक किसान अपनी भूमि का स्वामी समझा जाता था।......

समाज के सबसे प्राचीन और आदरणीय रिवाजों में से एक यह था कि प्रत्येक किसान जिस भूमि को जोतता था, उसका स्वामी समझा जाता था। फ़ौजी शासन चाहे किसी का भी क्यों न हो उस से रय्यत के अधिकार पर कोई असर न पड़ता था। लड़ाई में कभी किसी को ज़बरदस्ती फ़ौज में भरती न किया जाता था। यह रिवाज था ही नहीं। सेनाएं भरती करने के लिये केवल व्यक्तिगत प्रभाव अथवा तनख़्वाह के बढ़ने से काम लिया जाता था। भूमि किसान की सम्पत्ति गिनी जाती थी, रईस या ज़मींदार की नहीं, और किसान के इस अधिकार पर कभी कोई एतराज़ न करता था।......

इन लोगों के विषय में उनका एक आक्रमक जो उन्हें अच्छी तरह जानता था लिखता है कि मैंने उन्हें "सीधे, निरुपद्रवी, ईमानदार और इतना सच्चा पाया जितने कि संसार में कोई भी दूसरे लोग हो सकते हैं।" [मनरो, भाग १, पृष्ठ २८०]......

हिन्दोस्तान के अधिकांश हिस्सों में प्रत्येक गांव राष्ट्र के सामाजिक, औद्योगिक और राजनैतिक जीवन शृंखला की एक

कहीं होता था अर्थात् समस्त व्यवस्था इन्हीं की ज़िम्मे होती थी। बहुत जगह अभी तक यही हालत है।

अत्यन्त प्राचीनतम काल से प्रत्येक ग्राम का समस्त प्रबन्ध और शासन ग्राम ही के गुरुजनों की एक सभा किया करती थी। जिस के सदस्य शुरू में पांच होते थे किन्तु अब प्रायः पांच से अधिक होते हैं। ये लोग सदा ग्राम के सब लोगों के सच्चे प्रतिनिधि होते थे। जब कभी कोई झगड़ा होता था यही लोग रिवाज के अनुसार उसका निर्णय करते थे। और जब कभी कोई नई या अजब बात खड़ी हो जाती थी तो नया रिवाज कायम कर लेते थे।

सर जान मेल्कम लिखता है कि भारत के 'छोटे बड़े तमाम लोगों ने मिल कर अपने यहां की म्युनिसिपल और ग्राम संस्थाओं को अपने अपने दायरे के अन्दर शान्ति और सुशासन कायम रखने का अधिकार दे रक्खा था, और यह संस्थाएं इस काम को करने के सर्वथा समर्थ थीं। मध्य भारत में ज़ालिम राजा भी इन म्युनिसिपल और ग्राम संस्थाओं के सामान्य तथा विशेष अधिकारों पर कभी हमला न करते थे। और न्याय प्रिय नरेशों के सुयश का मुख्य आधार इसी बात पर होता था कि वे इन संस्थाओं की ओर विशेष ध्यान देते थे। इसी पर प्रजा में उनकी सर्व प्रियता निर्भर होती थी।' सर टामस मनरो जो दूसरे शिख्सों के साथ अच्छी तरह परिचित था लिखता है कि, 'भारत के समस्त ग्रामों में एक बाकायदा और व्यवस्थित म्युनिसिपैल्टी

होती थी, यही म्युनिसिपैल्टी ग्राम के माल तथा पुलिस सम्बन्धी तमाम मामलों का प्रबन्ध करती थी, और बहुत बड़े दरजे तक न्यायाधीश तथा मैजिस्ट्रेट का काम करती थी'।·····

भारत की संस्थाओं में सब से विचित्र उनकी पंचायत अर्थात 'जूरी' है जिसे सब मानते हैं। जिस तरह का कोई मुक़द्दमा होता था उसी की अनुसार पंचायत के सदस्य चुने जाते थे। किन्तु हर सूरत में इन पंचों को जनता ख़ुद चुनती थी। इन प्राचीन पंचायतों के जो मुखिया होते थे वे सदा वे लोग होते थे जिन्हें जनता ने कुशासन से अपने रक्षक समझ कर इस उच्च पदवी तक पहुंचाया हो, ये लोग अपनी सेवा का पारितोषिक इसी बात को समझते थे कि लोगों पर इनका प्रभाव और इनका यश बढ़े।······

दीवानी और फ़ौजदारी दोनों तरह के मुक़द्दमे इन्हीं पञ्चायतों द्वारा फ़ैसल होते थे। जनता के नैतिक और सामाजिक जीवन पर इनके प्रभाव का महत्त्व स्पष्ट था। ये पञ्चायतें ही देश की न्याय-प्रणाली के रग पट्ठे थीं, इन्हीं पर सुशासन, जान माल की रक्षा, सामाजिक व्यवस्था, मान मर्यादा, सब निर्भर थीं। इस तरह की प्रणाली को अंगभङ्ग करने वा स्तब्ध कर देने का नाशकर प्रभाव समस्त सामाजिक शरीर पर पड़ना स्वभाविक था। यह विषैला प्रभाव धीरे धीरे बेरोक समाज के अङ्ग अङ्ग में प्रवेश कर गया। इन संस्थाओं का नाश कर देना एक ऐसी नीति था जिस का विचार तक सिवाय उन लोगों के जिनके मस्तकों को

विजय के घमण्ड ने घेर लिया हो और किसी के चित्त में उत्पन्न न हो सकता था। और सिवाय अन्धे उत्तरदायित्व शून्य शासकों के कोई ऐसी नीति को जारी रखने पर आग्रह न कर सकता था। हम से पहले जितने भी राजकुल बदलते रहे, मुसलमान अथवा मराठे ने सब निस्सन्देह इन म्युनिसिपल संस्थाओं का पूरा आदर करते थे और उन्हें कायम रखते थे, किन्तु अब इन संस्थाओं की अवहेलना की गई, और विदेशीय शासन की नई पद्धति ने इन में से बहुत सी संस्थाओं की जड़ों को निर्दयता के साथ उखाड़ कर फेंक दिया।[*]

अराजकता

मिस मेयो! गवरनर जनरल वारेन हेस्टिङ्ग्ज ने इस सम्बन्ध में बड़ी स्पष्टवादिता से काम लिया है। उन्हों ने साफ कहा है कि न्याय का काम जनता से हमने 'निवस्था विरुद्ध अपहरण' (usurpation) छीन लिया न्याय का अपने आधीन बनाना आवश्यक था इसलिये 'ईमानदारी से या बेईमानी से (by hook or by crook) हम ने उसे अपने आधीन बना लिया।'[*]

देश के रक्षण प्रबन्ध का तोड़ कर उसके स्थान पर जो प्रबन्ध किया गया वह भी देखने योग्य है। इसे देख कर आप को इस देश की उस "अराजकता" का वास्तविक रहस्य मालूम हो जायेगा जिस 'अराजकता' के इस देश से मिटा

[*] टौरिज्म, इम्पाइर इन एशिया (१७७० से १८००) पेज ९८ से १०३ तक

डालने जाया करते थे। परन्तु इस सबको जाने दीजिये।*

मिस मेयो, बहुत सभ्यतायें आईं और गईं परन्तु यह भारतीय प्रजातांत्रिक प्रबन्ध सदा एक समान क़ायम रहा। इसी प्रबन्ध ने हमारी समाज में आदर्श प्रियता को सम्भव बनाया। इसी ने हमारी सम्पन्नता को राजनीतिक क्रान्तियों से सदा सुरक्षित रखा। परन्तु आपके इस देश में आने के समय जो यहां की समाज की शक्ति थी वही इसकी दुर्बलता साबित हुई। आप राजा का रूप धारण करके आये। यहां की आदर्श-प्रिय जनता ने आप को अपना लिया। आप के स्वभाव में वह उच्च धार्मिकता और नैतिक भाव न था जो यहां की व्यवसंस्थाओं को समझ सकता और उनकी रक्षा कर सकता। आप ने रक्षा के नाम पर इस जनता के व्यापार, इसकी शिक्षा, इसकी सम्पन्नता सभी को मिटा दिया। अराजकता फैलाई और साथ ही साथ जनता को निःशस्त्र कर दिया। पूर्व इसके कि जनता अपनी इस नवीन आपत्ति की भयंकर वास्तविकता को समझ सके और उसके प्रतिरोध के साधन उत्पन्न कर सके वह स्तब्ध और विवश हो गई।

---

* जेम्स मिल और लार्ड मिंटो के ये उद्धरण तथा अन्य कई बातें हमें श्रीयुत सुन्दरलाल कृत पुस्तक 'भारत मे अंगरेज़ी राज्य' से ली हैं जो 'चान्द कार्यालय' प्रयाग से प्रकाशित होने वाली है। हम श्री० सुन्दर लाल जी के अनुग्रहीत हैं कि उन्होंने अपनी हस्त लिपि का हमें उपयोग करने दिया।

मिस मेयो — हे महिला! हम अमरीकन लोग बड़े 'स्थूल बुद्धि' के होते हैं। यह सब उच्च दर्शन तुम्हीं को मुबारक रहे। हम लोगों के जीवन का मौलिक सिद्धान्त यह है कि जो जाति स्वयं अपनी रक्षा नहीं कर सकती उसे संसार में जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं। फिर तुम जानती हो कि तुम्हारी यह दुःख गाथा सुन कर किसी पश्चिमीय के दिल में कितनी घृणा उत्पन्न होती है।

प्रत्युत्तर —हां, मिस मेयो, मैं यह जानती हूँ। मगर आप नहीं जानतीं कि आप के इस पाशविक सिद्धान्त को सुनकर एक पूर्वीय हृदय में कितनी घृणा उत्पन्न होती है। निस्सन्देह पूर्वीय सभ्यतायें इस पशाचिक सिद्धान्त पर अवलम्बित न थीं। संसार के आरम्भ से हम सहस्रों जातियों को अपनाते रहे। उनकी सभ्यता से स्वयं लाभ उठाये और उन्हें अपनी सभ्यता से लाभ पहुँचाते रहे। परन्तु हमारे किसी मेहमान ने, हमारे घर पर प्रभुत्व पाकर, हम से यह नहीं कहा कि जो जातियां स्वयं अपनी रक्षा नहीं कर सकतीं उन्हें जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं। नहीं, मिस मेयो, नहीं। पूरब का यह चलन न था। पूरब के किसी राजा ने अपनी प्रजा पर एक बार प्रभुत्व जमा लेने के बाद उसकी जीवन शक्ति की परीक्षा इस पश्चिमीय सिद्धान्त के अनुसार नहीं की। हमारा पूर्वीय हृदय आज भी इस सिद्धान्त की अमानुषिक क्रूरता से डर कर और यह कल्पना करके कि इस के

अनुसरण के नतीजे व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के लिये कैसे घातक होंगे, कांप उठता है।

मिस मेयो, मैं जानती हूँ कि पश्चिम के गूढ़ वैज्ञानिकों ने बड़े परिश्रम से मानव विकाश का यह मौलिक सिद्धान्त ढूंढ निकाला है। और आज पश्चिम अपनी समाज की बुनियादें इसी सिद्धान्त पर रख रहा है। परन्तु पश्चिम का स्वर वाइवेल आफ दी फिट्टेस्ट के सिद्धान्त को मानुषिक जीवन का आदर्श बनाना उसकी सब से बड़ी भूल है। इस आदर्श का प्रभाव मानव जीवन पर केवल एक ही पड सकता है। वह यह कि भिन्न भिन्न व्यक्तियों और समाजों में आपस में एक पैशाचिक-सर्वव्यापी, अनन्त संघर्ष उत्पन्न हो जावे। सम्भव है कि यह अनन्त संघर्ष प्रकृति का एक अटल नियम हो। सम्भव है कि प्राकृतिक जीवन सर्वथा इसी नियम के आधीन हो। परन्तु मिस मेयो, मानव जीवन का वास्तविक संग्राम मनुष्य मनुष्य में नहीं, प्रकृति और मनुष्य में है। इसलिये यह ज़रूरी है कि हम अपनी सम्मिलित शक्ति और समय आपस के संघर्ष में नष्ट न करके प्रकृति को अपने आधीन बनाने में लगा दें। एक दूसरे को मिटा कर नहीं बल्कि सम्मिलित प्रयत्न द्वारा प्रकृति को मानव जीवन के सुखों को बढ़ाने का साधन बना कर ही हम संसार में वास्तविक उन्नति कर सकते हैं। परन्तु यूरोप के गूढ़ विज्ञानी यह सब सुनने को तैयार नहीं। वे कहते

हैं कि प्रकृति का समस्त जीवों के साथ यही व्यवहार है। वे कहते हैं कि पशुओं का पशुओं के साथ भी यही व्यवहार है। फिर भला मानव जन जो पशुओं ही की एक श्रेणी हैं इस सिद्धान्त के चक्र में कैसे बाहर आ सकते हैं। मिस मेयो, संसार की किसी अन्य सभ्यता ने मानुषिक जीवन को इस प्रकार पाशविक जीवन में परिवर्तित नहीं किया था।

आज वैज्ञानिक यूरोप के नेतृत्व में इस पाशविक युग का प्रारम्भ है। राजनीति की छत्रछाया में, अपने व्यापारिक अजगर को साथ लिये रेलों, जहाजों, विमानों पर उड़ती हुई यूरोपीय जातियां अपनी विकराल तोपों की गरजों में पूर्वीय जातियों को उनकी मृत्यु-घोषणा सुना रही हैं।

"सुन लो! जो जाति अपनी रक्षा नहीं कर सकती
उसे संसार में जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं।"

मिस मेयो, इस वैतान नाद का असर पूरब पर भयङ्कर रूप में पड़ रहा है। यदि आज हम अपने नवयुवकों को इस भयङ्कर सिद्धान्त की क्रूरता दर्शाने का यत्न करते हैं तो वे हमें धर्मान्ध समझते हैं। हमें वैज्ञानिकता से दूर और अवनतिशील संसार में पड़ा बतलाते हैं। आज इस सिद्धान्त को सुन सुन कर कि जो जाति अपनी रक्षा नहीं कर सकती उसे जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं उनके हृदय व्याकुल उनके शरीरों में रक्त का संचार होने लगता है। सम्भव है

कि आज वे इस ध्वनि को सुन कर अपनी आत्मरक्षा की ओर अकर्षित हों। परन्तु मिस मेयो, एक बार कोमल हृदयों पर अपना पूर्ण प्रभाव डाल चुकने के बाद यह सिद्धान्त केवल आत्म रक्षा तक परिमित नहीं रहते। आप स्वयं अपने व्यवहार को पूर्वीय जातियों के साथ देख लीजिये। फिर मिस मेयो? क्या आप यह नहीं देखती कि आप इस प्रकार संसार में कैसी अनन्त अन्ध घृणा और विध्वन्स के तूफ़ानों के बीज बो रही हैं। आप के गूढ़ वैज्ञानिक ऐसे नेत्र विहीन क्यों हैं? मिस मेयो! स्मर्ण रहे कि पूर्व को आपके डंक ने दुःख बहुत पहुँचाया है, परन्तु वह अभी जीवित है। और यदि इन आप के पाशविक सिद्धान्तों ने उसकी प्राचीन सभ्यता को मिटा कर आप के अन्ध सिद्धान्तों के सांचे में डाल दिया तो आपको अपने इस विज्ञान के बड़े भयंकर परिणाम उठाने पड़ेंगे। मिस मेयो! संसार ग़लत और निर्दयी सिद्धान्तों के अनुसरण को व्यक्ति, समाज अथवा जातियों को बड़ी निर्दय क्रूरता के साथ ताड़ना देता है।

मिस मेयो:—बस चुप रहो, मैं यह सब बातें न जानती हूँ न जानना चाहती हूं। मैं तो सिर्फ़ एक बात जानती हूं और वह यह है कि आज मुट्ठी भर आदमी तीस करोड़ को अपने पांव तले दबाये हैं। और इन के पास फीके उच्च सिद्धान्तों के सिवा और कुछ नहीं।

सुनो प्रश्न यह नहीं है कि इङ्गलिस्तान आज से सौ वर्ष पूर्व क्या था या तुम स्वयं सौ वर्ष पूर्व क्या थे, प्रश्न यह है कि इङ्गलिस्तान आज क्या है, और तुम आज क्या हो।

प्रत्युत्तर —मिस मेयो तुम्हारी यह स्पष्टवादिता मुझे पसन्द है। तुम स्वीकार करती हो कि इस देश का राज रोग तुम हो, और यदि यह देश इस रोग का सम्पूर्ण इलाज कर के अपने आपको सुरक्षित न कर सके, तो इसकी मौत की जिम्मेदारी तुम पर नहीं बल्कि स्वयं इसी की दुर्बलता और हीनता पर होगी।

परन्तु मिस मेयो, यह तेंतीस करोड़ मनुष्य जिनका तुम मुझे ताना देती हो तुम्हारे इस वेदवाक्य को नहीं सुन पाते। मैं तुम से कह चुकी हूँ कि मित्र का रूप धर कर तुमने इन्हें विवश किया। और आज भी असत्य साधना द्वारा तुम इन्हें इसी भ्रम में डाले हुए हो। फिर मिस मेयो, तंतीस करोड़ व्यक्तियों का नाम क्यों लेती हो। यह लड़ाई शारीरिक युद्ध तो नहीं कि हमारी बड़ी संख्या तुम्हें पद दलित कर डाले। जब इस प्रकार का युद्ध आरम्भ हो और उसके बाद भी तुम यहां ठहर जाओ तो अवश्य तुम्हें तीस करोड़ जनता के नाम लेने का अधिकार हो जावेगा। अभी तक तो धोखे, दगा, फरेब की लड़ाई है। और इसमें सन्देह नहीं कि तुम इस लड़ाई में हमसे ही नहीं सभी से श्रेष्ठ हो।

मिस मेयो, मैं एक और बात कहूँ। अभी कल की बात है कि इस देश में एक असहयोग आन्दोलन चला था। इसके चलाने वाली एक मुट्ठी भर निःशस्त्र जागृत आत्माएं थीं। इस का नेता एक वस्त्र विहीन -- आदर्शविलीन — हड्डियों का पिंजर — संसार से विरक्त --- अस्त्र शस्त्र का द्रोही — परोपकारी — आत्मसंयमी — फ़क़ीर था। तुम्हारी ओर दो लाख श्वेताङ्ग राजेश्वर, असंख्य शूरवीर सैनिक, कुवेर का भण्डार और चाणक्य की कूट बुद्धि थी। परन्तु मिस मेयो, हमें आपकी उस समय की दशा याद है। आप का वह चेहरा, आप की वह बदहवासी, हम कभी भूल नहीं सकते। आपके दिल के धड़कने की आवाज़ दूर दूर सुनाई देती थी। और यद्यपि देश के नरम दल वाले नेता आपके दिल पर हाथ धर धर कर आपको साहस दिलाते थे परन्तु फिर भी वह धड़कन कम न होती थी। वही शक्तिशाली साम्राज्य जिस पर आपको इतना घमण्ड है, थर थर काँप रहा था।

क्यों, मिस मेयो! क्या यह सब असत्य है? इस देश को छोड़ कर स्वयं इङ्गलिस्तान की हालत देखने योग्य थी। इस आन्दोलन के भय से आपके देश के वीर, साहसी, नव-युवकों ने यहां के फौजी तथा सिविल ओहदों पर आना बन्द कर दिया था और क्या क्या प्रबन्ध — क्या क्या इनाम

क्या उत्साह दिलाने के बाद भी अभी तक ये इधर का रुख करते डरते हैं। फिर मिस मेयो, तुम हमारी तीस करोड़ जनता का नाम क्या लेती हो। वह तो अभी तक तुम्हारी शत्रु नहीं हुई।

परन्तु मान भी लो कि अब वह तुम्हारी शत्रु है। क्यों मिस मेयो, गत महायुद्ध में बेलजियम का पराजय करके कितने जरमन फौजी दस्ते वर्षों तक उस समस्त देश को अपने आधीन बनाए रहे। वह तो तुम्हारा स्वतंत्र वीर पश्चिमी देश था। नहीं यह बताइये कि यूरोप का त्रिकाल योद्धा जरमनी आज निःशस्त्र हो जाने के बाद किस दशा में है। इसके सब से अधिक सम्पन्न रूर प्रान्त पर कब्जा के फ्रान्सीसी दस्ता ने किया था? और उस समय वह असंख्य जरमन जनता क्या हो गई थी जिसका नाम सुन कर समस्त यूरोप भयभीत हो जाता था? क्या कारण है कि वह जनता उस समय अपनी रक्षा स्वयम् नहीं कर सकती थी। और बाईकाट और असहयोग के अतिरिक्त उसे और कोई उपाय याद न पड़ा। मिस मेयो, जनता की संख्या का ताना सर्वथा निर्मूल है। इस वैज्ञानिक युद्ध के युग में, इस प्रकार के संघर्ष में, जो इस समय भारत को करना पड़ रहा है, जनता का असंख्य होना कठिनाइयों को सरल करने के स्थान पर और भी बढ़ा देना है। हमारी प्रारम्भिक कठिनाइयों को दूर हो जाने दो फिर

मिस मेयो, तुम नहीं हम स्वयं जनता की संख्या का प्रश्न तुम्हारे सामने उपस्थित करेंगे।

मिस मेयो :—ज़रा सुनो तो ! इतनी ख़फ़ा क्यों हो गईं ? मेरा यह मतलब नहीं था जो तुम समझ बैठीं। सुनो मैं तो ख़ुद चाहती हूं कि तुम्हें स्वराज्य मिल जावे। पहिले जो कुछ भी किया हो परन्तु अब तो स्वयं अङ्गरेज़ भी इसके ख़िलाफ़ नहीं हैं। फिर गई बातों को भूल कर तुम इस अपूर्व शान्ति से फ़ायदा क्यों नहीं उठातीं जो इनके योग्य सैनिक प्रबन्ध ने देश में उत्पन्न करदी है। अपनी शिक्षा बढ़ाओ, व्यापार बढ़ाओ, समाज सुधार करो, तुम्हें हर बात का मौक़ा है। और कुछ भी हो परन्तु एक रक्षक की स्थिति में तो तुम यह नहीं कह सकतीं कि ब्रिटिश साम्राज्य अपूर्व तथा आदरणीय नहीं है।

प्रत्युत्तर :- मिस मेयो ! इस देश की शान्ति की वास्तविकता मैं महात्मा गान्धी के शब्दों में तुम्हें सुनाती हूं। सुनो, वे कहते हैं :—

> मुझे खुद तो उस 'इंडिपेन्डेन्स' की कोई लालसा नहीं जिसे मैं समझ ही नहीं सकता मगर मैं अङ्गरेज़ों के जुए से छूटना अवश्य चाहता हूं। इसके लिए मैं सब कुछ कर सकता हूं। इसके बदले में मुझे अराजकता भी मंज़ूर है। क्योंकि अङ्गरेज़ी शान्ति तो श्मशान की शान्ति है। एक सारे राष्ट्र की इस

जीवित मृत्यु से तो कोई भी और बात अच्छी होगी। इस शैतानी सल्तनत ने इस सुन्दर देश को आर्थिक, नैतिक और आध्यात्मिक, सभी दशाओं में प्राय सत्यानाश ही कर दिया है। मैं आज देखता हूं कि इसकी कचहरियां न्याय के बदले अन्याय करतीं, सत्य के गले पर छुरी फेरती हैं। मैं भयाकुल उड़ीसा को अभी देखे आ रहा हूं। यह सरकार मेरे अपने ही स्वदेश बन्धुओं से अपने पापी निर्वाह के लिए मदद ले रही है। मेरे पास कई हल्फ नामे अभी रक्खे हुए हैं कि खुदा जिले में प्राय तलवार की नोक के बल पर लोगों से लगान-बढ़ती की स्वीकृति के कागजों पर दस्तखत कराए जा रहे हैं। इस सरकार की लासानी फजूलखर्ची ने हमारे राजों महराजों का सिर फेर दिया है जो इसकी बन्दर के समान नकल उतारने में नतीजों की ओर से लापरवाह हो कर अपनी प्रजा को धूल में मिला रहे हैं। अपना अनैतिक व्यापार कायम रखने के लिए यह सरकार नीच से नीच काम करने से बाज आने वाली नहीं है। ३० करोड़ आदमियों को एक लाख आदमियों से पैरों तले दबवाए रखने के लिए यह सरकार देशपर इतना बड़ा सैनिक खर्च का भार लादे हुए है जो आज करोड़ों आदमियों को आधे पेट रखता है, और शराब से हजारों के मुंह गन्दे करता है।

मिस मयो, तुमने उन तलवारों का वास्तविक उपयोग देखा जिनकी छाया में रह कर तुम हमें अपने व्यापारिक तथा सामाजिक विकाश का उपदेश दे रही हो।

मिस मेयो :—मैं यह सब सुनना नहीं चाहती। परन्तु क्या तुम यह इन्कार करती हो कि ब्रिटिश साम्राज्य तुम्हारी रक्षा नहीं कर रहा है। क्या इसने तुम्हें, बाहरी हुकूमतें तो एक ओर रहीं, स्वयं काबुल और उत्तरीय प्रदेश के मुसलमानों से सुरक्षित नहीं किया है। फिर इस प्रकार की निर्मूल आलोचनाओं से क्या लाभ है ?

देश रक्षा का प्रश्न

प्रत्युत्तर :—मिस मेयो ! मैंने सुना है कि औरंगज़ेब के समय में काबुल का गवरनर एक हिन्दू था जो भारत के इस समस्त उत्तरी प्रदेश को शान्त तथा नियंत्रित रख सकता था। फिर यह क्या बात है कि जब मुसलमानी राज्य में स्वयं काबुल से युद्ध प्रेमी और इस्लामी देश की रक्षा औरंगजेब ने एक हिन्दू के सुपुर्द कर रक्खी थी तो आज आप हमारी रक्षा काबुल से करने का प्रश्न उठा रही हैं ? अभी मुश्किल से सौ वर्ष बीते कि रणजीत सिंह के समय में हरी सिंह नलवाने काबुल को विजय किया था। कहा जाता है कि उसके बहुत दिनों बाद तक अफ़ग़ानिस्तान की माताएं "नलवा मी आमद" (नलवा आता है) कह कर अपने शरीर बच्चों को चुप किया करती थीं। फिर क्या कारण है कि वही काबुल आज हमारे लिये हौवा बन गया ? उत्तरी प्रदेश के लोगों की बन्दूक लिये हुए तसवीरें हमारे डराने के

लिये आपने अपनी पुस्तक मे लगाई हैं । क्यों मिस मेयो ! यदि आप की अद्वितीय रक्षा का यह प्रताप है कि जिन पर हम शासन करते थे वे ही आज हमारे लिये हौवा बन गए हैं, तो क्या यह उचित नहीं कि जितनी जल्द हो सके हम इस भीरुताजनक " रक्षा " का अन्त कर डालें ।

इसके अतिरिक्त मिस मयो, जातीय जीवन म रक्षा तीन चीजों की की जाती है । शिक्षा , व्यापार तथा आत्मगौरव । शिक्षा व्यापार का हाल आप सुन चुकीं । आप की "रक्षा" का जिस प्रकार घनिष्ट सम्बन्ध हमारे जातीय जीवन के इन दोनो विभागों से है उसे आपने खूब देख लिया । रहा आत्मगौरव, सो अन्य देशों की कौन कहे, जो दशा हमारी आपके साम्राज्य के अन्य विभागों म है, नहीं स्वयं इङ्गलिस्तान ही म हो रही है, उसे देख लीजिये । इस सब पर आप की इस मदर इण्डिया ' का सौंदर्यपूर्ण टीका हमारे मस्तक पर लगाया गया है । फिर यह विदित है या नहीं कि हमारे देश का यह " अद्वितीय " सैनिक प्रबन्ध दूसरों से हमारी रक्षा के लिये नहीं, बल्कि स्वयं हम से अपनी रक्षा के लिये आपने रक्खा है ।

मिस मयो, यदि इस प्रकार के रक्षण प्रबन्ध संसार म उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं तो स्वयं आप का देश अमेरिका इस लाभकारी प्रबन्ध म क्यों विलग हो गया । इङ्गलिस्तान

एक समय आप का भी तो रक्षक था। हाल ही में केनेडा, आस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ़रीका जो सब, आपके साम्राज्य ही के नहीं वलिक आपके शरीर के अङ्ग थे, क्यों आपकी अपूर्व रक्षा से मुक्त हो गए ? क्यों मिस मेयो, जब यह रक्षा अपनों के लिये इतनी भयंकर सिद्ध हुई तो क्या ग़ैरों को इससे किसी प्रकार का लाभ पहुँच सकता है ?

मिस मेयो ! आप हमें न बनाइये, हम जानते हैं कि यह रक्षा हमारे देश के लिये वैसी ही है जैसे एक विशाल वृक्ष की छाया उन पौदों के लिये होती है जो उसके नीचे उत्पन्न होते हैं। इसके रहते हुए हमारा अपनी जातीय उन्नति के किसी कार्य में अपनी शक्ति और समय गंवाना रेती पर महल उठाने के समान है। हम दिन भर में जितना कर पावेंगे वह रात्रि के अन्धकार में नष्ट हो जावेगा। इसलिये हमारा एक मात्र उद्देश्य दत्त चित्त होकर इस रक्षा के समस्त प्रवन्ध को अपने देश से निर्मूल कर देना है। जब तक हम यह न कर पायें किसी अन्य विषय की ओर ध्यान देना अपनी शक्ति और समय का दुरुपयोग करना है।

मिस मेयो :— इससे अधिक मूर्खता की बातें मैं ने आज तक इस मूर्ख देश में नहीं सुनी। तुम लोग अन्य देशों का हाल सुनते हो। परन्तु तुम में इतना ज्ञान नहीं होता कि तुम उनकी वास्तविक अवस्था को समझ सको। इसलिये अन्य देशों की

घटनाएं तुम्हारी बुद्धि को और भी भ्रष्ट कर देती हैं। हे महिला, क्षण भर के लिये यह तो सोचो कि यदि आज अङ्गरेज इस देश से तुम्हें तुम्हारा राज सौंप कर चले जायें तो तुम इसकी रक्षा का भार कैसे उठा सकोगे। तुम्हारे पास देशी फौजी अफसर कहाँ हैं? तुम्हारे पास लडाई का समान कहा है, फिर तुम अपने आप को अन्य जातियों से कैसे बचा सकोगी?

प्रत्युत्तर — क्यों मिस मयो, देश का प्रबन्ध पाते ही क्या हम फौजी अफसर जितने चाहें अन्य देशों से नहीं बुला सकते? और क्या हमें इन अफसरों पर आज से कम ही खर्च नहीं करना पडेगा? यह बताओ कि जापान ने प्रारम्भ में अपनी समस्त सेना को फ्रान्सीसी अफसरों द्वारा तैयार करवाया था या नहीं? रूस के पीटर दी ग्रेट ने रूसी फौज में समस्त जर्मन अफसर नियत किये थे या नहीं? तुर्कों की सेनाओं को जर्मन अफसरों ने तैयार किया है या नहीं? आज सहस्रों जर्मन फौजी अफसर रूस की साम्यवादी सेनाओं को तैयार कर रहे हैं या नहीं! आज सहस्रों रूसी अफसर चीन की सेनाएं तैयार करने में सहायता दे रहे हैं या नहीं? और दूर क्यों जाओ काबुल की सेनाओं को इटली और फ्रान्स के फौजी अफसरों ने तैयार किया है या नहीं? और आज रूसी फौजी अफसर उनकी हर प्रकार की तैयारी में सहायता दे

रहे हैं या नहीं ? क्यों मिस मेयो ! क्या फ़ौजी अफ़सर भी कोई ऐसी दुर्लभ वस्तु हैं कि हमें संसार में कहीं न मिल सकें गी। इसके अतिरिक्त क्या चार ही पांच वर्ष के अन्दर हम स्वयं अपने सहस्त्रों नवयुकों को जापान, रूस, जर्मनी. टर्की भेज कर अपनी आवश्यकता अनुसार स्वयं अपने अफ़सर तैयार नहीं कर सकते।

रहा लड़ाई का सामान सो यह तो शायद आपने भी सुना होगा कि पश्चिमी महा युद्ध के समय फ़्रान्सीसी और अङ्गरेज़ी कारख़ानों तक से लड़ाई का माल जर्मनी पहुँच जाया करता था। फिर शान्ति के समय में क्या यह माल जमा कर लेने में हमें बड़ी कठिनाई पड़ेगी ? और क्या चन्द ही वर्षों में हम यह सारी चीज़ें स्वयं अपने ही यहां तैयार नहीं कर सकते।

किन्तु यह नहीं हो सकता कि मिस मेयो, आप यह सब ख़ुद न जानती हों। परन्तु अफ़ग़ानों के आक्रमण के हौवे के समान आपने हमारे लिये यह भी एक हौवा बना रक्खा है। इस प्रकार के हौवों से हमें डराते रहना, हमारे हृदयों पर इनके भय को अङ्कित कर देना, आप की राजनिति का एक मुख्य अंग है। आपकी सेनाएं नहीं, बल्कि इस प्रकार के झूटे ख़तरों को हमारा असली समझने लगना ही, इस देश पर आप के प्रभुत्व क़ायम रहने का

वास्तविक रहस्य है। इसीलिये राम नाम की तरह इस खतरा का जप आप हमारे सामने करती रहती हैं। परन्तु हम आप के इस प्रबल जादू का प्रतिरोध कर रहे हैं और सम्भव है कि कुछ ही समय में आपका यह सारा तिलिस्म टूट जाए।

मिस मेयो — तुम भी अजब आदमी हो। मैं पूछती हूँ कि अङ्गरेजों की रक्षा यदि तुम्हारे देश से हट जाए तो क्या अन्य जातियां तुम्हारी बोटियां न नोच ले जाएंगी?

प्रत्युत्तर — क्यों मिस मेयो! दक्षिण अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, कनेडा जो आप की रक्षा से स्वतन्त्र हो गये क्या आज उनकी बोटियाँ नुच रही हैं? मैं यह पूछता हूँ कि एक नहीं अनेक सदियों तक टरकी का कुस्तुनतुनिया पर अपना प्रभुत्व कायम रख सकने का क्या रहस्य है? क्या यूरोपीय जातियां यदि चाहतीं तो उस को नहीं मिटा सकती थीं। ईरान को आपके प्रभुत्व से किस ने बचाया? स्वयं ईरान ने या यूरोप की अन्तर जातीय स्थिति ने। आप के पांव चीन से उखड़ जाने का वास्तविक कारण अमरीका, जापान और रूस हैं या कोई और बात है? मिस मेयो, यूरोपीय शक्तिशाली जातियों का पारस्परिक वैमनस्य ही हमारा अदृश्य रक्षक हो जावेगा। यदि यह आप यहां से चले जाने पर विवश हो जाएं तो आप का पहला काम यह होगा कि आप यह प्रयत्न करें कि अमेरिका, जापान, फ्रान्स, रूस आदि कोई यहां अपना विशेष

अधिकार न जमा सकें। इसलिये यहां रह कर नहीं, यहां से निकल कर ही आप हमारे वास्तविक रक्षक बनेंगे और उस समय हमें आपकी इस सेवा का कुछ विशेष पुरस्कार भी न देना पड़ेगा।

मिस मेयो :—हे महिला गो तुम्हारी बातों में किञ्चित् मात्र भी तत्व नहीं, फिर भी वे बड़ी मन मोदक हैं। सुनो यदि यह मैं मान भी लूं कि अन्तर जातीय वैमनस्य से तुम लाभ उठा सकोगे फिर भी काबुल तो तुम्हारे इतना क़रीब है कि जब तक अन्य जातियों को कुछ दख़ल देने का मौका मिले वह तुम्हारे देश पर क़ब्ज़ा जमा लेगा। इंगलिस्तान जब तक पहुँचे पहुँचे तुम्हारा ख़ात्मा हो जाएगा।

प्रत्युत्तर:—मिस मेयो, मुझे बड़ा शोक है कि ऐसे संकट के समय आप हमारी सहायता न कर सकेंगी। परन्तु रूस तो काबुल से बहुत दूर नहीं है, क्या यह सम्भव है कि जब रूस ने आपके साम्राज्यवाद की जड़ें चीन से उखाड़ दी। जब ईरान को उसने आपके नाजायज़ दबाव और प्रभुत्व से आज़ाद कर दिया। जब टरकी उसकी सहायता और सहानुभूति से ही अपने आपको आप के छिपे और खुले हमलों से बचा सका, तो क्या वही रूस, काबुल को आपके यहां से चले जाने के बाद आसानी से अपना साम्राज्य इस देश पर जमा लेने देगा। और क्या एक तरफ़ रूस और

दूसरी ओर हिन्दुस्तान इन दोनों पाटों के बीच में पड कर, यदि काबुल बिचारे के दिल में कुछ खोट भी हो तो वह पिस न जावेगा।

मिस मेयो, इस समय ससार म एक नवीन तथा विकराल विप्लव उपस्थित है। इस विप्लव का केन्द्र रूस है। इस केन्द्र से चल कर इस विप्लव की विशाल तरङ्गे एक ओर हिमालय से टकरा रही हैं, दूसरी ओर समस्त चीन को पार करती हुई वे उस देश के पूर्वीय समुद्री किनारों तक पहुँच गई हैं। इस विचित्र बढते हुए तूफान ने ससार की साम्राज्यवादी हुकूमतों को चकित, भयभीत और अत्यन्त व्याकुल कर दिया है। इस तूफान के प्रतिरोध के अनेकानेक प्रबन्ध हो रहे हैं। स्वय हिन्दोस्तान में एक ओर कराची और उत्तरी प्रदेशों में हवाई जहाजों और फौजों के लिये जो विशाल तैयारियां हो रही हैं उन्हें देख कर जर्मन महा युद्ध के दिनों का चित्र खिंच जाता है। दूसरी ओर ब्रह्मा की उत्तरी सरहद पर काबुल की सरहद के समान एक नया फौजी प्रदेश बनाया जा रहा है। मिस मेयो! यह सब क्यों है? यह सब उस विकराल तूफान को रोकने की तदबीरें हैं जो दिनों दिन समीप आता दिखलाई पड रहा है। ऐसी अवस्था में जब स्वय आपकी साम्राज्यवादी हुकूमत की जान खतरे में है तो हम यह डराना कि आपके जाने के बाद कोई अन्य साम्राज्य यहां आजावेगा सर्वथा छल है।

अधिकार न जमा सकें। इसलिये यहां रह कर नहीं, यहां से निकल कर ही आप हमारे वास्तविक रक्षक बनेंगे और उस समय हमें आपकी इस सेवा का कुछ विशेष पुरस्कार भी न देना पड़ेगा।

मिस मेयो :—हे महिला यो तुम्हारी बातों में किञ्चित् मात्र भी तत्व नहीं, फिर भी वे बड़ी मन मोदक हैं। सुनो यदि यह मैं मान भी लूं कि अन्तर जातीय वैमनस्य से तुम लाभ उठा सकोगे फिर भी काबुल तो तुम्हारे इतना क़रीब है कि जब तक अन्य जातियों को कुछ दख़ल देने का मौक़ा मिले वह तुम्हारे देश पर कब्ज़ा जमा लेगा। इंगलिस्तान जब तक पहुँचे पहुँचे तुम्हारा ख़ातमा हो जायगा।

प्रत्युत्तर:—मिस मेयो, मुझे बड़ा शोक है कि ऐसे संकट के समय आप हमारी सहायता न कर सकेंगी। परन्तु रूस तो काबुल से बहुत दूर नहीं है. क्या यह सम्भव है कि जब रूस ने आपके साम्राज्यवाद की जड़ें चीन से उखाड़ दीं। जब ईरान को उसने आपके नाजायज़ दबाव और प्रभुत्व से आज़ाद कर दिया। जब टरकी उसकी सहायता और सहानुभूति से ही अपने आपको आप के छिपे और खुले हमलों से बचा सका, तो क्या वही रूस, काबुल को आपको यहां से चले जाने के बाद आसानी से अपना साम्राज्य इस देश पर जमा लेने देगा। और क्या एक तरफ़ रूस और

दूसरी ओर हिन्दुस्तान इन दोनों पाटों के बीच में पड कर, यदि काबुल बिचारे के दिल में कुछ खोट भी हो ना वह पिस न जावेगा।

मिस मेयो, इस समय ससार में एक नवीन तथा विकराल विप्लव उपस्थित है। इस विप्लव का केन्द्र रूस है। इस केन्द्र से चल कर इस विप्लव की विशाल तरङ्गे एक ओर हिमालय से टकरा रही हैं, दूसरी ओर समस्त चीन को पार करती हुई वे उस देश के पूर्वीय समुद्री किनारों तक पहुँच गई हैं। इस विचित्र बढते हुए तूफान ने ससार की साम्राज्यवादी हुकूमतों को चकित, भयभीत और अत्यन्त व्याकुल कर दिया है। इस तूफान के प्रतिरोध के अनेकानेक प्रबन्ध हो रहे हैं। स्वय हिन्दोस्तान में एक ओर कराची और उत्तरी प्रदेशों में हवाई जहाजों और फौजों के लिये जो विशाल तैयारियां हो रही हैं उन्हें देख कर जर्मन महा युद्ध के दिनों का चित्र खिच जाता है। दूसरी ओर ब्रह्मा की उत्तरी सरहद पर काबुल की सरहद के समान एक नया फौजी प्रदेश बनाया जा रहा है। मिस मेयो! यह सब क्यों है? यह सब उस विकराल तूफान को रोकने की तदबीरें हैं जो दिनों दिन समीप आता दिखलाई पड रहा है। ऐसी अवस्था में जब स्वय आपकी साम्राज्यवादी हुकूमत की जान खतरे में है तो हम यह डराना कि आपके जाने के बाद कोई अन्य साम्राज्य यहां आजावेगा सर्वथा छल है।

दूसरे आप निश्चिन्त रहें। कोई अन्य जाति अब इस देश में आसानी से पांव नहीं जमा सकती। जिस युग में आप ने इस देश में क़दम जमा लिया वह युग और था। उस समय राष्ट्रीयता और जातीयता के भाव और आदर्श संसार पर अपना साम्राज्य नहीं जमा पाए थे। उस समय लड़ाई राजा राजा की होती थी। आज लड़ाई राजा प्रजा की है। और आप संसार के इतिहास को देखिये कि राजा प्रजा की लड़ाई में कहीं भी ऐसा हुआ है कि प्रजा को सम्पूर्ण विजय न मिली हो? असल बात यह है कि अब संसार में प्राचीन से प्राचीन निरंकुश हुकूमतों का अन्त हो चुका है। यदि कहीं यह हुकूमतें बाकी हैं तो उन्हीं देशों में जो या तो साम्राज्यवादी पश्चिमी हुकूमतों के आधीन हैं या जहां पश्चिमी हुकूमतें अपने प्रभाव से जनता का अधिकार देश पर क़ायम नहीं होने देतीं। ऐसी स्थिति में यदि हमने आपको अपने अधिकार देने पर विवश कर लिया तो फिर कोई और शक्ति ऐसी नहीं जो यहां प्रजातांत्रिक शासन के क़ायम होने को रोक सके।

परन्तु मिस मेयो, अब मुझे क्षमा कीजिये। मैंने आप का बहुत समय लिया।

हमारी महामारियां

मिस मेयो :— नहीं सुनो इन सब बातों को जाने दो तुम से मैं

सिर्फ एक प्रश्न और करना चाहती हूँ। देखा, तुम स्वराज मागती हो। परन्तु तुमने कभी अपने सामाजिक अन्ध विश्वासों और कुरीतियों की ओर भी ध्यान दिया है? कभी तुम ने यह भी सोचा कि इन कुरीतियों ने तुम्हारी जनता की क्या दुर्दशा बना दी है? साम्राज्यवाद ने तो सम्भव है कि तुम्हें कुछ धन की हानि पहुचाई हो। परन्तु यह अन्ध विश्वास और कुरीतिया तो तुम्हारी जान ले रही हैं। हैजा, इनफ्लुएन्जा, आदि से जानती हो कि कितने लोग मरते हैं। गत महायुद्ध म पाच वर्ष के भीतर कुल लगभग ७३ लाख आदमी मरे और जखमी हुए थे। परन्तु इस युद्ध के बाद साल भर के भीतर ही इस देश में साठ लाख आदमी केवल एक इनफ्लुएन्जा से मरे—कुछ। यह सुनकर तुम्हें दु ख होता है? यदि तुम कुल सख्या उन लोगों की जमा करो जो आखिरी पचीस वर्ष में महामारियों की भेंट हुए तो उनकी सख्या करोडो तक पहुच जाएगी। यह वह बलिदान है जो तुम्हारा देश तुम्हारी कुरीतियों और तुम्हारे धार्मिक अन्ध विश्वासो की वेदी पर चढा रहा है। परन्तु यह सब देख कर तुम्हारा जी नहीं दुखता। इन सबके होते हुए तुम्हारा राजनीति की बातें करना यह दिखाता है, कि तुम कैसी निर्दय और स्वार्थी हो और वास्तव में तुम्हें जनता से कोई सहानुभूति नहीं है।

प्रत्युत्तर — मिस मेयो, मुझे क्षमा करो परन्तु म यह कहे बिना नहीं रह सकती कि जो दिमाग हमें धोखा देने के लिये

ऐसी ऐसी अपूर्व युक्तियां निकालते हैं, जैसे आप और आपके सहजाति वह दिमाग मानुषिक नहीं पैशाचिक हैं। आदि काल से लेकर आज से सौ वर्ष पूर्व तक यह देश व्यापार आदि में सर्वश्रेष्ठ रहा। परन्तु आज हम से कहा जाता है कि हमारे अन्धविश्वासों और उच्च दर्शन ने हमें अपनी भौतिक उन्नति की ओर ध्यान न देने दिया। आप के आने के समय तक हमारी जनता अन्य देशों की जनता से अधिक शिक्षित थी। आज हमें बताया जाता है कि स्त्रियों की इस देश में पतित अवस्था होने के कारण इस की असंख्य जनता को शिक्षा देना किसी भी हुकूमत के लिये असम्भव है। परन्तु इससे भी अधिक क्रूर और निरलज्ज युक्ति यह है कि इस देश में महामारियों की उत्पत्ति का वास्तविक कारण हमारी सामाजिक कुरीतियां और हमारे धार्मिक अन्ध विश्वास हैं।

मिस मेयो! मैं आप को बताती हूं कि ऐतिहासिक युग के आरम्भ से ले कर उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ हो जाने के बहुत बाद तक कभी इस देश में महामारियां नहीं फैली थीं। संसार इस अविश्वस्यनीय घटना को देख कर चकित था, क्यों कि हिन्दुस्तान के अतिरिक्त कोई अन्य देश ऐसा न था कि जहां महामारियां विकराल रूप में न फैली हों। उन्नीसवीं शताब्दि तक संसार में यह मसल मशहूर थी कि महामारियां सिन्धु नदी को पार नहीं कर सकतीं। अब यह दशा है कि

आप क्या स्वयं मेरे देश निवासी इस बात को सुन कर मुश्किल से विश्वास करेंगे। आप की दी हुई अपूर्ण शिक्षा और आप के व्यापक और विनाशक प्रोपेगेण्डे ने हमारी शिक्षित अशिक्षित सभी श्रेणियों को नेत्र विहीन कर दिया है। परन्तु देखिये, इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में यूरोप और हिन्दुस्तान म महामारियों के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है उस में से मैं आप को कुछ अंश सुनाती हूं। देखिये, चौदहवीं शताब्दि से लेकर अठारवीं शताब्दि तक इस विषय में यूरोप का क्या हाल था।

किन्तु चौदहवीं सदी की महामारियों क उस विशाल चक्र को नजर अन्दाज करना असम्भव है जिसे 'ब्लैक प्लेग' अर्थात् काली मौत कहा करते थे यह बात सब अच्छी तरह जानते हैं कि इस काली मौत से मरने वालों की संख्या भयङ्कर थी हैकर ने हिसाब लगाया है कि इन तमाम महामारियों से यूरोप की एक चौथाई आबादी, अर्थात् ढाई करोड़ मनुष्य इन तमाम महामारियों का शिकार हुए

पन्द्रहवीं सदी मे यूरोप के लग भग समस्त भागों में प्लेग बार बार होती रहती थी। मालूम होता है कि इंगलिस्तान प्लेग से कभी भी सर्वथा मुक्त न हुआ था सन् १४६६ में चालीस हजार आदमी पेरिस नगर के अन्दर प्लेग से मरे।

सोलहवीं सदी में प्लेग पन्द्रहवीं सदी से कम न था। सन् १५६३-६४ में लन्दन और इंगलिस्तान के अन्दर यह महा-

मारी बहुत ज़ोरों पर थी। लन्दन के अन्दर प्रति सप्ताह एक हज़ार मनुष्य इस से मरते थे। इसी समय के निकट पेरिस में प्लेग एक रोज़ मर्रा की चीज़ थी। कोई कोई लोग प्लेग से इतना भी न डरते थे, जितना सिर के दर्द से (वोरजेल्मी)——

सत्रहवीं सदी के पूर्वार्ध में भी प्लेग यूरोप में फैली हुई थी।. यद्यपि उस समय मध्यकाल की अपेक्षा बहुत कम हो गई थी। उस समय तथा उसके बाद के वर्षों में ये बिमारी इंगलिस्तान में चारों ओर फैली हुई थी......मई सन् १६६५ के लगभग यह बीमारी फिर दिखाई दी और फैलने लगी किन्तु कुछ धीरे धीरे ...... उस वर्ष सरकारी रजिस्टरों के अनुसार लगभग ४, ६०. ००० की जन संख्या में से ६८,५९४ प्लेग से मरे, इस कुल आबादी में से कहा जाता है कि दो तिहाई बीमारी से बचने के लिये नगर छोड़कर भाग गए थे।......

इस समय के प्रारम्भ में कुस्तुन्तुनिया में और डैन्यूब नदी के बराबर बराबर प्लेग खूब फैली हुई थी....प्रशिया और लिथूनिया में २. ८३. ००० मनुष्य इससे मरे॥

क्यों मिस. मेयो, आपने चौदहवीं सदी से लेकर अट्ठारहवीं सदी तक यूरोप की हालत देखी। यूरोप में तो बाल विवाह, वैधव्य. अछूत आदि की विनाशक समस्थाएं न थीं जो आप के कहने के अनुसार महामारियों का वास्तविक कारण हैं। फिर यूरोप में यह महामारियां कैसे उत्पन्न हुईं। दरिद्रता, गन्दगी, स्वास्थ्यमय सिद्धान्तों की

अनुभिज्ञता तो केवल पूर्वीय और विशेष कर भारतीय समाज के अवगुण हैं। फिर यह महामारियां पश्चिम में कैसे उत्पन्न हुई।

अब जरा इस विषय में हिन्दुस्तान का हाल सुनिये, —

प्लेग के फैलने के लिये दरमियान दरजे की गरम और हवा की जरूरत होता है। ट्रॉपिक्स अर्थात् अमन मण्डल के अन्तरगत देशों में प्लेग का कोई नाम भी नहा जानता। जिस समय यह बीमारी मिश्र में फैली हुई थी तब कहा जाता है कि असुआन से दक्षिण में कभी नहीं गई। ऐतिहासिक समय के अन्दर यह रोग भारत के मैदानों तक कभी नहा पहुंचा।[*]

मिस मेयो! आप ने देखा समस्त ऐतिहासिक युग में कभी इस देश में महामारियां उत्पन्न न हो सकीं। महामारियां उसी देश में उत्पन्न होती हैं जहाँ कृषि और व्यापार इतनी हीन अवस्था में हो कि उनसे जनता का गुजारा न चल सके। इसलिये आप देखेंगी कि प्रत्येक ऐसे देश में जिस की सम्पन्नता मिट जाती है यह बीमारियां उत्पन्न हो जाती हैं और जिस देश में दरिद्रता दूर हो जाती है उस देश में यह बीमारियां भी सदा के लिये लोप हो जाती हैं। समस्त ऐतिहासिक युग में हिन्दुस्तान कभी इतना दरिद्र नहीं हुआ कि इस में महामारियां उत्पन्न हो सकतीं। इसके विशाल

* इन साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका भाग १९, पृष्ठ १६०, १६४, १२८

व्यापार के कारण यहां देश देश के लोग आते थे। और कभी कभी ऐसा हुआ है कि परिमित रूप से किसी अन्य देश की महामारी क्षण भर के लिये यहां आ गई। परन्तु यहां आते ही इस देश का विनाश करने के बजाय स्वयं उसी का नाश हो जाता था। यदि आप यह जानना चाहती हैं कि महामारियां इस देश में कब से आईं तो देखिये वही लेखक इस सम्बन्ध में क्या कहते हैं।

> यह बात निर्विवाद (maxim) मानी गई है कि प्लेग सिन्धु नदी के पूर्व की ओर कभी दिखाई न देती थी, तथापि इस सदी में भारत के एक से अधिक स्थानों में प्लेग दिखाई पड़ी है। आज से पूर्व सन् १८१५ में तीन वर्ष के भयङ्कर दुष्काल के पश्चात् गुजरात, काठियावाड़ और कच्छ में यह बीमारी दिखाई दी।

मिस मेयो, देखा, यह किसका ज़माना और कौन सा समय था। यह वो वक़्त है कि जब आपको यहां आए पचास वर्ष हो चुके थे, और यह वही समय था कि जब आप गुजरात का व्यापार जबरन मिटा रहे थे। जैसे जैसे इस देश की आत्म रक्षण शक्ति को आप मिटाते गए वैसे वैसे ही इस देश में महामारियों का प्रभाव क्षेत्र बढ़ता गया। यहां तक कि अब उन्होंने इस देश में अपना वर्त्तमान विकराल रूप धारण कर लिया है। मिस मेयो, जिन लोगों ने आप को इस देश के सम्बन्ध में अपनी पुस्तक 'मदर इण्डिया' लिखने के

लिए सामग्री दी थी वे यह सब खूब जानते हैं और इन भयंकर घटनाओं पर परदा डालने के लिये ही " मदर इण्डिया " के समान पुस्तकें इस सम्बन्ध में लिखी जाती हैं। इतिहास आपके हाथ में है। हमारे देश के इतिहास लेखक भी आप ही के हाथ में हैं। फिर जो चाहिये लिखिये और लिखवाइये।

हमारे दुष्काल

मिस मेयो — सुनो सुनो, मुझे यह सुन कर बहुत आश्चर्य हुआ। परन्तु मुझ से लोगों ने कहा था कि कुरीतियों आदि के अतिरिक्त दुष्कालों के कारण भी महामारियां देशों म उत्पन्न हो जाती हैं। और यह तो तुम स्वय जानते हो कि इस देश में ठीक समय वर्षा न होने के कारण आए दिन अकाल पडते रहते हैं।

प्रत्युत्तर — मिस मेयो, आप के सहजाति कूट नीति की मूर्ति हैं। यह नहीं कि आप इन घटनाओं की असलियत को नहीं जानतीं, बल्कि जैसा मैंने कहा है आपका एक मात्र उद्देश साम्राज्यवादी शासनों के उन भयकर परिणामों पर परदा डालना है जो इनके आधीन देशों का विनाश कर देते हैं। मिस मेयो, इस देश में अकालों का वास्तविक कारण वर्षा की कमी नहीं वरन् यहां की गरीबी है। आपके ही देशबन्धु सुविख्यात रवेरेण्ड सण्डरलैण्ड साहब ने कहा है* —

* रेवेरेण्ड जे० टी० सण्डरलैण्ड एम० ए० डी० डी०, इण्डियन रिव्यू दिसम्बर नम्बर सन १९०८ पृष्ठ ९२१

"'सर विलियम हन्टर ने जो भारत का एक अत्यन्त योग्य इतिहास लेखक है, जो अत्यन्त निष्पक्ष है और जो कई वर्ष तक डाइरेक्टर जनरल आफ इण्डियन स्टैटिस्टिक्स रह चुका है, लिखा है कि भारत में चार करोड़ मनुष्य ऐसे है जो प्रायः कभी भी पूरी तरह अपना पेट नहीं भर सकते। भारत के गवरनर जनरल लार्ड लारेंस ने सन् १८९४ में कहा था कि, "अधिकांश जनता इतनी अधिक दरिद्र है कि उनके पास अपने पेट भरने का भी सामान नहीं" यह ज़िक्र उन दिनों का है जब कि अकाल पड़ा हुआ न हो। मि० ए० ओ० ह्यूम ने जो भारत सरकार के कृषि विभाग के सेक्रेटरी थे सन १८८० में लिखा था कि:—"सिवाय उन वर्षों के जब कि पैदावार बहुत ही अधिक हो अगणित मनुष्य ऐसे हैं जो साल में कई महीने अपने और अपने कुटुम्ब के लिये काफ़ी भोजन नहीं पा सकते।"' . . ..

उन्हीं की ज़बानी यहां के महसूलों का हाल सुनिये :—

''भारत की दरिद्रता का एक महत्वपूर्ण कारण वहाँ के भारी कर हैं। कोई कोई लोग इस बात से इनकार करते है कि भारत-वासियों से कर अधिक लिये जाते हैं। किन्तु इसकी आसानी से परीक्षा की जा सकती है। इङ्गलिस्तान और स्काटलैण्ड को लीजिये। इङ्गलिस्तान और स्काटलैण्ड के रहनेवाले इस बात की शिकायत करते है कि इन पर टैक्स भारी है। किन्तु आम-दनी के औसत के हिसाब से जितना टैक्स इंगलिस्तान के लोगों से लिया जाता है उससे तिगुना और जितना स्काट लैण्ड के

लोगों से लिया जाता है उसका चौगुना भारतवासियों से लिया जाता है। इसका मतलब यह नहीं कि जितनी सख्ती इंगलिस्तान और स्काटलैण्ड के लोगों पर की जाती है उस से केवल तिगुनी या चौगुनी सख्ती ही भारत वासियों पर की जाती है। भारतवासियों के टैक्स उन के लिये उस से कहीं अधिक कष्टकर है, क्योंकि भारतवासियों की असली आमदनी ही अंगरेजों के मुकाबले में इतनी अधिक कम और नाकाफी होती है। केवल एक चीज का टैक्स ले लीजिये, अर्थात नमक का टैक्स। नमक निर्धन से निर्धन मनुष्य के जीवन के लिए आवश्यक है। यदि लोगों को नमक न मिले तो उनके शरीरों के लिये परिणाम अत्यन्त गहिरे होंगे। हमें देखना है कि नमक पर कहाँ से क्या टैक्स लिया जाता है? नमक की कीमत पर दो हजार प्रतिशत टैक्स लिया जाता है। अर्थात जो कोई दरिद्र भारतीय मजदूर एक पैसे का नमक खाता है वह उस नमक को खाने की इजाजत प्राप्त करने के लिये बीस पैसे सरकार की भेंट करता है। निस्सन्देह इस टैक्स ने करोड़ों मनुष्यों के लिये काफी नमक खाना लगभग असम्भव कर दिया है।

मिस मेयो यदि आप इस मत से सन्तुष्ट नहीं तो मैं आप का एक और आपके विख्यात अमरीकन की जबानी इस देश के दुष्कालों की वास्तविकता दर्शाती हूँ, देखिये वह क्या कहते हैं,—

> जो अकाल इस समय (१९०६) जारी है उस मिला कर भारत के अन्दर डेढ़ सौ वर्ष के अंगरेजी शासन से ३३ बड़े बड़े अकाल पड़े हैं। सन १८३३ के मद्रास के अकाल में गलियों के अन्दर लोगों के मुर्दों के समूह एक साथ मरते थे मद्रास की सड़कें लाशों से लदी हुई एक विशाल व्यापक युद्ध क्षेत्र के समान

दिखाई देती थी। गुण्टूर की पांच लाख आबादी में से दो लाख भूख से मर गए। सन् १८३७ के उत्तरीय भारत के अकाल में दस लाख आदमी मरे, इसी प्रदेश में सन १८६० में भूख से मरने-वालों की संख्या दो लाख थी। सन् १८६६ में उड़ीसा की एक तिहाई आबादी, अथवा लगभग दस लाख आदमी मर गए। सन १८६९ के उत्तरीय भारत के दुष्काल में बारह लाख आदमी मरे। सन् १८७७ के मद्रास के अकाल में पचास लाख से ऊपर आदमी मरे। सन १८७८ के उत्तरीय भारत के दुष्काल में साढ़े बारह लाख आदमी मरे। सन् १८९७ के बड़े अकाल में, जिससे अधिक बुरा केवल एक को छोड़ कर और कोई अकाल भारत में कभी न पड़ा था, एक समय में तीस लाख आदमियों को सरकारी सहायता दी जा रही थी जिसके बिना उनका जीना असम्भव था।

किन्तु यह सब आपत्तियां उस भयंकर बरबादी के सामने फीकी मालूम होने लगती हैं जो कि सन १९०० ई० के पञ्जाब, राजपूताना, मध्यप्रान्त, और बम्बई के उस काले अकाल के कारण हुई जो दो साल तक शान्त न हो सका। ......

...... इसलिये सन् १८९१ से १९०१ तक यदि कम से कम हिसाब लगाया जावे तो समस्त भारत में अकालों के कारण निस्सन्देह प्रति वर्ष अस्सी लाख से ऊपर आदमियों की जानें गईं, और जिस तरह मैंने हिसाब लगाया है उस तरह वास्तव में मृत्यु संख्या इतनी अधिक है कि जिसका अनुमान कर सकना भी लग भग असम्भव है।

इतिहास के अन्दर हमें इससे अधिक विचित्र और लज्जाजनक घटना नहीं मिलती कि बीसवीं सदी में, सभ्यता के बीच में, एक दयालु, सुसभ्य और ईसाई शासन के नीचे एक साल के अन्दर अस्सी लाख मनुष्य भोजन न मिल सकने के कारण मर जावें।

कई सदियों के अन्दर संसार के समस्त युद्ध क्षेत्रों में जितने आदमी मरे उससे अधिक एक साल के अन्दर भारत में अन्न के अभाव से मरे। सौ साल से हम फ्रान्सीसी क्रान्ति और 'रेन आफ टेरर' के अत्याचारों पर चिल्लाते आए हैं। किन्तु जितने आदमी भारतमें एक साल के अन्दर अन्न के अभाव से मरे उतने यदि साढ़े तीन हजार बार 'रेन आफ टेरर' हो तो उस में मर सकते हैं।

सरकार की ओर से कहा जाता है कि सरकार के पास इतना धन नहीं है कि अधिक विस्तार और अधिक शीघ्रता के साथ आबपाशी का प्रबन्ध किया जा सके। मेरी समझ में यह आना जरा मुशकिल है।

मैं देखता हूं कि सन् १८०० के बाद से भारत में फौज का वार्षिक व्यय चार करोड़ डालर (लगभग १४ करोड़ रुपये) से बढ़ाकर साढ़े आठ करोड़ डालर (लगभग ३० करोड़ रुपये) कर दिया गया है। मामूली इन्सान को लोगों की जानें लेने की अपेक्षा जानों की रक्षा करना अधिक महत्व का कार्य मालूम होता है।

मैं देखता हूं कि इस समय तक हिन्दुस्तान की सरकार ने उन रेलों के ऊपर जो सरकार की मिल्कियत हैं तमाम आमदनी, मुनाफों और मुआवजों के अतिरिक्त बीस करोड़ डालर (अर्थात् लगभग सत्तर करोड़ रुपया) खर्च किया है, और इस विशाल धन का एक बहुत बड़ा हिस्सा ऐसी ऐसी जगह रेलें जारी करने में नष्ट किया गया जहां पर कि उनकी जरूरत न थी, और जहां कि रेलों से आमदनी नहीं हो सकती। ये रेलें केवल बलवान पूंजीपतियों अथवा धनवान, प्रभावशाली या उपाधिधारी अंगरेजों को खुश करने के लिये जारी की गई हैं। मामूली आदमी की दृष्टि में अकाल को रोकना अधिक अच्छा

काम मालूम होता है बजाय इसके कि दुनियां भर के लोगों और निर्दय पूंजीपतियों की इच्छा पूरी की जावें।

मैं देखता हूं कि सरकार परोपकार दृष्टि से नहरें नहीं खुदवाती, बल्कि उसमें अपने लाभ पर साफ़ नज़र रखती है। सरकार किसान को जो पानी देती है उसके लिये उससे पूरी तरह धन वसूल कर लेती है। महसूल के अन्दर सरकार को अपनी तमाम आबपाशी की नहरों पर सब खर्च देकर औसतन ८.३५ प्रतिशत प्रतिवर्ष मुनाफ़ा होता है। मद्रास में ७.१४ प्रतिशत, और कभी कभी १५ प्रति शत तक मुनाफ़ा होता है। उन ज़िलों में भी जहां के कमिश्नरों ने इस बात की रिपोर्ट की है कि किसान १०) रु० फ़ी एकड़ पानी के लिये देने के नाक़ाबिल हैं, उनसे १०) रु० फ़ी एकड़ वसूल कर लिये गए हैं।.........

अकालों का तात्कालिक कारण वर्षा की कमी होती है। किन्तु प्रारम्भिक और मूल कारण लगान तथा भूमि के कर की पद्धति है।

भारतीय किसान फ़जूल ख़र्च नहीं होते वे मूर्ख नहीं होते। यदि उन्हें कुछ भी मौक़ा मिले तो वे उन वर्षों में जब कि फ़सल अच्छी होती है अकाल के वर्षों के लिये अन्न बचा कर रख लें और मरने से बच जावें। किन्तु लगान और कर इतना अधिक है कि किसान कभी थोड़ा सा अन्न भी बचा कर नहीं रख सकता। उसके खेतों में चाहे जितनी भी पैदावार क्यों न हो, और वह चाहे कितनी भी किफ़ायत क्यों न करे, अधिक से अधिक वह अपनी एक दिन की कमाई से उस दिन के लिये अपना पेट भर सकता है।

संसार में कोई भी मनुष्य करों के भार से इतना अधिक दबा हुआ नहीं है जितना कि भारतीय किसान। उसे अक्षरशः

इतना अधिक कर लेना पड़ता है जिसका परिणाम सिवाय अकाल के और कुछ हो ही नहीं सकता। किसान अपनी आमदनी में से ५० प्रति शत करके रूप में दे देता है। शहर के सौदागर, व्यापारी, और आरामदेह बङ्गलों के मालिक इससे कम कर अदा करते हैं। इस पर भी लोग आश्चर्य प्रगट करते हैं कि अकाल क्योंहोते हैं!

इङ्गलिस्तान के एक पादरी ने अपने गोलपेट के ऊपर हाथ रख कर सञ्जीदगी के साथ कहा था कि भारत के अकाल परमात्मा का कोप है। जब हम ऊपर की तमाम विचित्र बातों को याद करते हैं और उसके साथ साथ यह भी याद करते हैं कि जो लगान इस प्रकार भारत के निर्धन से निर्धन लोगों से जबरदस्ती वसूल किया जाता है उसका एक तिहाई से लेकर आधा भाग तक प्रतिवर्ष देश से बाहर भेज दिया जाता है, तब आसानी से समझ में आ जाता है कि अङ्ग-रेज पादरी का कथन कहां तक उचित और न्याय्य था।

पैंतालीस फी सदी भारत की जनता अर्थात तेरह करोड़ व्यक्ति सदा भूखे रह कर अपना दम तोड़ते रहते हैं। इन्हें अपनी तमाम उम्र में किसी इत्तफ़ाक़ से भी कभी पेट भर कर खाना नहीं मिलता।

परन्तु यह कहा जा सकता है कि वे क्या इन पैशाचिक करों को बर्दाश्त करते हैं। वे उस मालगुजारी को क्यों अदा करते हैं जो इस प्रकार से देश की समस्त शक्ति को चूसे ले रही है। वे फौज पर खर्चा, सरकारी रेलों पर खर्चा क्यों और कैसे होने देते हैं।

इन्हें यह सब इस वास्ते सहना पड़ता है कि इन्हें अपनी हुकूमत के सम्बन्ध में स्वयं मुंह खोलने का अधिकार नहीं।

उनका देश-शासन में कोई भाग नहीं और न वे उस पर किसी प्रकार का कोई प्रभाव डाल सकते हैं।

सरकार अपने लगान वसूल करने के तरीकों की इस बर्बरता का इसलिये ध्यान नहीं करती क्योंकि सरकार पर इसके लिये कोई ऊपरी दबाव नहीं है। भारत की सरकार किसी तरह पर भी किसान पर निर्भर नहीं है। किसी अंश में भी भारत की सरकार लोगों की बनाई हुई नहीं है। भारत सरकार का इस संसार में और कुछ काम ही नहीं सिवाय इसके कि वह इङ्गलिस्तान के शासकों को यह दिखला दे कि इतना धन करों के रूप में वसूल किया गया और इतना धन साम्राज्य की रक्षा के लिये खर्च किया गया।

भारत सरकार किसी के सामने उत्तरदायी नहीं। उसमें प्रजातन्त्र का नाम नहीं। संसार के चक्र में स्वेच्छाशासन की इस से अधिक शुद्ध मिसाल नहीं मिल सकती, और न स्वेच्छाशासन के परिणामों का इससे अधिक विकराल और स्मरणीय उदाहरण मिल सकता है।" [चार्ल्स इडवर्ड रसेल, इण्डियन रिव्यू]*

क्यों मिस मेयो, आपने हमारे अकालों की वास्तविकता को देख लिया? एडमंड वर्क ने कहा था कि "तातारियों के हमले हानिकर थे परन्तु हमारा संरक्षण हिन्दुस्तान का सर्वथा विनाश कर रहा है।" वर्क बेचारा भी उस समय यह न जानता होगा कि हमारा विनाश सौ वर्ष में ही ऐसा भयंकर रूप धारण करेगा। इतने थोड़े समय में इतने अकाल ऐसी महामारियां संसार के किसी देश ने नहीं देखीं। सारे ऐतिहासिक युग में जितनी जनता यूरोप में अकाल और महामारियों से मिटी होगी, उतनी इस देश में अन्तिम सौ वर्ष में मिट गई।

* दिसम्बर १९०६—पृष्ठ ९२४—९२७

मिस मेयो, दोनों ये जातीय आपत्तियां साम्राज्यवाद के रथ के दो चक्र हैं। जिस प्रकार प्राचीन काल में जगन्नाथ का रथ अपने भक्तों को स्वर्ग पहुँचाता था। उसी प्रकार साम्राज्य-वाद के रथ के यह विकराल चक्र संसार के देशों के आदिम निवासियों को पीस डालते हैं। बहुत जातियां इन में पिस पिस कर मिट चुकी। आज हमारी बारी है। और यदि हम अपनी जीवन शक्ति की इस भयकर परीक्षा में पूरे न उतरे तो हम भी मिट जायेंगे।

सुनो! इस सङ्कट के समय हम यह उपदेश देना कि हम अपनी तीस करोड़ जनता को शिक्षा दें—सात करोड़ अछूतों को, और करोड़ों ब्राह्मणों को उनके प्राचीन अन्ध विश्वासों से मुक्त करें—वैधव्य को रोकें — बाल विवाह को निर्मूल कर दें— और तब ही स्वतन्त्रता की ओर बढ़ें — हम अपने विनाश का सीधा मार्ग दिखाना है। मिस मेयो, जब इङ्गलिस्तान ने हमें पराजित किया उस समय इङ्गलिस्तान सर्वथा अशिक्षित था। आज मेसोपाटमिया पर अङ्गरेजों ने इसने देखते अपना साम्राज्य जमा लिया। उस देश में अछूत, वैधव्य, बाल विवाह कोई भी प्रश्न नहीं है। हमारे देश में स्वयं ब्रह्मा प्रान्त को देख लीजे वहां प्रारम्भिक शिक्षा यूरोपीय जातियों से अधिक है। स्त्रियां पश्चिमीय स्त्रियों से ज्यादा स्वतन्त्र हैं, और जातीय जीवन के प्रत्येक भाग में पूरा हिस्सा लेती हैं। छूत अछूत का भी वहां भेद भाव नहीं। परन्तु आज वह प्रान्त जातीयता के भावों में भारत के अन्य प्रान्तों से पीछे है। फिर मिस मेयो, हम अपनी सामाजिक कुरीतियां को मिटाने से राजनीतिक क्षेत्र में क्या विशेष लाभ पहुंचेगा।

राजनीतिक लाभ केवल अपनी जनता के राजनीतिक जीवन को प्रबल बनाने, उनमें राजनीतिक भाव और जोश उत्पन्न करने से ही हासिल हो सकता है। देश की प्रधान आवश्यकता यह है कि हम अपनी समस्त शक्ति इस रथ के काल रूपी चक्रों के रोकने में लगा दें। आप यह ख़ूब जानती हैं कि यदि हमने इन्हें शीघ्र ही न रोका और समाज सुधार के काम में लगे रहे तो वह सब जनता जिसका हम सुधार करना चाहते हैं पिस कर चूर चूर हो चुकी होगी। इसीलिये आप हमारा ध्यान अपने जीवन की इस प्रधान आवश्यकता से हटाती हैं। असंख्य तरकीबें कर कर के इस पर परदा डालने का प्रयत्न करती हैं।

परन्तु मिस मेयो, अब आप सफल नहीं हो सकती। इस में सन्देह नहीं कि हम सङ्कट में हैं। हमारे नवयुवकों पर आपका जादू चल गया है। हमारा शिक्षित विभाग भी आपका आधीन है। साधारण जनता दरिद्रता की आपत्तियों में फंस कर अशक्त हो रही है। परन्तु फिर भी हम अभी मरे नहीं, जीवित हैं। और, मिस मेयो, दूर नहीं कुछ ही समय में हमारा और आपका फिर मुक़ाबिला होगा। उस वक्त आप देखेंगी कि भाइयों भाइयों को लड़वा कर, एक दूसरे से ज़ख़्मी करवा कर भी, आप कहां तक हमारी वास्तविक जीवन शक्ति को हानि पहुँचा सकी हैं।

मुक्ति के साधन

आपके आक्रमण के प्रतिरोध के लिये हम ने साधन ढूंढ निकाले हैं। दिन प्रति दिन यह विचार कि हम स्वयं

अपने मिटाने में आपको सहायता दे रहे है हमारे हृदय पर अङ्कित होता जा रहा है। और जिस दिन हमने आपके ाथ से अपना हाथ हटा लिया उसी दिन उसका चलना बन्द ो जावेगा। हमारा हाथ रोक लेना अविश्वसनीय नहीं। अविश्वसनीय यह है कि इसे हम स्वयं अपने हाथों से चला रहे है।

दूसरे मिस मेयो, आपके व्यापारिक अजगर से अपने ारीर को मुक्त कर लेने का साधन भी हमारे हाथ आ गया है। इस अजगर का विनाशक विष खद्दर पर असर नहीं करता। इस अजगर के भयंकर शरीर के लिये खद्दर एक आग के लूके के समान है कि जिसकी आंच पहुँचते ही यह अपने शरीर की घातक कुण्डलियों को ढीला करने पर विवश हो जाता है। हां, 'मिस मेयो, आपकी शिक्षा ने, आपके राजनीतिक प्रभाव ने हमारी समाज के हृदय को पश्चिमी चीजों के मोह के जाल में फांस दिया है, मगर फिर भी यदि हम जीवित रहना है तो हम इस जाल से निकल जायगे। देखो यह जाल टूट रहा है। धीरे, धीरे, परन्तु अटल, असन्दिग्ध रूप से हम अपने उद्देश की ओर जा रहे हैं। हमारा आन्दोलन समुद्र के समान विशाल और समुद्र की भांति शान्त है। निस्सन्देह हम इस समय कृष्ण पक्ष में है। परन्तु मिस मेयो! देखिये! देखिये! वह दूर को देखिये! आपको कुछ प्रभा सी दिखाई देती है। यह सौन्दर्यपूर्ण आकार हमारे दु:खमय अन्धकार के अन्त हो जाने के चिन्ह है। यह बतलाते हैं कि हमारे जातीय जीवन का वस्त्र विहीन — सुशील — प्रकाशमान — आकर्षणपूर्ण चन्द्रमा

भाग एक

मांडले की मोटर बस

कलकत्ता ब्रिटिश साम्राज्य के सबसे बड़े शहरों में से दूसरे नम्बर पर है। यह नगर गंगा के किनारे बसा हुआ है। गंगा को वहाँ पर हुगली कहते हैं। बंगाल की खाड़ी के ठीक ऊपर है। यह एक पाश्चात्य और अर्वाचीन नगर है, जिसकी सार्वजनिक इमारतें, स्मारक, बागीचे, पार्क, होटल, अस्पताल, अजायबघर, यूनिवर्सिटी, अदालत, दफ्तर, दूकानें सब ऐसी मालूम होती हैं जैसी कि अमरीका के किसी भी खुशहाल नगर की हों। यद्यपि नक्शे में सीधी सड़कें दी हुई हैं, तथापि इसमें हिन्दोस्तान के शहरों की सारी विशेषतायें जैसे मन्दिर, मसजिद, बाजार, पचीदा मैदान और गलियें सब मौजूद हो गयी हैं। मैदानों गलियों और बाजारों में बहुत सी छोटी छोटी किताबों की दूकानें हैं, जहाँ पर तङ्ग छातीवाले, कमज़ोर आँखोंवाले और रक्तहीन नौजवान हिन्दोस्तानी विद्यार्थी देशी पोशाक पहने हुए इस तरह की योरुपियन पत्रिकाओं के ढेर की ओर मन छानबीन करते हैं जिनपर मक्खियों ने हग रक्खा है।

कलकत्ता धनाढ्य भी है। भारत और संसार के परस्पर व्यापार के लिये सोना, चांदी, जूट, रुई और उन सब चीजों के लिये जिनकी भारत को या संसार को एक दूसरे से लेने की जरूरत पड़ती है, कलकत्ता एक खुला दरवाजा है। कलकत्ता

शानदार और बहका हुआ शहर है, जहां पर हर मज़हब, हर रङ्ग और हर लिबास के शानदार और बहके हुए लोग गवर्मेंट हाउस की गार्डन पार्टियों में जाते हैं, ख़ुश होकर लाट साहब और उनकी मेम को सलामें करते हैं, चाय पीते हैं, आइस क्रीम खाते हैं मज़े से अच्छी अङ्गरेज़ी बोलते हैं और फ़ौजी बैण्ड सुनते हैं।

गवर्मेण्ट हाउस की बाग़ की दीवारें इतनी ऊँची हैं कि वहां से सड़क नज़र नहीं आती। लेकिन अगर आप वहां से सड़क देख पाते तो तमाम सड़क आपको आने जानेवालों से और तरह तरह की बड़ी, छोटी, किराए की और घर की मोटरों से भरी हुई दिखाई देती। इन्हीं मोटरों के बीच बीच में कभी कभी आपको एक ट्राम जाती हुई दिखाई देगी जिसपर मोटे अक्षरों में लिखा हुआ है 'कालीघाट'।

यह ट्राम अगर आप देखने जाँय तो पार्क के पास से, एम्पायर थियेटर से होते हुए बहुत से क्लबों, सेण्टपाल गिरजे, बिशप के मकान, जनरल अस्पताल, लण्डन मिशनरी सोसाइटी की संस्था से होती हुई एक घने बसे हुए हिस्से में जाकर रुक जाती है। यही कालीघाट है।

कालीघाट—काली की जगह है इसी से कलकत्ते का नाम पड़ा है। काली हिन्दुओं की एक देवी है। हिन्दुओं के बड़े देवता शिव की स्त्री है। काली का विशेष कार्य संहार करना है। वह रक्त और बलिदान की प्यासी है। हिन्दुओं के अनुसार संसार के ऊपर काली का आध्यात्मिक प्रभुत्व लगभग पाँच हज़ार वर्ष हुए शुरू हुआ था, और लगभग ४, ३२, ००० वर्ष और क़ायम रहेगा।

हिन्दोस्तान में काली के छोटे बड़े हजारों मन्दिर हैं। कलकत्ते का मन्दिर करीब तीन सौ वर्ष से एक ब्राह्मण खानदान की निजी सम्पत्ति है। इस कुल के लगभग सौ आदमी जो सब 'एक बाप के बेटे' हैं आज इस सम्पत्ति के स्वामी हैं। इन सौ में से एक ने बड़े अनुग्रह के साथ एक और ब्राह्मण मित्र को साथ लेकर मुझे सारा मन्दिर दिखाया। इस दिखाने वाले का नाम मैं मिस्टर हलदार कहूंगा क्योंकि यही उनके कुल का नाम है।

अगर यह शख्स एक मामूली बङ्गाली की तरह सफेद धोती और सफेद कुरता पहने न होता तो वह आसानी से एक उत्तर इटली का एक सभ्य सज्जन समझा जा सकता था। उसकी अंग्रेजी सुथरी थी और उसका व्यवहार सर्वथा सन्तोषजनक था।

उसने मुझसे कहा कि मन्दिर के साथ ५८० एकड़ जमीन है जिस पर कोई टैक्स नहीं है। दूर दूर से यात्री सदा भरे रहते हैं। ये लोग धन चढ़ाते हैं। यजमानों से दक्षिणा भी ली जाती है और रास्ता के दोनों ओर ऊपर नीचे जो एक दूसरे से मिली हुई अनेक दुकानें हैं, जहां पर मिठाई, मूर्तियां, फूल, अतर और चढ़ावे का सामान बेचा जाता है, उनसे भी अच्छी आमदनी हो जाती है।

तेजी के साथ यात्रियों के बीच से रास्ता चीरते हुए मिस्टर हलदार हम खास मन्दिर तक ले गये। एक ऊंचा चबूतरा था जिसके ऊपर खम्भे और छत थी। चबूतरे के तीन तरफ उतनी ही लम्बी और चौड़ी सीढ़ियें थीं। चौथी तरफ एक गहरा अधखुला मन्दिर था, जिसमें काली की मूर्ति अन्दर

में धुंधली सी नज़र आती थी। चेहरा काला, एक बहुत बड़ी जीभ बाहर लटकी हुई और उससे ख़ून टपकता हुआ, चार हाथ, जिनमें से एक में आदमी का कटा हुआ सर जिसमें से ख़ून टपक रहा है, दूसरे में एक खड्ग, तीसरा फैला हुआ हाथ ख़ून उछाल रहा है, चौथा हाथ ख़ाली है जिससे वह संसार को डरा रही है। देवी के पैरों के आस पास साफ़ में पुरोहित खड़े हुए थे।

देवी के सामने उस लम्बे चबूतरे के ऊपर बड़ी भक्ति के साथ स्त्री और पुरुष साष्टांग दण्डवत् करते हैं। बीच बीच में फ़ालतू लड़के फिरते हैं जो लकड़ियों पर टंगी हुई मिठाइयां चाटते जाते हैं। एक सफ़ेद बछड़ा बीच में घूमता रहता है, और इन सबके बीच में एक सफ़ेद डाढ़ीवाला बूढ़ा पलोथी मारे फ़र्श पर बैठा हुआ एक बड़ी सी किताब अपने सामने रखे हुए है और भारी आवाज़ से कुछ पढ़ता रहता है।

मिस्टर हलदार ने मुझसे कहा कि, 'यह शख़्स भक्तों को हमारे हिन्दू पुराणों से काली की कथा पढ़ कर सुना रहा है।'

एकाएक एक तेज़ चीखती हुई ज़ोर की आवाज़ बकरे के मिमियाने की सुनाई दी। हम मन्दिर के कोने से घूमकर दूसरी ओर एक खुले सहन में पहुंचे। यहां पर दो पुरोहित खड़े हुए थे। एक के हाथ में एक मुड़ी हुई खड्ग थी। दूसरा एक बकरी के बच्चे को पकड़े हुए था। बकरी का बच्चा चिल्लाया, क्योंकि वहां की हवा में वह दुर्गन्धि आ रही थी जिसे सूँघकर सब पशु डर जाते हैं। काली के सामने नगाड़े बजने लगे जिनका ज़ोर का शब्द हुआ। जो पुरोहित बकरे को

पकड़े हुए था उसने उसे हवा में ज़ोर से झुला कर, उसकी टांगें खींचकर जमीन पर गिरा दिया। बकरा चीख रहा था। उसकी गर्दन एक फटे हुए खूटे के अन्दर ज़ोर से फंसी हुई थी। दूसरे पुरोहित ने एक झटके के साथ अपनी खड्ग से बकरे का सिर अलग कर दिया। खून का फव्वारा फर्श पर छूटने लगा। काली के सामने नगारे और घण्टे खूब प्रचण्डता से बजने लगे। तमाम पुरोहित और भक्त मिलकर एक साथ 'काली! काली! काली!' चिल्लाने लगे। कुछ लोग मन्दिर के फर्श के ऊपर पट लेट गये।

इतने में फौरन ही एक स्त्री जो उस बकरे के वधिकों के पीछे खड़ी हुई थी तेजी से आगे बढ़ कर नीचे लेट गई और अपनी जीभ से खून चाटने लगी—'इस आशा से कि इससे उसके पुत्र होगा।' इसके बाद एक दूसरी औरत झुक कर उस खून में एक कपड़ा भिगोने लगी और उस कपड़े को उसने अपनी बगल में रख लिया। इस पर आधी दरजन बीमार, जख्मी कुत्ते जिनकी शकलें अकथनीय रोगों के कारण भयकर होगई थीं उस लहू के बढ़ते हुए तालाब में आकर अपनी भूख बुझाने लगे।

हलदार ने कुछ अभिमान के साथ मुझसे कहा, 'इस प्रकार हम लोग प्रतिदिन यहां पर डेढ़ सौ से लेकर दो सौ तक बकरों के बच्चों का वध करते हैं। यह बकरे भक्त लोग लाकर चढ़ाते हैं।'

इसके बाद हलदार हमें छोटे देवी देवताओं के मन्दिरों में ले गये। एक मन्दिर चेचक की छोटी सी लाल देवी, शीतला का था। उसके पास ही उससे भी छोटी उसकी जोड़िया

देवी का स्थान था जो कि अपनी इच्छा के अनुसार लोगों को मोतीझारा का रोग देती है या उससे बचाती है। एक पांच फनोंवाले काले नाग की मूर्ति थी जिसकी टोढ़ी के नीचे एक छोटे से पुरोहित की मूर्ति बनी हुई थी। जिन लोगों को सांप काटने का डर होता है वे इस मूर्ति पर चढ़ावे चढ़ाते हैं। एक लाल मूर्ति बन्दर देवता हनुमान की थी जिसे कुश्ती लड़ने से पहले पहलवान नमस्कार करते हैं। एक और मूर्ति थी जिसको धनाढ्य व्यापारी और यूनिवर्सिटी के विद्यार्थी इम्तिहान में जाने से पहले, या नया व्यापार शुरू करने से पहले पूजा करते हैं। एक मूर्ति 'जगन्नाथ' की थी जो केवल एक हब्बो की तरह थी। इसके अतिरिक्त एक जगह काली के पति शिव का त्रिशूल था जो सब मन्दिरों में होता है। इन सब मूर्तियों के सामने थोड़े गेंदे के फूल और कुछ और लाल लाल पूजा का सामान पड़ा हुआ था। ये सब सामान मन्दिर की दूकानों पर बिकता है। इन दूकानों पर भी मन्दिर के सांडों के गोबर की बनी हुई पवित्र रोटियां (उपले) बिकती हैं।

मि० हलदार हमें एक गली में लेगया जिसमें साफ़ पंक्तियों में बैठे हुए बीसियों साधु संन्यासी थे जो क़रीब क़रीब सब नंगे थे, अधिकांश मोटे ताज़े थे, उनके लम्बे बाल थे, बदन पर राख मली हुई थी। ये लोग भीख मांग रहे थे। ये सब लोग फोटो खिंचवाने के लिये तैयार थे। ये साधु महात्मा उछलते और कूदते थे। एक पागल आदमी हमारी तरफ़ उछल पड़ा। वह एक छोटी सी लड़की को बुरी तरह डरा रहा था। इस लड़की की छोटी सी कलाई एक उपरने

बकरे का बलि (मदर इण्डिया पृष्ठ •)

द्वारा एक युवक की भलाई से बची हुई थी। यह युवक उस लड़की को पीछे लिये जा रहा था। मि० हलदार ने कहा, 'ये नव विवाहित पतिपत्नी हैं, देवीसे पुत्र मांगने आये हैं।'

इसके बाद हम मन्दिर की श्मशानभूमि में गये। एक चिता तैयार थी एक खुले महल के अन्दर एक चौखूटा गड्ढा खुदा हुआ था। उस गड्ढे को आधा लकड़ियों से भर दिया गया। पास जमीन पर एक सुन्दर नौजवान हिन्दोस्तानी स्त्री पड़ी हुई थी। मालूम होता था कि वह बेहोश है। उसके लम्बे काले बाल चारों तरफ बिखरे हुए थे। उनमें कुछ फूल लगे हुए थे। उसके माथे पर, उसके हाथों पर और उसके पांव के तलुवों पर लाल रङ्ग लगा हुआ था जिससे मालूम होता था कि वह सौभाग्यवती है, अर्थात् वह वैधव्य से बच गई— अपने पति के जीते जी मर गई। दो तीन रिश्तेदार और एक दस साल का लड़का पास खड़े हुए थे। मालूम होता था कि इन लोगों का मुर्दे से कोई सम्बन्ध नहीं। कुछ दूरी पर एक बुढ़िया जमीन पर बैठी हुई थी। पीछे पीछे घोड़े की मक्खियों की तरह पांच, छे फकीर इधर उधर फिर रहे थे।

लोगों ने लाश को उठाकर उस गड्ढे के अन्दर लकड़ियों पर रख दिया। उस औरत का सिर एक तरफ झुक गया और एक हाथ लटक गया मानों उसने नींद में करवट ली। उसे मंत्र केवल चन्द पढ़ते हुए थे। लोगों ने उसके ऊपर लकड़ियां चुन दीं और चिता को खूब ऊंचा कर दिया। इसके बाद उस छोटे से लड़के ने जो उसका बेटा था कुछ जलती हुई चीज हाथ में लेकर चिता की सात बार परिक्रमा की।

उसके बाद उसने आग लकड़ियों में फूंक दी। शोले उठने लगे, धुआं निकलने लगा अन्त्येष्टि संस्कार समाप्त होगया।

मि० हलदार ने मुझे समझाया कि, 'यदि आग अच्छी तरह जले तो सिवाय नाभि के और सब बदन जल जाता है। मन्दिर के लोग राख में से नाभि को निकाल लेते हैं और मरनेवाले के घर के लोगों से एक सोने की मोहर लेकर उस मोहर समेत नाभि को मिट्टी के गोले में लपेटकर गङ्गा में फेंक देते हैं। अब हम गङ्गा देखने चलेंगे।'

फिर वह हमें भीड़ में से निकालकर मन्दिर के नीचे एक जगह ले गया जहां पर एक गंदला, छिछला नाला बह रहा था जिसमें नहानेवालों की भीड़ थी। मि० हलदार ने कहा कि, 'यह गङ्गा की सबसे पुरानी धारा है, इसलिये इसका महत्त्व बहुत अधिक समझा जाता है। लाखों बीमार प्रतिवर्ष यहां पर नहाने और तन्दुरुस्त होने के लिये आते हैं, जैसा कि कुछ आपके सामने नहा रहे हैं। जो लोग और मन्नतें मांगने के लिये काली की पूजा करने आते हैं वे पूजा करने से पहले अपने पाप धोने के लिये यहां स्नान करते हैं।'

स्नान करने के बाद उन लोगों ने वहीं से थोड़ा थोड़ा पानी पिया जो मुश्किल से उनके घुटनों तक पहुँच रहा था। फिर उसमें से बहुत से अपने हाथों से कुछ मिनट तक नीचे की मिट्टी को टटोलते रहे और मुट्ठियों से कीचड़ बाहर निकाल कर उसे अपने हाथों में लेकर गौर से देखते रहे। मि० हलदार ने कहा, 'यह लोग उन सोने की मुहरों को ढूँढ रहे हैं जो स्मशानभूमि से गङ्गा में फेंकी गई हैं। उन्हें आशा है।'

इस बीच नदी की पैडिया के ऊपर नीचे पुरोहित लोग आते जाते रहे। हर एक के साथ तीन तीन चार चार बकरी के बच्चे होते थे। इन बच्चों को भी वहीं पर नहलाते थे जहां पर मनुष्य नहा रहे थे, फिर उन्हें खींच कर मन्दिर के आगन में ले आते थे। बच्चे चीखते थे और जोर लगाते थे। बहुत से स्त्री पुरुष पानी के घडे लिये हुए चढ उतर रहे थे। ये लोग उसी नाले से अपने घडो को भरकर लौट जाते थे।

मि० हलदार ने कहा, 'प्रत्येक बकरी के बच्चे को वध करने से पूर्व उसे गगा मे नहला कर पवित्र कर लेना आवश्यक है। जो लोग पानी ले जा रहे हैं वे देवीपर चढाने के लिये ले जा रहे हैं। यह पानी काली के पेरों पर और काली के सामने जो पुरोहित खडे रहते हैं उनके पैरों पर डाला जाता है'।

मन्दिर के बाहर की दीवाल के पीछे जब मि० हलदार हमसे विदा हुए मैने देखा कि आदमी के हाथ के बराबर जमीन से मिला हुआ दीवाल मे एक नाली का मुह था। इस सूराख में एक छोटे से पत्थर के ऊपर कुछ गेंदे के फूल, कुछ गुलाब की पखडियें और कुछ पैसे पडे हुए थे। मेरे देखते देखते एकाएक उस नाली मे से कुछ गदला पानी जोर से बाहर को बहा। एक स्त्री ने लपक कर उसके नीचे एक कटोरा लगा दिया और उसे भरकर पी गई।

'यह हमारा पवित्र गगा जल था, जो कि काली और उसके पुरोहितों के पैरो पर से बहकर और भी अधिक पवित्र हो गया था। इस पुरानी नाली द्वारा यह पवित्र जल मन्दिर के फर्श से बाहर आ रहा है। पेचिश और पारी के बुखार की यह बहुत अच्छी औषधि पाई गई है। जिन रोगियों मे

चलने की ताक़त है वे पहले गंगा में जाकर स्नान करते हैं फिर यहां आकर इस जल को पीते हैं। जो इतने बीमार हैं कि यहां नहीं आ सकते उनके लिये उनके मित्र यहां से जल ले जाते हैं।

इस तरह हम अपनी मोटर तक पहुँचे जो बाहर इन्तज़ार कर रही थी और फिर जनरल अस्पताल, बिशप के मकान, कब्रघरों, एम्पायर थियेटर से होते हुए चन्द मिनट के अन्दर कलकत्ते के ठीक बीच से निकल आये।

अगले दिन एक अङ्गरेज़ थियासॉफ़िस्ट ने बड़े दुःख के साथ मुझसे कहा, 'आप कालीघाट क्यों गईं? कालीघाट हिन्दोस्तान नहीं है। केवल सबसे नीचे दरजे और सबसे अज्ञानी हिन्दोस्तानी काली की पूजा करते हैं'।

मैंने एक अत्यन्त विद्वान् और प्रतिष्ठित बङ्गाली ब्राह्मण के सामने ये शब्द दोहराये। उसने इन शब्दों पर इस प्रकार टिप्पणी की :—

'आपके अङ्गरेज़ मित्र ने ग़लत कहा है। यह बात सच है कि नीच जातियों में काली के उपासकों की संख्या विष्णु के उपासकों की संख्या से अधिक है। शायद इसका एक यह भी कारण है कि विष्णु की उपासना में कुछ आत्मसंयम की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिये उसमें मादक द्रव्यों का उपयोग नहीं किया जा सकता। किन्तु लाखों ब्राह्मण हर जगह काली की पूजा करते हैं, और कालीघाट के भक्तों में हर जाति और हर स्थिति के हिन्दू होते हैं, उनमें इस शहर के और हिन्दोस्तान के कुछ सुशिक्षित से सुशिक्षित और बड़े से बड़े लोग भी पाये जाते हैं।'

पहिला परिच्छेद

संक्षेप

जिस देश को हम हिन्दोस्तान कहते हैं वह अमरीका की संयुक्त रियासतों से करीब करीब आधा है। उसकी आबादी अमरीका से तिगुनी है। उसकी तिजारत बाहर से आनेवाले माल और वहां से बाहर जानेवाले माल दोनों को मिला कर सन् १९२४-२५ में करीब पचास करोड़ पौण्ड अर्थात् ढाई बिलियन डौलर थी ॐ। यह तिजारत जितनी बढ़ सकती है उसका अभी कोई अंश भी नहीं है। और न्यूयार्क से बम्बई का रास्ता केवल तीन सप्ताह का है।

आजकल की दुनिया के हालत में, जब कि हम चाहें या न चाहें, संसार के तमाम देशों के बीच की सड़कें दिन पर दिन संसार में बढ़ती चली जाती हैं और छोटी होती चली जाती हैं, मालूम होता है कि एक ऐसे बड़े और निकटवर्ती देश की बाबत कुछ खास खास बातें जानना हमारे ज्ञान का एक भाग होना चाहिये और हमारी अपनी रक्षा के लिये जरूरी है।

किन्तु एक औसत दर्जे का अमरीका निवासी हिन्दोस्तान की बाबत क्या जानता है? यह कि मिस्टर गांधी वहां रहते हैं, और चीते रहते हैं। अगर इससे ज्यादह उसे हिन्दोस्तान का कुछ ज्ञान है तो वह ऐसे अस्पष्ट विचार हैं जो उसने बिना प्रयत्न एक स्वाभाविक तरीके से किसी न किसी दल विशेष

ॐ रिव्यु आफ दी ट्रेड आफ इण्डिया १९२४-२५ सरकारी किताब कलकत्ता १९२६, पृष्ठ ५१।

के प्रचारकों से, मज़हबी लोगों या संन्यासियों से, या भारत-सम्बन्धी क़िस्से-कहानियों, यात्रा वृत्तान्तों, उपन्यासों, कवितात्रों आदिक से जमा कर लिये हैं।

मैं इस तरह के ज्ञान से सन्तुष्ट न रह सकी। इसीलिये मैं भारत गई, ताकि किसी से धन की सहायता न लेकर जिससे किसी से दबना न पड़े, निष्पक्ष और निर्लेप रहकर, स्वयं वहां के दैनिक जीवन की मामूली चीज़ों को देखूं।

धर्म, राजनीति, कला कौशल से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं। मैं अपनी खोज को केवल उस तरह की रोज़मर्रा की बातों तक परिमित रखूंगी जैसे सार्वजनिक स्वास्थ्य और उससे सम्बन्ध रखनेवाली बातें। मिसाल के लिये मैं यह पता लगाने की कोशिश करूंगी कि यदि कोई वहां के किसी सरकारी डाक्टर को हैज़ा या प्लेग को रोकने का कार्य सौंपा जावे तो उसे किन किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा; यदि हुकवर्म (*Hookworm*) जैसे रोग को वहां से निकालने का प्रयत्न किया जावे तो क्या क्या कठिनाइयां होंगी और किन किन बातों से मदद मिलेगी; अथवा यदि वहां की सरकार छोटे बच्चों की मौतों को कम करने, लोगों को अच्छा खाना कपड़ा और मकान मुहय्या करने अथवा अधिक शिक्षित करने का प्रयत्न करे तो कौन कौन सी शक्तियां उसे मदद देंगी और कौन कौन सी उसके काम में बाधा डालेंगी। उसमें हमने यह मान लिया है कि इस तरह के कामों की देश को ज़रूरत है।

इस तरह की बातों पर योग का या अन्य पूर्वीय गुप्त रहस्यों का गिलाफ़ नहीं चढ़ाया जा सकता उनका सम्बन्ध

ससार की समस्त जातियों के साथ ठीक वैसा ही है जैसा कि किसी पाश्चात्य नगर की किसी गली के एक मनुष्य के गन्दा रहने या साफ रहने का असर गली के दूसरे लोगों पर पड़ता है।

इसलिये अक्तूबर सन् १६२७ से शुरू म मैं लन्दन गई, मैं इण्डिया आफिस पहुँची, म बिल्कुल अजनबी थी, मैंने अपना उद्देश्य प्रकट किया। जो लोग मुझे वहा मिले उन्हों ने मुझसे पूछा कि, 'आप हमसे क्या मदद चाहती हैं ? मैंने उत्तर दिया, 'म केवल इतना चाहती हू कि 'जो कुछ में कहू उस पर आप विश्वास कर लें। बात यह है कि अगर एक अजनबी विदेशी हिन्दोस्तान को देखता फिरे वहा के प्राचीन कला कौशल को न देखे, न वहा के दार्शनिकों और कवियों से मिले, न बड़े बड़े शेरों का शिकार करे और न कहीं किसी की ओर से नियुक्त होकर आया हो तो यह एक अजीब सी चीज मालूम होगी। खासकर जब कि वह विदेशी प्रश्न करने का बहुत अभ्यस्त हो। इसलिये म जिस बात का आप को विश्वास दिलाना चाहती हू वह ये है कि न तो म दूसरो की बातों में व्यर्थ हस्तक्षेप करनेवाली हू और न किसी की राजनैतिक जासूस हू। म केवल अमरीका की एक साधारण नागरिक हू और अपनी कौम के सामने रखने के लिये सच्ची काम की बातें जानना चाहती हू।

जिन हिन्दोस्तानियों से में उस समय, या उसके बाद मिली उनसे भी मैंने यही बात कही। इन दोनों तरह के सज्जनों ने मुझे बहुत से परिचयपत्र दिये। अङ्गरेजों ने,

हिन्दोस्तानियों ने, सरकारी अफ़सरों और मामूली लोगों ने हिन्दोस्तान भर में बड़े परिश्रम और सौजन्य के साथ मुझे सहायता दी जिसके कारण मैं इस थोड़े से समय में इतनी पक्की खोज कर सकी जो इस तरह की सहायता के बिना इससे पंचगुने समय में भी न कर सकती।

अङ्गरेज़ों ने मुझसे इस बात पर ज़ोर दिया कि आप चाहें कुछ भी करें इतनी अहतियात रखिये कि किसी बात को देखते ही उसे व्यापक उसूल न बना बैठियेगा। यह एक विशाल देश है यहां कोई बात ऐसी नहीं जो सारे देश में एकसां हो। मद्रास और पेशावर, बम्बई और कलकत्ता -इनमें से किसी एक की बात आप दूसरे के विषय में कह दें तो आपका बयान ग़लत हो जावेगा।

मैंने अनेक बार देश के ऊपर से नोचे तक और पूर्व से पश्चिम तक यात्रा की। हर जगह मैंने हिन्दोस्तानी और अङ्गरेज़ छोटे बड़े हेल्थ अफ़सरों से बातचीत की। उनके साथ शहरों और गांवों में उनका कार्य और कार्यप्रणाली देखने के लिये गई। मैंने बहुत जगह के और तरह तरह के अस्पताल देखे बहुत बहुत देर तक डाक्टरों से बातचीत की, और वहां की हालतों और बीमारों को देखा। उत्तर पश्चिमीय सरहद से मद्रास तक लम्बी यात्राएं की। कभी मैं ज़िले के कमिश्नर के साथ उसके सरकारी दौरों में जाती थी, जिनमें अफ़सरों को ख़ासी कठिनाई झेलनी पड़ती है कभी किसानों की ग्रामपञ्चायतों में बैठती थी। मैं हिन्दोस्तानी म्युनिस्पिल बोर्ड की बैठकों में गई और अदालतों में गई जहां पर कि जिन्दगी का चमकता हुआ नज़ारा दिखाई देता है। अङ्गरेज़

अस्पताली दाइयों के साथ में बाजारों में गई। लोगों के सहने। में गई उनके अन्दर के कमरों में गई, छतों पर गई जहा जरूरत हुई वहा गई। मैंने धनाढ्यों के घर भी देखे। मैंने यह भी देखा कि जच्चाओं को कैसे रखा जाता है, बच्चों और बीमारों की कैसी खबरदारी की जाती है, भोजनसामिग्री को किस तरह रखा जाता है, उसकी कितनी एहतियात की जाती है और सफाई की कहा तक परवाह की जाती है। मैंने लोगों के दैनिक जीवन में उनके घर पर, उनकी यात्रा में, विविध जातियो और श्रेणियो की वैयक्तिक आदतो को ध्यान से देखा, मैं कृषि सम्बन्धी सरकारी फार्मों और पशुशालाओं में गई और यह देखा कि पशुओं और फसल का प्रबन्ध किस तरह किया जाता है। मैंने वह गोशालाएं भी देखीं जो धर्मनिष्ठ हिन्दोस्तानियों ने कायम की हैं। मैंने स्कूल देखे, और अध्यापको और विद्यार्थियो से बातचीत की कि आप लोगो के क्या अनुभव हैं और आपका क्या लक्ष्य है। भारतीय तथा प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं में जाकर मुझे बडा लाभ हुआ उनसे मुझे यह खूब पता चला कि जो लोग वहा प्रतिदिन चुन कर आते हैं उनके दिमागों की क्या हालत होती है, मैंने कोशिश करके बडे बडे हिन्दोस्तानियो—राजाओं, राजनीतिज्ञों, शासको धर्मगुरुओं से बातचीत की और उनसे प्रश्न किये। इन लोगो ने खुले दिलसे मुझे जवाब दिये। मैंने स्वय घूमकर हिन्दोस्तानियों की हालत और उनकी मानसिक और शारीरिक स्थिति के विषय में जो कुछ अनुभव किया था उसके साथ पूर्वोक्त सज्जनों की बताई हुई बातों से मुझे बहुत बडी सहायता मिली।

और निस्सन्देह हिन्दोस्तानियों की इस सुन्दर स्पष्ट-वादिता से ही मैं इस अन्तिम निश्चय पर पहुँची कि कदाचित् उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम में कुछ विषयों में ऐसी समानता है जिससे समस्त भारत की बाबत आप आम उसूल अवश्य बना सकते हैं। इससे भी अधिक मैंने यह देख लिया कि हिन्दोस्तान की केवल उन बातों के विषय में हम आम उसूल क़ायम कर सकते हैं जिनमें कि कामकाजी पश्चिम का प्रत्येक रहनेवाला अपना हिताहित समझ सकता है।

अमरीका की किसी गली का एक बाशिन्दा उस गली के दूसरे बाशिन्दे के पूर्वजों के नाम अथवा उसके धर्म उसकी फ़िलासफ़ी या चित्रकारी के विषय में उसके विचारों की ओर बिलकुल ध्यान न देगा। किन्तु यदि वह दूसरा मनुष्य अपने में इस तरह की आदत पैदा करले व इस तरह के विचार करने लगे जिनसे न केवल उसको और उसके कुटुम्ब को बल्कि उसकी गली के अन्य लोगों को भी हानि पहुँचने की सम्भावना हो तो फिर उस गली का प्रत्येक आदमी उसके विषय में पूँछ ताँछ करेगा।

आजकल के विचारशील भारतवासी पूँछते हैं कि, 'इतने वर्षों तक अङ्गरेज़ी राज्य रहने के बाद क्या कारण है कि अभी तक दुनियाँ के लोगों में हम अपने अज्ञान, अपनी दरिद्रता और अपनी भयंकर मृत्यु संख्या के लिये ही विख्यात हैं? आख़िर किस अधिकार से हमें विद्या, जीविका और जीवन के सुखों से वञ्चित रखा जाता है?

सर चिमनलाल शीतलवाद ने सन् १८२५ की बड़ी व्यवस्थापिका सभा की बहस में बड़े दुःख के साथ कहा था—

'इस देश का रोग यही है कि लोग नए कामों में अग्रसर होने खतरे में पड़ने और धैर्य के साथ सख्त मिहनत करने के लिये तैयार नहीं होते। मि० गान्धी ने अपने ३० मार्च सन १९२१ के यङ्ग इण्डिया में पृष्ठ १०२ पर लिखा है कि, "हमारा अपने अङ्गरेज शासकों पर यह दोष लगाना बिलकुल ठीक है कि वे ही हमारी असहायता, हमारी मौलिकता और हममें आगे बढ़ने की शक्ति के अभाव के वास्तविक कारण हैं"।

अन्य सार्वजनिक नेता कहते हैं कि, 'क्या कारण है कि हम लोगों में उत्साह होते हुए भी हम कुछ कर नहीं पाते? हम एक दूसरे के सामने शपथ खाते हैं, एक दूसरे के साथ भ्रातृभाव बनने की प्रतिज्ञाएं करते हैं और स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये अपना जीवन दे देने का सङ्कल्प करते हैं, किन्तु हमारा यह जोश जल्दी ही ठंढा हो जाता है और हम फिर सब भूल जाते हैं इसका क्या कारण है? क्या कारण है कि हम आज जवान और कलही बूढ़े दिखाई पड़ते हैं? हम जल्दी क्यों थक जाते हैं और जवानी ही में ही क्यों मर जाते हैं?" ये लोग स्वयं ही अपने प्रश्नों का इस प्रकार उत्तर दे लेते हैं, "हमारे आध्यात्मिक आदर्शों पर ऐसा आघात पहुँचा है कि, उनसे लहू बह रहा है। ऊपर विदेशियों के घमंड और बर्ताव से हमारी आत्माएं तक निर्बली हो गयी हैं हमारे जीवन के सब सुखों का सत्यानाश कर दिया गया है। कहीं कुछ नहीं हो सकता, जब तक कि हम राजनैतिक मंच पर चढ़कर सच्चाई के साथ अपने अन्यायी शासकों की निन्दा न करें और जब तक कि ये अन्यायी यहां से भाग

न जावें। अङ्गरेज़ यहां का शासन छोड़कर चले जावेंगे तभी हम स्वतन्त्र आदमियों की तरह स्वतन्त्र हवा में रहकर अपनी प्यारी भारत माता की अन्य छोटी आवश्यकताओं की ओर ध्यान दे सकते हैं, इससे पहले कदापि नहीं।"

ठीक इस विषय में ही दुःखित भारतवासियों के साथ हार्दिक सहानुभूति रखते हुए मैं अपना मुख्य उसूल बताने का साहस करती हूं। वह उसूल यह है :—

हिन्दोस्तान की अङ्गरेज़ी हुकूमत का, चाहे वह हुकूमत अच्छी हो या बुरी या उदासीन, भारत की ऊपर लिखी स्थिति से किसी तरह का भी सम्बन्ध नहीं है। आलस्य, असहायता, अग्रसरता और मौलिकता की कमी, धैर्य और अपने उसूलों पर क़ायम रहने की शक्ति की कमी, जोश का होना किन्तु कुछ कर न सकना, जीवन शक्ति ही की निर्बलतायें सब ऐसे दोष हैं कि जो वास्तव में न केवल आजकल के भारतवासियों में ही पाए जाते हैं बल्कि इतिहास के अत्यन्त प्राचीन काल में भी भारतवासियों की यही विशेषताएं थीं। इसके अतिरिक्त यह सब दोष उस समय तक भारतवासियों में बने रहेंगे और बढ़ते रहेंगे जब तक कि भारतवासी इन दोषों के कारणों को न समझेंगे और अपने दोनों हाथ लगा कर स्वयं उन कारणों को उखाड़ फेंकने के लिये तय्यार न होंगे। निस्सन्देह भारतवासियों की आत्मा और उनका शरीर दोनों दासता की बेड़ियों में जकड़े हुए हैं। किन्तु भारतवासी स्वयं अपनी बेड़ियों को संभाले हुए हैं और उन्हें छाती से लगाये हुए हैं और यदि कोई उन बेड़ियों पर हमला करता है तो उग्र होकर उसका विरोध करते हैं। सिवाय

इसके कि स्वयम भारतवासियों के अन्दर एक नया भाव, नई जाग्रति पैदा हो और कोई अन्य शक्ति उन्हें स्वतन्त्र नहीं कर सकती। भूत, वर्तमान अथवा भावी बाहरी शक्तियों के सिर दोष मढकर भारतवासी केवल अपने को धोखा देते हैं और अपनी स्वाधीनता के दिन को और अधिक दूर कर देते हैं।

मिसाल के तौर पर एक बारह वर्ष की बालिका को लीजिये, शरीर की हड्डियों और रक्त की यह हालत कि उसे देखकर करुणा आती है, अशिक्षित, ज्ञानशून्य, जिसे स्वास्थ्य रक्षा के विषय में किसी तरह की कोई बात नहीं सिखाई गई। जितनी छोटी उमर में हो सके उतनी छोटी उमर में उसे माँ बनने के लिये विवश कर दीजिये। उसके निर्बल पुत्र को शुरू से ही हद दरजे की गन्दी बदचलनियां सिखा दीजिये, जिससे उसकी जो थोड़ी सी जीवनशक्ति है वह भी दिन प्रति दिन सूखती चली जावे। उसे खेल अथवा व्यायाम का कोई मौका न दीजिये। उसमें इस तरह की आदतें डाल दीजिये जिनसे तीस वर्ष की उम्र होने तक वह जर्जर, झगड़ालू और बुड्ढा हो जावे—क्या इसके बाद आप यह सवाल कर सकते हैं कि उसके मनुष्यत्व को किस चीज ने नष्ट कर दिया?

एक बहुसंख्यक जनता की मिसाल लीजिये, अधिकतर गांव के रहने वाले अशिक्षित, और अपनी अशिक्षा को पसन्द करने वाले लोगों को, प्रारम्भिक शिक्षा देने का प्रयत्न कीजिये। किन्तु उनका अध्यापक किसी स्त्री को न बनाइये। क्योंकि यदि आप उनमें अध्यापक का कार्य लेंगे तो जिस स्त्री को आप इस प्रकार परदे में बाहर लावेंगे वह बरबाद हो

जायगा। क्या इसके बाद भी आप यह पूछेंगे कि उन लोगों की शिक्षा में इतनी कम उन्नति क्यों होती है?

अब सोचिये कि जिन लोगों के शरीर और मस्तिष्क इन तरीक़ों पर बने हों जिनका हमने ऊपर ज़िक्र किया है, उनमें मृत्यु संख्या के अधिक होने और लोगों के दरिद्र होने में क्या आश्चर्य है?

भारत का शासन चाहे अङ्गरेज़ों के हाथों में हो, चाहे रूसियों के, और चाहे जापानियों के, चाहे देशी राजा आपस में सारे मुल्क को बांट लें और प्राचीन समय का स्वेच्छाचार्य फिरसे जारी कर दें: अथवा चाहे कोई स्वराज शक्ति वर्तमान सरकार से अधिक अधिकार युक्त इस सरकार की जगह ले ले,—हर हालत में वह शक्ति जो इस समय से ज़्यादा तेज़ी के साथ भारतवासियों को स्वतन्त्रता की ओर ले जा सकती है केवल मात्र भारतवासियों की शक्ति है। बशर्ते कि भारतवासी अब बातें करने में, निन्दा करने में, और दूसरों पर दोष लगाने में अपना और अधिक समय नष्ट न करें, बल्कि अपने शरीरों और अपनी आत्माओं के अन्दर जो परिवर्तन उन्हें स्वयं करना है उसे दृढ़ संकल्प के साथ समझें और प्रारम्भ करदें।

मैं समझती हूं कि मामूली पुस्तकों और लेखों में यह विषय इस तरह नहीं दिया गया। भारतवासी इस सम्पूर्ण विषय को मिलाकर नहीं देखते: वे उसके अलग अलग अङ्गों से परिचित हैं, किन्तु उन्हें एक जगह एकत्रित कर देने अथवा उनसे आवश्यक नतीजे निकालने से जो घबराहट होगी उससे वे बचना चाहते हैं। जो यात्री हिन्दोस्तान जाते हैं वे इस विषय को नहीं देख पाते, क्योंकि उन्हें भारत

जीवन की ऊपरी सुन्दरता से नीचे उतर कर वास्तविक जीवित भारतवर्ष तक पहुँचने का मौका ही नहीं मिलता। अङ्गरेज शासक इस विषय से खास तौर पर बचते हैं, और दूसरों का उसमें पड़ना भी पसन्द नहीं करते। सन १६१६ के सुधारों के समय से भारत के शासकों को, अपने दैनिक काम में बजाय हुकुम देने के, समझा बुझा कर ज्यादा काम लेना पड़ता है। इसलिये यदि उन्हें सफलता की कोई आशा है तो वह केवल नम्रता से लोगों के दोषों की तरफ उनका ध्यान दिलाकर ही हो सकती है। यही उनको ऊपर से आज्ञा मिलती है। दूसरे देशों की जो संस्थाएं हिन्दोस्तानियों के नैतिक कल्याण के लिये काम कर रही हैं, मालूम होता है कि वे आम तौर पर इस नीति का पालन करती हैं कि भारत-वासियों को अपने गुणों का गर्व करने और दूसरों की त्रुटियां दिखाने में ही लगाए रखें, बजाय इसके कि भारत-वासियों से यह कहें कि तुम अपनी त्रुटियों को देख कर उन्हें दूर करो। इस प्रकार हालत यह है कि जब कि कुछ लोगों ने चुप्पी साध रखी है और कुछ ने खुशामद करने की ठान रखी है, रोगी दिन प्रतिदिन अधिक कमजोर होता जाता है, उसका शरीर और मस्तिष्क दोनों मृत्यु की ओर जा रहे हैं। एक ऐसे रोग से जिसका इलाज वह केवल स्वयम ही कर सकता है, और कोई कहीं उसका इतना सच्चा मित्र नहीं है कि जो यह शिक्षा उसके सामने रखे और उसे साफ साफ दिखा दे कि तू किस रोग से मर रहा है।

जब मैं ने यह काम अपने ऊपर लिया तो मैं यह खूब जानती थी कि लोग मुझसे बेहद नाराज होंगे मुझपर कीचड़

उछालने का अन्याय करेंगे, केवल भद्दी चीज़ों की ओर देखने का, सहानुभूति न रखने का, शायद झूठ बोलने का, गन्दे विचारों का दोष लगाएंगे। किन्तु जिस मनुष्य ने सब हालतों को और उनके परिणामों को स्वयम देखा है, और जो उन्हें दूसरों के सामने रख सकता है, उसे मैं समझती हूं यह अधिकार नहीं है कि वह इस डर से कि नतीजा क्या होगा या लोग मुझे क्या कहेंगे अपने कर्तव्य पालन से पीछे हट जावे।

इसलिये इस पुस्तक के शुरू में ही मैंने संक्षेप रूप से बयान कर दिया है कि मेरी दृष्टि में मनुष्य जाति के आठवें हिस्से के जीवन और उनके भविष्य के लिये सब से अधिक आवश्यक चीज़ क्या है? आगे के पृष्ठों में मैं इस चित्र को अधिक बढ़ाने का प्रयत्न करूंगी और दूसरे विषयों का तथा भारतीय जीवन के दूसरे पहलुओं का ज़िक्र करूंगी। किन्तु किसी भी विषय में अथवा किसी भी पहलू से भारतीय जीवन अपने आदि दोषों अर्थात् अपने प्रारम्भिक दोषों के प्रभाव से नहीं बच सकता।

—:o:—

दूसरा परिच्छेद

दास्य भाव

गान्धी ने १६ नवम्बर सन १९२० के 'यङ्ग इण्डिया में पृष्ठ ३६६ पर लिखा है–हमें स्वराज प्राप्ति के समय तक के लिये सब काम मुलतवी नहीं कर देने चाहियें। इस से स्वराज प्राप्ति का दिन और भी टलता जावेगा। केवल वीर और पवित्र लोग ही स्वराज प्राप्त कर सकते हैं।'

किन्तु आज कल का गान्धी प्रभाव बहुत घट गया है। उसकी इस तरह की बातें कोई नहीं सुनता। प्रत्येक राजनैतिक प्लेटफार्म से लोग जोश के साथ ये दावे करते हैं कि हम मरते मरते तक भारत माता की सेवा करेंगे। किन्तु भारत की औलाद अपने कहने के अनुसार कोई कार्य नहीं करती। निस्सन्देह भारत दरिद्र है, बीमार है, ज्ञानशून्य है और असहाय है। किन्तु भारत के योग्य से योग्य पुत्र बजाय इसके कि अपने देश को बचाने में अपनी ताकत खर्च करें, आपस में लडने में अपना समय नष्ट करते हैं या अपनी ही निरर्थकता पर सुस्त पडे रोते रहते हैं।

इस बीच अङ्गरेज सरकार, हिन्दोस्तान के शासन में, मालूम होता है लगातार उन्नति करती जा रही है। और यदि इस उन्नति में कोई खास बाधा न डाली गई तो इस बात का अन्दाजा लगाया जा सकता है कि हर दस वर्षों में इतनी उन्नति और हो जायगी। इतने

स्कूल बने, इतने अस्पताल बने, इतने फरलाङ्ग नई सड़क तय्यार हुई, इतने पुल बने, इतने सौ मील आबपाशी के लिये नहरें खुदीं, इतनी नई मंडियां खुलीं, इतने हज़ार एकड़ बञ्जर ज़मीन खेतों के काम में आने लगी, इतने कुयें गलाए गये, और देश के भोजन और व्यापार सामग्री में इतना चावल, इतना गेहूं, इतनी ज्वार और इतनी कपास बढ़ी।

देश की महान आवश्यकता को देखते हुए, अथवा इसका अमरीका और कैनेडा में इस प्रकार की उन्नति से तुलना करते हुए उन्नति की यह रफ्तार सुस्त मालूम होती है। इस रफ्तार को अधिक तेज़ करने के लिये केवल एक चीज़ की ज़रूरत है और वह यह है कि पढ़े लिखे भारतवासी अपने दिल से, मेहनत से और समझ से इस उन्नति के काम में लग जावें। किन्तु आज हिन्दोस्तान के नेताओं में अपनी जनता की हालत से सहानुभूति रखने के बहुत कम चिन्ह दिखाई देते हैं। साथ ही ये लोग उस एक मात्र शक्ति को कोसते हैं जो चाहे उन्हें कितनी भी ना पसन्द हो किन्तु दुःखित, बूढ़ी भारत माता के सुख के लिये जो कुछ भी हो रहा है वही अकेली कर रही है।

तमाम हिन्दोस्तान की आबादी मोटे तौर पर ३१ करोड़ ६० लाख गिनी जाती है। देशी रियासतों को छोड़कर जो देशी नरेशों के आधीन हैं; ब्रिटिश इण्डिया की आबादी २४ करोड़ ७० लाख है। इन लोगों के अन्दर दो लाख से कम यूरोपियन रहते हैं। इस दो लाख में वाइसराय से ले कर छोटे से छोटे बच्चे तक प्रत्येक यूरोपियन मर्द औरत और बालक सब शामिल हैं। अङ्गरेज़ सैनिक अफसर और सिपाही सब मिलाकर ६० हज़ार से कम हैं। दूसरे महकमों के अङ्गरेज़ जिस में सिविल सर्विस

डाकूर इंजीनियर,जंगल, टकसाल, कचहरी, शिक्षा, कृषि, पशु-चिकित्सा इत्यादि सब महकमों के अङ्गरेज शामिल हैं कुल ३,४३२ हैं। हिन्दोस्तान की पुलिस में लगभग ४,००० अङ्गरेज हैं। इस अन्तिम संख्या में मातहत और प्रान्तीय नौकर शामिल नहीं हैं, किन्तु इन नौकरियों में यूरोपियन इतने कम हैं कि गिनना व्यर्थ है।

इसलिए आजकल के हिन्दोस्तान में अङ्गरेजों का कुल बल इस प्रकार है

फौज	६०,०००
सिविल महकमें	३,४३२
पुलीस	४०००
कुल	६७,४३२

यह कुल स्थानीय बल है उन लोगों का जिनके विषय में भारतवासी कहते हैं कि इन्हीं के अन्यायों के कारण ३१ करोड़ ५० लाख मनुष्यों में दास्य भाव पैदा हो गया है।

किन्तु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि अङ्गरेजों के आने से पहले हिन्दोस्तान में सदा या तो अराजकता थी, छोटी छोटी लड़ाइयाँ और लूटमारें होती रहती थीं, हरेक राजा दूसरे राजा को लूटता था और सब मिलकर जनता को लूटते थे, अथवा विदेशी आकर निर्बल पा उस पर शासन करने लगते थे। यदि कभी कभी कोई देशी राजा सिर उठाता था और अपना राज्य दूसरों से बढ़ा लेता था तो उसके कुल में शासन थोड़े ही दिनों रहता था और सारा भारत किसी के अधीन कभी न हुआ था। बार बार विजेता लोग मध्य एशिया से निकल कर पहाड़ी दर्रों से होकर देश पर टूटते थे, और प्राचीन हिन्दू जाति के

लोग नरमी से हर आक्रमण को सह लेते थे, कांप जाते थे और फिर चुप पड़े रहते थे।

इन बातों के लिये अनेक कारण बनाए जाते हैं। मसलन् यह कि हिन्दू धर्म में जीवित रहने की प्रेरणा नहीं रह जाती। उसमें सब पदार्थ 'माया' बताए गए हैं; असंख्य योनियों का ज़िक्र है—संसार को असार बतलाया है और निस्संदेह इनके पतन का यह भी एक कारण अवश्य है। किन्तु हम 'ठोस-मस्तिष्क वाले अमरीका निवासी' शुरू में इन सब चीज़ों को अलग रख देना चाहते हैं पहले हम उन बातों पर विचार करना चाहते हैं जिनमें बहस की बहुत कम गुंजाइश होगी और जिनमें हमें किसी अर्थ करने वाले या किसी भाष्य की आवश्यकता न पड़ेगी।

हिन्दोस्तानियों के भौतिक और आध्यात्मिक तमाम दुःखों का पहाड़—जैसे दरिद्रता, रोग, अज्ञानता, राजनैतिक अनभिज्ञता, उदासीनता, अक्षमता, और इनके साथ ही साथ उसके चित्तों का यह अप्रकट विश्वास कि हम दूसरों से छोटे हैं, जिस विश्वास को कि वे सदा अपने मन में रखते हैं और उसका ऐलान करते रहते हैं, इस प्रकार कि जहाँ कहीं उन्हें अपने सामाजिक अपमान की ज़रा सी भी कल्पना होती है वे तुरन्त उस पर चौंक पड़ते हैं और उसका ऐलान करने लगते हैं—इन तमाम दुःखों की बुनियाद में एक शारीरिक कारण है। कारण केवल वह ढङ्ग है जिस ढङ्ग से हिन्दुस्तानी पैदा होते हैं और जिस ढङ्ग से वे वैवाहिक जीवन व्यतीत करते हैं।

आम तौर पर हिन्दोस्तानी लडकियाँ रजस्वला होने के नो महीने बाद मा बनने की आशा करने लगती हैं—अर्थात् आठ वर्ष और चौदह वर्ष की आयु के बीच में माता बनने के लिये आठ वर्ष की आयु सब से कम है तथापि कुछ श्रेणी के लोगों में आठ वर्ष को स्त्री भी मातायें मिलती हैं और चौदह वर्ष की आयु तो औसत से बहुत ऊपर है। हिन्दोस्तानी मातायें अपनी आयु के कमी के कारण, अपने रहन सहन के कारण, और इसलिये कि उनसे पहले असंख्य नसलें इसी प्रकार पाली गई हैं, शरीर की बहुत ही कमजोर होती हैं। वे बिलकुल अशिक्षित होती हैं। उनके ज्ञान की सीमा केवल यहाँ तक परिमित होती है कि घर के देवताओं की पूजा किस तरह की जाय, देवताओं और भूतों के कोप को टालने के लिये उन्हें किस प्रकार प्रसन्न किया जावे, और अपने पति की किस किस तरह सेवा की जावे। पति ही उस के धार्मिक विचारों के अनुसार उसका देवता होता है।

अब सुनिये पति का हाल। सम्भव है कि पति उस समय जब कि उसने अपनी स्त्री के साथ पहली बार सहवास किया उसीकी सी उमर का बालक रहा हो अथवा पचास बरस का बुड्ढा। हर सूरत में चाहे पति अपक्व हो या गत वीर्य, उसमें स्वस्थ बच्चे पैदा करने की बहुत कम शक्ति रह जाती है।

नन्हीं सी लडकी गर्भवती होती है जो उसके लिये नाशक है, अन्त में उसके बच्चा होता है जिसकी विशेष यातनाएँ जब तक विस्तार के साथ बयान न की जावे अनुमान नहीं की जा सकतीं।

बच्चा यदि अपने जन्म की यातनाओं से बच जावे—अधिक से अधिक एक निर्बल बच्चा जिसमें न काफ़ी हड्डियां हैं, न पूरी जान, जिसमें बहुधा मैथुन सम्बन्धी गन्दी बीमारियों का ज़हर भी मौजूद होता है और जो सदा किसी भी उड़ते हुए रोग में फंसने के लिये तय्यार रहता है—तो सिवाय उसकी-बाल माता के और कोई उसकी देख रेख करने वाला नहीं होता। माता स्वास्थ्य के नियमों से अपरिचित होती है, अत्यन्त प्राचीन काल के अन्ध विश्वासें के अनुसार रहती है. सिवाय घर की बूढ़ी स्त्रियों के और कोई उसे इस कार्य में मदद देने वाला नहीं होता। इन बूढ़ी औरतों का ज्ञान बावजूद उनकी उम्र के उस बाल-माता के ज्ञान से कुछ भी अधिक नहीं होता। भारतवासियों की सामाजिक प्रणाली में स्त्रियों का चाहे वे नीच जाति की हों अथवा उच्च जाति की, एक मात्र जीवन उद्देश बच्चे पैदा करना ओर बच्चे पालना है। यही उसकी बात चीत का एक मात्र विषय होता है। इसलिये जा बच्चा घर के अन्दर पलता है वह जबसे तुतलाना वा हिलना जुलना शुरू करता है तबसे मैथुन सम्बन्धी बातों को ही सीखता है।

हिन्दुओं के सबसे बड़े देवताओं में एक 'शिव' है। शिव की मूर्ति सड़कों के किनारे, मन्दिरों में, घरों के अन्दर, जन्त्रों में सब जगह होती है। यह मूर्ति सब जगह उपस्थेन्द्रिय के रूप में होती है। इसी रूप में भक्त लोग प्रति दिन आकर उस पर चढ़ावे चढ़ाते है। विष्णु के उपासक ख़ासकर दक्षिण में बहुत हैं। ये लोग बचपन से अपने माथों पर जो तिलक लगाते हैं वह उत्पत्ति के मौलिक सिद्धान्त को चित्रित करता है। और

यद्यपि यह बात स्वीकार की जाती है कि इस तरह के चिन्हों की शुरू के ईजाद करने वाला का लक्ष्य उनके द्वारा आध्यात्मिक उन्नति करना था 'तथापि अमल में ये क्रियाएँ और देवी देवताओं के सम्भोग के अत्यन्त विस्तृत वर्णन जो उन भजनों के अन्दर मौजूद हैं जो घरों में गाए जाते हैं, इन सब चीजों से इस तरह के चिन्हों का अक्षरश: अर्थ प्रकट हो जाता है। उनसे सम्भोग क्रिया सूझने लगती है और साधारण लोगों के विचारों में उसके साथ एक धार्मिकता जुटी रहती है।

वाममार्ग के आध्यात्मिक अर्थ का एक अर्वाचीन आचार्य* लिखता है, 'मूर्ख लोग न कभी समझते हैं और न कभी समझेंगे क्योंकि वे इन बातों के केवल शारीरिक पहलू की ओर देखते हैं।

किन्तु बावजूद इस सन्त की इस ताड़ना के हिन्दोस्तान के अन्दर अपनी आंख से सब चीजें देखकर मनुष्य को इस नतीजे पर पहुँचना पड़ता है कि जो जो मजहब केवल बुद्धिमानों के लिये है वह अपने अधिकांश अनुयाइयों का मार्ग भ्रष्ट कर देता है।

और यदि उपस्थेन्द्रिय के चिन्ह न भी होते तो भी उनकी जगह मन्दिरों की दीवारों पर, मन्दिरों के रथों पर, महलों के दरवाजों पर और गलियों की दीवारों पर मूर्तियाँ खुदी हुई हैं और चित्र बने हुए हैं, जिन में अत्यन्त साफ साफ मैथुन के तमाम आसन जो मनुष्य के दिमाग में आ सकते हैं, और पुरुष स्त्री के हर तरह के सम्पर्क, चित्रित हैं। इनके अतिरिक्त अनन्त काल से इस तरह के भजन चले आते हैं जो नगर की

* देखो—स्वामी विवेकानन्द का भक्ति योग।

सब स्त्रियाँ गाती हैं। सारांश यह कि बच्चे की आँखों के सामने समस्त मानव संसार के इस तरह के कार्य और विचार मौजूद रहते हैं जो बच्चे के मस्तिष्क में उसी तरह के भाव और विचार पैदा करते हैं।

१२ सितम्बर सन १९२३ को जेनेवा में अश्लील पुस्तकों आदिक के बांटे जाने और विकने को रोकने के लिये एक अन्तरराष्ट्रीय कन्वेंशन अर्थात् समझौता हुआ था। इस समझौते के अनुसार कार्य करने के लिये भारतीय व्यवस्थापिका सभा ने अपने ताज़ीरात हिन्द ज़ाब्ते फ़ौजदारी में उचित संशोधन किये। उस संशोधन में यह लिखा है कि 'जो कोई किसी अश्लील पदार्थ, पुस्तक, चित्र वा मूर्ति को बेचेगा, किराए पर देगा, बांटेगा, सार्वजनिक स्थान पर दिखलावेगा, लेजायगा अथवा उससे धन कमायेगा, उसे अमुक अमुक दण्ड दिया जावेगा। किन्तु यह स्पष्ट कानून यद्यपि मुसलमानों को पसन्द था थापि यदि यह क़ानून पास हो जाता तो हिन्दुओं के धार्मिक पदार्थों प्राचीन कथाओं, रिवाजों और पुरोहितों के विशेष अधिकारों में जो कि बहु संख्यक हिन्दुओं को पसन्द हैं, इस नियम से बेहद गड़ बड़ मच जाती। व्यवस्थापिका सभा में अधिकांश सदस्य हिन्दू हैं। इसलिये भारतीय व्यवस्थापिका सभा ने एक अपवादात्मक वाक्य इस संशोधन के साथ जोड़दिया। वह वाक्य यह है:—

'यह धारा किसी ऐसी पुस्तक, पत्रिका, लेख, चित्र या मूर्ति पर लागू न होगी जो कि वास्तव में धार्मिक कामों के लिये हो या धार्मिक काम में लायी जाती हो; और न किसी ऐसे चित्र पर लागू होगी जो कि किसी मन्दिर के

ऊपर वा मन्दिर के अन्दर, या मूर्तियों को लेजाने वाली किसी गाडी के ऊपर वा ऐसी गाडी के ऊपर जो किसी धार्मिक क्रिया के लिये हो या काम में आती हो, खुदा हुआ हो, गढाहुआ हो बना हुआ हो या और किसी भी तरह से चित्रित हो।'

देश के बहुत से भागों में, उत्तर में भी और दक्षिण में भी छोटा लडका जिसका चित्र इस तरह तय्यार किया जाता है, यदि रूपवान होतो बहुत सम्भव है कि बडी उमर के आदमियों की अप्राकृतिक काम तृप्ति के लिये उस लडके का उपयोग किया जावे, अथवा किसी मन्दिर के साथ बतौर एक वेश्या के उसे बाजाब्ता जोड दिया जावे। माता अथवा पिता दोनों में से किसी को भी आम तौर पर उस में कोई बुराई दिखाई नहीं देती, बल्कि उन्हें खुशी होती है कि उनका पुत्र दूसरों की दृष्टि में आकर्षक साबित हुआ।

यह बात भी ऐसी नहीं जो केवल छोटी श्रेणी के लोगों अथवा खास तौर पर जाहिल लोगों में पाई जाती हो। वास्तव में हिन्दोस्तानियों के भलाई और बुराई के विचारों और हमारे भलाई और बुराई के विचारों में इतना बडा अन्तर है कि हिन्दोस्तान में ऊंच और नीच दोनों जातियों की माताएं अपने बच्चों के साथ—लडकों के साथ इसलिये कि 'उसे अच्छी तरह नींद आजावे' और लडके के साथ इसलिये कि 'उस में मर्दानगी पैदा हो'—यह बुराई (हस्त मैथुन) करती हैं कि कम से कम लडका अपने शेष जीवन भर शायद प्रतिदिन करता रहेगा।

इस अन्तिम बात पर ध्यान देने की जरूरत है। दूर दूर की अलग श्रेणियों के लोगों में बडे से बडे प्रमाणिक डाक्टर

नसदीक करते हैं कि लगभग प्रत्येक ऐसे बच्चे के शरीर में, जिसका किसी कारण से भी उन्होंने इम्तिहान लिया, इस गन्दी आदत के चिन्ह मौजूद होते हैं। बचपन में शरीर पर इस आदत का जो कुछ असर होता है उसके विषय में चाहे किसी की कुछ भी राय हो, शुरू के दिनों में ख़यालात के बनने पर इसका जो असर होता है उसकी ओर से आंख बन्द नहीं की जा सकती। और जब मनुष्य बड़े होकर भी बराबर इस गन्दी आदत में मुबतिला रहे तो किसी को इन्कार नहीं हो सकता कि शरीर और नसें दोनों इससे बर-बाद न हो जायेंगी।

लोग यह बात साबित करने के लिये कि छोटी आयु की शादी की शास्त्रों में इजाज़त नहीं है प्राचीन हिन्दू धार्मिक ग्रन्थों के हवाले देते हैं। इस पर बहसें होती हैं। हवाले के जवाब में हवाले दिये जाते हैं। पण्डितों में ज़बर-दस्त मतभेद है किन्तु ये लोग अपने शास्त्रार्थों से जो (संशय की) धूल उड़ाते हैं उससे प्रतिदिन के रिवाज की सच्चाई नहीं छिप सकती। हिन्दू प्रथा के अनुसार यह आवश्यक है कि जितनी जल्दी हो सके हर एक मनुष्य को अपना एक पुत्र हो जावे—बाप के मरने के समय और उसके बाद बेटा ही उसका संस्कार करता है और चिता के ऊपर बाप की कपाल फोड़ता है ताकि रूह उस रास्ते निकल जावे। इस प्रथा के कारण और स्वयम अपनी प्रवृत्ति के कारण एक औसत लड़का जिस समय विषय भोग प्रारम्भ करता है उस समय तक वह मुश्किल से इस कार्य के योग्य हो पाता है। यह बात कि वह अपनी कामतृप्ति के लिये केवल अपनी पत्नी या

पत्नियों तक ही परिमित रहे, न आम रिवाज में है और न सार्वजनिक राय इसे आवश्यक समझती है।

मिस्टर गान्धी ने ७ जनवरी सन् १९२६ के 'यंग इण्डिया में लिखा है कि वह १३ वर्ष की आयु में अपनी पत्नी के साथ इस प्रकार रहा करते थे। वह लिखते हैं कि यदि मैं, अपने भाई की आदत के विरुद्ध, रोज कुछ समय अपनी पत्नी से अलग होकर स्कूल जाने में खर्च न करता तो मैं 'या तो रोग और अकाल मृत्यु का शिकार हो गया होता, या उसके बाद मेरी जिन्दगी मेरे लिये बोझ हो गई होती'।

पाश्चात्य प्रभावों से विवश होकर हाल के दिनों में 'बाल विवाह' पर बहुत बहसें हुई हैं। और हिन्दोस्तानियों के विचारों में इस सम्बन्ध में एक प्रकार की बेचैनी का भाव बढ़ता हुआ दिखाई देता है। किन्तु अभी तक उसके अनुसार कार्य कुछ नहीं होता और बहुसंख्यक सनातन धर्मी पूरे बल से प्राचीन प्रथा के पक्ष में लड़ते हैं।

सार्वजनिक हिन्दू धर्मशास्त्रों में किसी प्रकार के भी आत्म-संयम का प्रायः कुछ भी आदेश नहीं। कामवासना को रोकने के विषय में तो कहीं कुछ है ही नहीं। एक प्रसिद्ध हिन्दू बैरिस्टर ने जो अपने प्रान्त के सब से अच्छे आदमियों में से हैं कहा था कि, 'मेरे पिता ने बड़ी बुद्धिमत्ता से लड़कपन ही में मुझे यह सिखा दिया था कि इस सम्बन्ध के रोगों से कैसे बचा जावे।'

मैंने पूछा, 'क्या यह अधिक अच्छा न होता कि वे आपको आत्मसंयम सिखाते ?'

'आह—किन्तु हम जानते हैं कि यह असम्भव है।'

एक प्रसिद्ध हिन्दू सन्त ने जो स्वयम हज़ारों के धर्मगुरु हैं मुझे समझाया कि,—'इन मामलों में किसी पहलू से भी पाप पुण्य का कोई सवाल नहीं उठ सकता. मैं ज्योंही यह काम कर चुकता हूं उसे भूल जाता हूं। मैं यह केवल इस लिये करता हूं कि मेरी स्त्री जिसे मुझसे कम ज्ञान है दुःखी न हो। इसे करने के या न करने के कुछ अर्थ नहीं। ये तमाम बातें केवल इस माया की दुनिया की हैं।'

जो ढांचा मैंने ऊपर खींचा है उसे पढ़ने के बाद इस बात को सुनकर कोई आश्चर्य न होगा कि देश के एक सिरे से दूसरे सिरे तक एक औसत दर्जे का हिन्दू पुरुष बशर्ते कि उसे अपनी काम तृप्ति के लिये सामान मिल सकता हो ३० वर्ष की आयु में बूढ़ा हो जाता है; और इस प्रकार से हर दस पुरुषों पीछे सात या आठ पच्चीस और तीस वर्ष की आयु के बीच नपुंसक हो जाते हैं। ये संख्याएं ऊट पटांग नहीं ले ली गई हैं और सिवाय उस एक शर्त के जो ऊपर दी गई है और हर सूरत में ठीक हैं। किसान लोग, इसलिये चूंकि वे निर्धन होते हैं और हर साल कुछ महीनों तक स्वास्थ्य वर्धक शारीरिक परिश्रम करते रहते हैं, धनवानों अथवा शहर के रहने वालों की अपेक्षा अधिक बचे रहते हैं। यदि हम हिन्दोस्तानी अखबारों के विज्ञापनों पर एक नज़र डालें तो उससे इस मामले पर ख़ासी रोशनी पड़ती है। जादू की दवाइयां और यन्त्र तन्त्र, कोई 'केवल राजाओं और अमीरों के लिये' कोई साधारण छोटे आदमियों के लिये, इन शब्दों में होते हैं 'तुम्हारे गिरते हुए शरीर को संभाले रखने के लिये ३२ स्तम्भन वटी, केवल एक रुपए में," ये विज्ञापन पत्रों में भरे रहते हैं और हमारी बातों का समर्थन करते हैं।

केवल पञ्जाब के अन्दर, २६ दिसम्बर सन् १६२२ से ४ दिसम्बर सन् १६२५ तक गवरमेन्ट ने अलग अलग ग्यारह बार देशी भाषाओं के अखबारों पर इसलिये मुकदमे चलाए क्योंकि उन्होंने हद दर्जे के गन्दे विज्ञापन छापे थे। इन में से ७ अखबार हिन्दू थे, तीन मुसलमान और १ सिक्ख २५) रु० से लेकर २००) रु० तक इन पर जुर्माने हुए। एक अखबार वाले को जुर्माने के अतिरिक्त ६० दिन की सख्त कैद भी हुई। और यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि इस तरह के मुकदमे केवल उस सूरत में चलाए जाते हैं जब कि विज्ञापनों के अन्दर शब्दों में गन्दी क्रियाएं अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में बयान की जाती हैं। अन्यथा कभी नहीं।

ग्यारहवें मुकदमे के बाद, सरकार ने सब अखबारों के पास एक सूचना भेजी, जिसमें सम्पादकों को अन्तिम मुकदमे और उस पर भारी जुर्माने की सूचना दी। और उन्हें सलाह दी कि विज्ञापनों का छापने से पहले उन्हें देख लिया करें। इस पर लाहौर के एक हिन्दू अखबार "ब्राह्मण" समाचार ने अपने १६ फरवरी सन १६२६ के अङ्क में सम्पादकीय टिप्पणी में यह चमकती हुई बात लिखी

'सरकार चाहती है कि इस तरह के विज्ञापन न छापे जाय और सम्पादक छापने से पहले उन्हें देख लिया करे। अच्छा होता यदि सरकारी महकमा अपनी रिपोर्ट के साथ साथ उन गन्दे विज्ञापनों को भी छाप देता ताकि उन विज्ञापन के विषय और लिखने के ढंग की सब को इत्तला मिल जाती।'

यह सच है कि मिस्टर गान्धी ने अपने पत्र में इस चीज को नापसन्द किया है। २ सितम्बर सन् १६२६ के 'यंग

इण्डिया' में पृष्ठ ३०६ पर वह लिखते हैं,—'मुमकिन है कि दवाइयों और यन्त्रों से शरीर काम लायक बना रहे, किन्तु दिमाग़ को ये चीज़ें खोखला कर डालती हैं।'

किन्तु आम लोगों के इस विषय में जो भाव हैं उनका कहीं अधिक सच्चा चित्र यह है। हाल में एक उच्च पदवी के हिन्दू ने अपनी लड़की की शादी करने से पहले अपने भावी दामाद से यह शर्त की कि तुम एक अङ्गरेज़ डाक्टर का सरटीफ़ीकट इस विषय का लाकर दिखाओ कि तुम्हें कोई गन्दी बीमारी तो नहीं है। बात सीधी थी। बांझ पत्नी के माता पिता को बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है। और जब कभी किसी दम्पति के औलाद नहीं होती तो कसूर आमतौर पर स्त्री का बता दिया जाता है, किन्तु वास्तव में प्रायः दोष पुरुष का होता है। इस सूरत में यह लड़की का बाप केवल एक अमली एहतियात कर रहा था। वह यह नहीं चाहता था कि दूसरे के दोष के लिये उसकी लड़की को या तो दूसरी पत्नी आकर निकाल दे और उसे अपने माता पिता के सिर पड़ना पड़े। और यदि किसी को इस तरह की कोई बीमारी हो तो इसे कोई भी बुरी बात नहीं समझता। सार्वजनिक राय ज़रा भी इसके विरुद्ध नहीं है।

किन्तु यदि बहुत दिनों तक किसी स्त्री के औलाद न हो—किसी भी स्त्री के—तो हिन्दू पति के पास एक और अन्तिम इलाज है। वह अपनी पत्नी को चढ़ावे का सामान देकर किसी मन्दिर की यात्रा के लिये भेज देता है। और कहा जाता है कि कुछ जातियों के लोग समय बचाने के लिये सदा विवाह की अगली ही रात को अपनी पत्नियों को इस प्रकार मन्दिरों में भेज देते हैं। मन्दिर में दिन को वह स्त्री देवता

से पुत्र की प्रार्थना करती है, उस रात को वह मन्दिर ही के अन्दर सोती है। सुबह होते ही वह पुरोहित से अपनी बीती सुनाती है कि रात को अँधेरे में मुझे यह तजरबा हुआ।

पुरोहित उत्तर देता है' 'ऐ भाग्यवती! स्तुति कर देवता स्वयम तेरे पास आए थे!'

स्त्री अपने घर लौट जाती है।

यदि बच्चा पैदा हो और जीवित रहे तो एक साल बाद वह कुछ और उपहार लेकर और अपने बच्चे के सिर के कुछ बाल लेकर फिर उस मन्दिर को जाती है।*

आज कल जो लोग मन्दिरों को देखने जाते हैं उन्हें कभी कभी एक वृक्ष मिलता है जिसकी शाखों में सैकड़ों छोटी छोटी पोटलियां गन्दे चिथड़ों में बंधी हुई लटकी रहती हैं। वृक्ष की जड़के पास एक मोटी सी चटाई पटी होती है जो मनुष्य के सर के छोटे काले बालों की बनी होती है। यही देवता का कल्प वृक्ष (?) होता है। इससे देवता का महात्म्य मालूम होता है। मंदिर की ख्याति को बनाए रखने के लिये इस काम के लिये जो पुरोहित होते हैं वे विशेष कर ध्यान पूर्वक नए बलिष्ट भाइयों में से चुने जाते हैं।

जाहिरा हरेक आदमी यह सब बातें समझता है। फिर भी हद दर्जे की धार्मिकता का भाव सचमुच उस स्त्री के मन में बना रहता है और घर के लोग इससे सन्तुष्ट रहते हैं।

इस विषय के बारे में अब तक जो कुछ कहा जा चुका है वह शायद इस बात को दिखलाने के लिये बिल्कुल काफी है कि हिन्दू लोग अपने 'दास्य भाव' का रोना इस बुरी तरह क्यों रोते हैं।

---

* हिन्दू मनर्स, कस्टम्स एण्ड सेरीमनीज पृष्ठ ५९३-४

इसीसे शायद यह भी समझ में आसकता है कि हिन्दुओं में एक भी सच्चा नेता जिसका देर तक असर रहे क्यों नहीं पैदा होता, और क्या कारण है कि जो लोग समय समय पर नेता बनने की आकांक्षा करते हैं वे केवल थोड़े से दिनों तक ही अपने अनुयाइयों के चलायमान मस्तिष्कों पर क़ाबू रख सकते हैं।

भारतवासी कुछ दर्जे तक इस हालत को देखते हैं; किन्तु वे उसकी जड़ तक बहुत कम पहुँचते हैं। न वे उसके पूरे अर्थ को समझते हैं और न उसके परिणामों को उसके साथ जोड़ सकते हैं। हिन्दोस्तानी निराशा के साथ बारबार पूछते हैं;—हमारे अच्छे से अच्छे आदमी—जिन्हें हमारा नेता होना चाहिये—इतनी छोटी उमरों में क्यों मर जाते हैं?' उनका मतलब यह है कि इस प्रश्न का केवल एक ही उत्तर हो सकता है, वह यह कि 'यह सब किस्मत का खेल है जिसकी उक्तियां समझ में नहीं आ सकती।' हिन्दू डाक्टर हरी प्रसाद ५ नवम्बर सन् १९२५ के 'यंग इण्डिया' में पृष्ठ ३७५ पर लिखते हैं, 'भारत वासियों की औसत आयु २३ साल है वह ग्रामों और शहरों में सफ़ाई न रहने को इसके लिये ज़िम्मेवार बताते हैं। भारतवासियों के विचारों की दूसरी नमूने की एक मिसाल मणिलाल सी० परेख की है। वह ८ अप्रैल सन् १९२६ के 'सर्वेण्ट आफ़ इण्डिया, पत्र में पृष्ठ १२८ पर लिखते हैं कि तपेदिक भयंकर रूप से देश में बढ़ता जाता है—वास्तव में इस रोग को भारत वासियों के निर्बल शरीरों और उनकी गन्दी आदतों में बढ़ने की ख़ूब जगह मिलती है। डाक्टर परेख लिखते हैं, 'इस रोग के इस भयङ्कर रूप में बढ़ने के कारणों पर हमें इस समय विचार नहीं करना

चाहिये × × × इस लेख का लेखक चाहता है कि जितनी जल्दी हो सके भारत को स्वराज मिल जावे ताकि देश के रहने वाले इस अत्यन्त विशाल प्रश्न को हल कर सकें' × ×

इस प्रकार ये लोग अभी तक दूसरों पर दोष मढते रहते हैं और सच्चाई का सामना करने म वचते हैं।

एक अत्यन्त विख्यात भारतीय डाक्टर ने जो बम्बई के ब्राह्मण हैं मेरे सामने सच्चाई को इन शब्दा में स्वीकार किया,—

' मेरे देशवासी कभी इस बात को नहीं समझते कि उनकी भौतिक और मानसिक दरिद्रता का सम्बन्ध शरीर के दुरुपयोग से है। किन्तु इस से इन्कार नहीं किया जा सकता कि हमारी कोम के शरीरों का स्पष्ट और लगातार गिरते जाना, हम म स्वभाव से ही एकाग्रता की शक्ति की कमी, और अग्रसरता तथा दीर्घपरिश्रम की शक्ति का अभाव, इन सब चीजा का एक कारण यह है कि हम अपना सारा मनुष्यत्व केवल विषय भोग म खर्च कर डालते हैं।'

फिर हम उसी नतीजे पर पहुंचने के लिये विवश हैं जो मैंने शुरू में बयान किया था।'

इस तरह के आदमियों को लीजिये, जो ससार में प्रवेश करने से पहले जिनके शरीरों का दिवाला निकल चुका है और जो एक ऐसी नसल से है जिस नसल की नसल का दिवाला निकल चुका है, बचपन से उन्हें इस तरह के विचारों और इस तरह की आदतों म पालिये जो उनके मनुष्यत्व को खाजावें, होश सभालते ही उन्हें इस तरह के जीवन में डाल दीजिये कि जिसमें वे अपनी समस्त उत्पादक शक्ति एक ही ओर विना रोक थाम बहाना शुरू कर

दें और ठीक उस उमर में जबकि इङ्गलिस्तान और अमरीका के निवासी मनुष्यत्व के पूरे गौरव तक पहुँचते हैं उन्हें नसें टूटी हुईः हौसले गिरे हुए, झगड़ालू और बूढ़े बना दीजिये फिर जब तक यह हालत जारी रहे क्या आपको इस बात की कोई खोज करने की ज़रूरत है कि वे लोग दरिद्र क्यों हैं, रोगी क्यों हैं, मरते क्यों हैं उनके हाथ इतने कमज़ोर इतने कांपते हुए क्यों हैं कि वे शासन की बाग उन हाथों में नहीं पकड़ सकते, या नहीं संभाल सकते।

तीसरा परिच्छेद

गोलियां और लट्टू।

यदि बाल विवाह की ओर भारत की सरकार के रुख का अध्ययन किया जावे तो उस से पता चलता है कि सरकार बराबर समझा बुझा कर उन्नति और परिवर्त्तन की ओर लोगों को ले जाना चाहती रहती है। उसके इस प्रयत में हमेशा दो मोटे उसूल रहे हैं—पहला यह कि जहा तक सम्भव हो प्रजा की धार्मिक बातों में हस्तक्षेप न किया जावे, दूसरा यह कि कभी किसी ऐसे क़ानून की मंजूरी न दी जावे जिस पर अमल नहीं कराया जा सकता, भारतवासियों के जो कुछ विश्वास धार्मिक कर्त्तव्यों, धार्मिक निषेधों और ईश्वरप्रदत्त अधिकारों के विषय में हैं उनके विरुद्ध जाने का परिणाम सदा यह हुआ है कि भारतवासियों का सिर फिर गया है और वे पागलपन, बलवा और खूंरेजी करने पर तैयार हो गये हैं। और कम से कम भारत जैसे देश के अन्दर किसी ऐसे कानून पर अमल कराना जिसका मानना या न मानना घर के अन्दर का एक रहस्य हो, असम्भव है।

अङ्गरेज और हिन्दुस्तानी दोनों तरह के अधिकारियों को इस बात का विश्वास है कि आज हिन्दू लोग किसी भी ऐसे कानून को पूरी तरह न मानेंगे जिससे लड़कियों की शादी करने की उम्र बढ़ा दी जावे। लोगों के आज कल के विचारों को देखते हुए ज्यादह से ज्यादह इस बात की आशा की जा

सकती है कि विवाहित दम्पति के बीच सहवास के लिये स्वीकृति की आयु बढ़ा दी जावे। यही इन तजुरबेकार लोगों का विचार है कि सन् १८९१ में इस ओर क़दम बढ़ाया गया था उस साल सरकार ने कुछ उन्नत विचार के भारतवासियों की सहायता से स्वीकृति की आयु दस से बढ़ाकर बारह साल कर दी थी। क़ानून के पास होने से पहले उसका खूब ज़ोरों से विरोध किया गया, जिसमें बड़े बड़े सनातनी हिन्दुओं ने सरकार पर ज़ोर के साथ यह दोष लगाया कि सरकार हिन्दू संसार की पवित्रतम नीवों पर कुठार चला रही है बाद की व्यवस्थापिका सभाओं में यह प्रश्न फिर उठाया जा चुका है। गैर सरकारी हिन्दोस्तानी सदस्यों ने इस तरह के बिल पेश किये हैं जिनमें इस उम्र को और अधिक बढ़ाने की कोशिशें की गई हैं। किन्तु परिणाम हमेशा यह हुआ है कि किसी न किसी मौक़े पर पहुँच कर सनातनियों के ज़बरदस्त बहुमत ने बिल को हरा दिया। इस तरह के मौक़ों पर वाइसराय की सरकार का रुख़ सदा यह रहा है कि उसने बिल के मुख्य उद्देश्य का स्पष्ट समर्थन किया है, किन्तु इस तरह के क़ानूनों के पास करने में एहतियात बर्ती है जो सार्वजनिक राय से इतने आगे बढ़े हुए हों कि उनके पास होने का नतीजा सिवाय इसके और कुछ न साबित हो कि उनसे क़ानून की इज़्ज़त ही लोगों की नज़रों से जाती रहे। सरकार के लिये इस तरह का व्यवहार इसलिये और भी ज़्यादा अनिवार्य हो गया क्योंकि हिन्दोस्तान के सार्वजनिक नेताओं की यह एक आदत है कि वे समझते हैं कि किसी क़ानून को केवल पास कर देने से उन्होंने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया उस क़ानून पर अमल कराने का न उन्हें ख़्याल

होता है, न उनका इरादा होता है और न इसके लिये वे अपनी जिम्मेवारी स्वीकार करते हैं।

कुदरती तौर पर सरकार के व्यवहार में कोई गुण नहीं होता। एक ओर से सरकार पर यह इलजाम लगाए जाते हैं कि वह पवित्र धार्मिक संस्थाओं को नष्ट करना चाहती है, दूसरी ओर से उतने ही कड़ेपन के साथ किन्तु इसके उल्टे इलजाम उस पर लगाए जाते हैं।

बड़ी व्यवस्थापिका सभा का एक सनातनी ब्राह्मण सदस्य कहने लगा—आपको पुरुष से स्त्री को पृथक करने का क्या अधिकार है? यदि आप चाहें तो हमारे प्राचीन आदर्श और प्राचीन मर्यादा पर नापाक हमला करें किन्तु इसमें हम आपका अनुसरण न करेंगे।* तथापि इतने ही जोर के साथ एक दूसरा सदस्य यह कहने लगा कि 'मालूम होता है कि भारतीय सरकार का प्रत्येक अङ्गरेज सदस्य दूसरे लोगों की उन्नति करने में रुकावट डालता है।'

इन बातों को पढ़ने से इस तमाम प्रश्न पर सार्वजनिक राय का खासा पता चल जाता है। खुल जाता है कि कौन्सिल के सदस्य अपने यहां की परिस्थिति से अच्छी तरह परिचित हैं। उनका मतभेद केवल इस बात में है कि इस परिस्थिति को कोई अधिक महत्व देता है और कोई कम।

जालन्धर के सदस्य रायबहादुर बख्शी सोहन लाल ने विवाहित लड़कियों की स्वीकृति की उम्र को बढ़ाकर चौदह कर देने के लिये एक गैर सरकारी संशोधन पेश करते हुए इस प्रकार बहस की —

---

* लेजिस्लेटिव एसेम्बली डिबेट्स १९२५।

इस देश की उच्च श्रेणी के लोगों में नवजात बच्चों और नौजवान विवाहित लड़कियों की मृत्यु संख्या के इतने अधिक होने का कारण ये हैं कि लड़कियां पूरी तरह बढ़ने अथवा शारीरिक अङ्गों के परिपक्व होने से पहिले ही विषय भोग में लगा दी जाती हैं और गर्भवती हो जाती हैं। शरीर के परिपक्व होने से पहले इस तरह के कार्य का परिणाम यह होता है कि न केवल लड़की का स्वास्थ्य कमज़ोर रह जाता है, बल्कि प्रायः उनके कमज़ोर और रोगी बच्चे पैदा होते हैं। इनमें से अधिकांश किसी मामूली रोग का भी मुक़ाबला नहीं कर सकते और न मौसम अथवा जलवायु के किसी दोष को सहन कर सकते हैं। इनमें से कुछ बच्चे पैदा होते ही अथवा बहुत छोटी उम्र ही में मर जाते हैं। यदि वे जीवित भी रहते हैं तो उन्हें सदा डाक्टरों और दवाइयों की ज़रूरत पड़ती है ताकि वे किसी तरह ज़िन्दा रह सकें, दूसरे शब्दों में उनके पैदा होने से डाक्टरों का अधिक फ़ायदा है, न कि उनका निजका, न उनके कुटुम्बियों का, न उनके देश का। ये लोग न अच्छे सिपाही हो सकते हैं, न अच्छे सिविलियन, न अच्छी तरह घर के अन्दर काम कर सकते हैं और न घर के बाहर; वे न किसी शत्रु पर हमला करने के योग्य हो सकते हैं और न किसी शत्रु से अपनी रक्षा करने के। सारांश यह कि इस तरह के बच्चों के पैदा होने में आमतौर पर उनके माता पिता का स्वास्थ्य बल औ धन सब बरबाद हो जाता है और समाज को उनसे उसके मुक़ाबले का कुछ लाभ नहीं होता। अधिकांश सूरतों में पति को × × × अपने जीवन में कई बार विवाह करना पड़ता है। क्योंकि बार बार उसकी पत्नी को इस तरह के बच्चे होते

हैं जो देर तक नहीं जीते और बार बार उसकी पतियां छोटी उम्र में मर जाती हैं।

कई वार की बहसों से इस बात का पता चलता है कि हिन्दोस्तानी सदस्यों में से कोई भी सिद्धान्त रूप से इस बात की बुद्धिमत्ता पर सन्देह नहीं करता कि जब तक लडकी पूरी उम्र की न हो जावे उसको मा बनने से रोकना चाहिये। वे सब इस बात पर सहमत हैं कि बिना छोटी उम्र की लडकियों के विवाह को रोके यह बात नहीं की जा सकती। किन्तु वे एक स्वर से कहते हैं कि यह बात असम्भव है। उसके ये तीन कारण बताते हैं —

(१) क्योंकि अत्यन्त प्राचीन प्रथा इसके विरुद्ध है। हिन्दुओं में विवाह से पहले लडकी का रजस्वला हो जाना आम तौर पर यदि धार्मिक दोष नहीं तो सामाजिक दोष अवश्य समझा जाता है।*

(२) क्योंकि पिता अपनी लडकी को इस डर से घर पर नहीं रख सकता कि कहीं पाणिग्रहण से पहले उसका सतीत्व नष्ट न हो, और यह खास कर उन बडे बडे संयुक्त घरों में जहां पर कि बहुत से पुरुष और लडके सगे भाई, चचेरे भाई, और चचा—एक ही मकान में रहते हों।

(३) क्योंकि माता पिता को यह साहस नहीं होता कि लडकी के रजस्वला हो जाने के बाद उसकी काम वासना को अतृप्त रखते हुए उसे घर में रखें।

इन सुपरिचित आपत्तियों को सामने रखते हुए मद्रास के विद्वान ब्राह्मण सदस्य दीवान बहादुर टी० रङ्गाचारियर

* लेजिस्लेटिव एसेम्बली डिबेट्स १९२५।

ने बड़े जोश के साथ सन् १९२७ के गैर सरकारी बिल का विरोध किया जिसमें कि विवाहित लड़कियों की स्वीकृति की आयु बढ़ाकर चौदह कर दी गई थी। आम तौर पर लोग इस बात से सहमत थे कि यदि इस तरह के क़ानून पर अमल कराने का कुछ भी प्रयत्न किया गया तो पिता को स्वयम अपनी लड़की उसके पतिसे दूर रखनी पड़ेगी। इस मद्रासी सदस्य ने चेतना देते हुए और विनय करते हुए कहा कि:—

'हमारे देश के अन्दर बारह और चौदह साल के बीच की लड़कियों की स्थितिको याद रखिये। क्या हमारे घरों में हमारी बेटियाँ नहीं हैं? क्या हमारे घरों में हमारी बहिनें नहीं हैं? इसे याद रखिये और अपने पड़ोसियों का भी ख़्याल रखिये। हमारी आदतों, हमारे रिवाजों, हमारे जल्दी जवान होने, हमारे यहां की आब हवा और हमारे देश की परिस्थिति, इन सब का ख़्याल करते हुए, मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप इस विषय पर पूरा पूरा ध्यान दीजिये।'

उसी बहस के समय एक दूसरे ब्राह्मण सदस्य ने बड़े जोश में आकर कहा—

'इस देश के अन्दर स्त्रियों की जो उच्च मर्यादा है वह दूसरे किसी भी देश में नहीं पाई जाती। स्त्रियों के विषय में हमारा आदर्श यह है: हमारी स्त्रियां अपने पतियों को इस पृथ्वी पर अपना ईश्वर समझती हैं। यही बात उन्हें माता के दूध के साथ सिखाई जाती है। × × × एक युवा ब्राह्मण पत्नी के लिये सम्पन्न समाज संशोधक मिला कर भी उसके इतने सच्चे, प्यारे और बड़े हितचिन्तक नहीं हो सकते जितना कि उसका पति! × × × विवाह की पवित्रता के विषय में हमारी

साधु सन्यासी (मदर इण्डिया पृष्ठ ६)

इस प्राचीन उच्च मर्यादा में हस्तक्षेप करने का आप को कोई अधिकार नहीं है ?××× आखिर इस कानून का उद्देश क्या है ? क्या आप हिन्दोस्तान की स्त्रियों को बलवती और उनके बच्चों को दृढकाय बनाना चाहते हैं ? किन्तु स्मरण रखिये कि इस प्रयत्न में सम्भव है कि आप जिस बुराई को दूर करना चाहते हों उससे कहीं अधिक हानि आप समाज को पहुँचा देवें।××× आपसे जितना हो सके लड़कियों के शरीर की रक्षा कीजिये किन्तु उसके सदाचार को उन्नति देने और उसको आत्मा को यह शिक्षा देने में न चूकिये कि वह संसार में अपने पति ही को अपना ईश्वर समझे। भारत में कम से कम हिन्दुओं के अन्दर यही स्थिति है। ××× मैं आप से विनय करता हूं कि आप हमारे हिन्दू घरानों को नाश न कीजिए, उन्हें बरबाद न कीजिये'।

एक दूसरे सदस्य सेलम और कोयम्बटूर के मि० सन्मुगम चेट्टी ने इस तरह की दलील का बड़ी गरमी के साथ यह जवाब दिया

'यदि किसी जुर्म से पहले कोई इस तरह का संस्कार कर दिया जावे जिसे आप विवाह कहते हैं तो इससे वह जुर्म जायज नहीं हो जाता और न हो सकता है। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि आप मनुष्य को मार कर खा जाने वाले किसी हब्शी से पूछें तो वह भी अपने उस घृणित कार्य के लिये अपने धर्म का हवाला देगा।'

कलकत्ते के हिन्दोस्तानी ईसाई प्रतिनिधि डा० एस० के० दत्त ने कहा

"यदि संसार में किसी नियम के लिये यह कहा जा सकता है कि वह मनुष्य का बनाया हुआ नियम है तो वह यह है कि

छोटी छोटी बालिकाओं को माता बनने के लिये मजबूर किया जावे; अन्त में यह बिल, जिसमें सहवास स्वीकृति की आयु को बढ़ाकर चौदह साल कर दिया गया था, पास न हो सका। सार्वजनिक असंतोष के भयंकर तूफ़ान में उसे दफ़न हो जाना पड़ा। एसेम्बली की अगली बैठक में वायसराय की सरकार के मुख्य पात्र सर अलेक्ज़ेण्डर मुडीमैन ने एक सरकारी बिल पेश किया, जिसमें इस बिल के ऐसा परिवर्त्तन इस प्रकार करने का प्रयत्न किया गया जिसमें कि सनातनी भारतवासी भी उसे स्वीकार कर लें"।

इस बिल में अविवाहित स्त्रियों के लिये स्वीकृति की आयु चौदह और विवाहित स्त्रियों के लिये स्वीकृति की आयु तेरह वर्ष रखी गई। यह बिल सन् १९२५ के ऐक्ट नं० २९ के रूप में पास होगया।

ऐसेम्बली के अन्दर इस बिल के सम्बन्ध में जो बहस हुई उससे हिन्दोस्तानियों के विचारों का और भी अधिक परिचय मिलता है।

कुछ वक्ताओं ने यह कहा वास्तविक सुधार की आशा केवल उस उन्नति परिवर्त्तन से हो सकती है जो हमारे देश की भिन्न २ एसोशियेशनों में सार्वजनिक राय जिस तरह श्रेणियों, सम्मतियों और सम्प्रदायों के विचारों से धीरे धीरे हो रहा है। इन लोगों ने क़ानून द्वारा परिवर्त्तन करने के प्रयत्न को बुरा अनावश्यक और दिल दुखाने वाला बताया। उन्होंने कहा कि समस्त भारत में अधिकांश हिन्दू सनातनी हैं, वे बाल विवाह के इस प्रकार क़ानून द्वारा बन्द किये जाने का अर्थ यह समझेंगे कि उसका उल्लंघन करना इनका धार्मिक कर्तव्य है।

इसी तरह से यह भी दिखाया गया कि यदि बाल पत्नी की उसके बचपन में रक्षा करने के प्रयत्न किये गये तो इसे भी विवाह की पवित्रता पर आक्रमण समझा जावेगा, उसपर अमल कराना असम्भव होगा और इसमें कोई सन्देह नहीं कि उसका नतीजा 'रक्त पात और अराजकता' होगा।

यह सच है कि अजमेर के मारवाडी रायसाहब मुन्शी हरविलाश शारदा ने कहा कि '

'जहाँ पर कि कोई सामाजिक रिवाज या धार्मिक क्रिया ऐसी हो जो कि हमारे मनुष्यत्व के भाव को आघात पहुँचाती हो अथवा असहाय लोगों के साथ अन्याय करती हो तो कानून को बीच में दखल देने का हक है। तीन या चार साल की लडकी का विवाह कर देना और नो या दस साल की लडकी के साथ विषय भोग की इजाजत देना ऐसी बातें हैं जो चाहे कहीं पर भी हों हमारे मनुष्यत्व के भाव को आघात पहुँचाती हैं'।

किन्तु इलाहाबाद के पण्डित मदन मोहन मालवीय का विचार इससे भिन्न था। उन्हों ने कहा कि

'हमें इस प्रश्न पर विचार करने में अपनी दृष्टि वास्तविक स्थिति पर रखना चाहिये। परिस्थिति यह है कि इस समय बारह साल से पहले विवाह करने की आमतौर पर इजाजत है बल्कि इसका आमतौर पर रिवाज है। इसलिये विवाहित दम्पति को मिलने से रोकना असम्भव है × × × मेरी विनय है कि शायद सबसे अच्छा यही हो कि हम इस बात के लिये राजी होजावें कि विवाहित लोगों के विषय में जैसा इस समय तक कानून है वैसा फिलहाल रहने दिया जावे और यह बात शिक्षा के प्रचार और समाज सुधार पर छोड दी

जावे कि उनके द्वारा विवाह के बाद सहवास की आयु बढ़कर उचित सीमा तक आ जावे × × मुझे विश्वास है कि इस विषय में बहुत कुछ उन्नति हो चुकी है। बहुत से प्रान्तों में उच्च श्रेणी के लोगों में विवाह की आयु बढ़ती जाती है × ×। दुर्भाग्यवश इस विषय में सबसे अधिक हानि गरीबों की हो रही है। बालविवाह उच्च श्रेणी के लोगों की अपेक्षा गरीबों में कहीं अधिक होते हैं"।

वर्दवान के मि० अमरनाथ दत्त ने क़ानून का विरोध करते हुए कहाः—

'हमें अपने उन्नत विचार अपने कम उन्नत देशवासियों के ऊपर ज़बरदस्ती मढ़ने का कोई अधिकार नहीं है × ×। हमारे ग्रामों में अब भी बेहद फूट है। यदि सहवास स्वीकृति की आयु बढ़ाकर तेरह कर दी गई तो चाहे यह बात उचित हो या अनुचित ग्रामों में एक दल के लोगों के कहने पर पुलिस दूसरे दल के लोगों पर मुक़दमे क़ायम करेगी। उन्हें कष्ट देगी जिससे उनका चारों ओर अपमान होगा × × मैं सरकार को यह सलाह दूंगा—कि बिल को तुरन्त वापिस लेलिया जावे। मैं बङ्गाल से आता हूं और मैं जानता हूं कि वहां के अधिकांश लोगों की राय क्या है।

दक्षिण सरकार के मि० एम० के० आचार्य भी इस नवाचार के बड़े विरोधी थे। उन्होंने कहा किः—

'× × आप जो करना चाहते हैं वह यह है कि जो बात इस समय दोष नहीं है उसे आइन्दा के लिये दोष बना दें जो बात इस समय तक जुर्म नहीं है उसे आइन्दा के लिये जुर्म बनादें, जब कि हम उसे जुर्म समझने के लिये तय्यार नहीं हैं। चाहे थोड़े से लोगों की राय हमारे विरुद्ध ही क्यों न हो।'

इसी वक्ता ने कुछ देर बाद इसी सम्बन्ध में कहा कि हिन्दोस्तान में बहुत कम ऐसे समझदार लोग हैं जिन्हें इस सुधार की कोई विशेष आवश्यकता अनुभव होती हो। यह सुधार होगा और उचित समय पर होगा और इसके धीरे धीरे होने से समाज की कोई हानि नहीं है वास्तव में इस समय वादाविवाद का मतलब केवल यह है कि इस सभा के माननीय सदस्यों के सामने उस समय तक के लिये जब तक कि वे शिमला में हैं कुछ कानूनी गोलिया और लट्टू रख दिये जावें।

चौथा परिच्छेद

जल्दी शादी और जल्दी मौत।

हिन्दुओं की इन निष्फल बहसों में कभी कभी उत्तर के परिश्रमी लोगों की आवाज़ भी सुनाई दे जाती है। यह बहुत कम होता है क्योंकि वहां के लोगों को इस विषय से अधिक प्रेम नहीं है, फिर भी जब कभी उनकी आवाज़ सुनाई देती है उसके साथ एक तरह की ग्रामीण बुद्धिमत्ता होती है।

नवाब सर साहब ज़ादा अब्दुल क़य्यूम जैसा कि उनके नाम से ज़ाहिर है मुसलमान हैं। अपने दूरवर्ती पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त का ज़िक्र करते हुए उन्होंने कहा कि:

"मैं इस प्रश्न के असली पहलू पर केवल कुछ शब्द कहना चाहता हूं। हमारे प्रान्त में बाल विवाह नहीं होते। इसलिये इस बिल का हम पर अधिक असर न होगा। × × × मेरे विचार से × × × यह एक उचित इलाज होता कि × × × पुरुष के लिये विवाह की एक ख़ास आयु और स्त्री के लिये विवाह की एक ख़ास आयु नियत कर दी जाती × × × किन्तु मैं समझता हूं कि देश इसके लिये तय्यार नहीं है × × × ज़रा सोचिये कि कौन मुक़दमा चलाएगा? कौन तहक़ीक़ात करेगा? गवाह कहां से मिलेंगे? और फिर अदालत के फ़ैसले पर कौन अमल कराएगा × × × एक और कठिनाई होगी × × × आप एक दम्पति को विवाह कर लेने की इजाज़त दें, उन्हें अपनी काम वासनाओं को तेज़ करने का मौक़ा दें और फिर

कानून के जरिये उन्हें स्वाभाविक सहवास से रोकें, केवल इसलिये क्योंकि उनकी आयु नियत सीमा तक नहीं पहुँची × × ×। फर्ज कीजिये यह कानून पास हो गया और दम्पति को आपने सहवास से रोक लिया, मेरा अनुमान है कि इसके बाद अधिकांश सूरतों में वह नौजवान लड़का गलियों में मारा मारा फिरेगा।

जब तक आप इस बात की इजाजत देते हैं कि छोटी उम्र में लोगों के विवाह कर दिये जाय तब तक कोई कारण नहीं कि आप इस तरह के कानून क्यों बनावें जो उनके वैयक्तिक जीवन में हस्तक्षेप करें।'

कई सदस्यों ने अन्त में यह कहा कि कानून चाहे कुछ भी क्या न हो बाल वधुओं के साथ व्यवहार उसी तरह का होता रहेगा जिस तरह उनकी स्वाभाविक प्रवृत्तियां कहेंगी और जिस तरह उनके पतियों के पवित्र अधिकार निर्णय करेंगे।

किन्तु हिन्दुओं की दलीलों से यह मालूम होता है कि उन लोगों का यह आम विश्वास है कि सामाजिक उन्नति के लिये कानून बना कर यद्यपि उन कानूनों पर अमल कराने की कोई आशा नहीं की जा सकती तथापि इस तरह के कानूनों का जाति के विचारों के ऊपर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है इसलिये यदि कानून पास हो जावें तो उनसे लाभ ही है। हिन्दोस्तान के सार्वजनिक नेता कहते हैं कि, 'लोगों को शिक्षा मिलनी चाहिये, जो मार्ग उनके लिये दिखलाया गया है उस पर उन्हें चलना चाहिये, इतना कह देने के बाद ये लोग यह समझते हैं कि उन्होंने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया, उन्हें अब और कुछ नहीं करना है।

मद्रास के ब्राह्मण सदस्य दीवान बहादुर टी० रङ्गा चारि-

यर के जिन शब्दों को हमने ऊपर उद्धृत किया है वे आम-तौर पर अन्य लोगों के विचारों के विरुद्ध हैं। किन्तु दीवान बहादुर की राय के बहुत थोड़े आदमी हैं। एक ऐसे सदस्य की ओर मुखातिब होकर जिसने बिल में एक सुधार पेश किया था दीवान बहादुर ने कहा कि:

'क्या मैं अपने माननीय मित्र से यह पूंछ सकता हूं कि इस सम्बन्ध में इस मकान से बाहर उन्होंने कितनी जगह वृक्तायें दी हैं? (एक आवाज़ उठी "कभी नहीं") क्या उन्होंने कभी अपने प्रान्त के अन्दर एक भी सभा की है और लोगों को इन सुधारों का मूल्य समझाया है? जनाब, इस मकान के अन्दर अपनी स्थिति से लाभ उठाकर ऐसे लोगों की सहायता से जो सब अपनी ही राय के हैं इस तरह क़ानून पास करा लेना आसान है। किन्तु × × देश में जाना और अपने देश के स्त्री पुरुषों को इस सुधार की सत्यता का विश्वास दिलाना इतना आसान नहीं है।'

इस प्रकार इन कौन्सिलों में हमेशा लोग ज़िम्मेवारी एक दूसरे पर फेंकते रहते हैं। कोई कहता है, 'केवल ब्राह्मणों में छोटी उम्र की लड़कियों की शादी होती है। दूसरा उतने ही ज़ोर से कहता है कि 'यह रिवाज केवल नीच जाति के लोगों में है।' तीसरा कहता है कि 'हर हालत में बाल विवाहों की बुराइयों को बयान करने में लोग बहुत अत्युक्ति करते हैं' इस विषय में दख़ल देना मूर्खता है' बाल वधुओं की रक्षा का कार्य सामाजिक और धार्मिक सुधार संस्थाओं पर छोड़ देना चाहिये!

किन्तु यदि राजनैतिक नेताओं के इन दावों और चालों से हटा कर—उनके इस अस्पष्ट कथन को छोड़कर कि ख़ूब

उन्नति हो रही है,—यदि ठीक ठीक सचवाई की ओर ध्यान दिया जावे तो आदमी सुन कर चौंक उठता है। सन् १९२१ की मर्दुम शुमारी की रीपोर्ट में लिखा है कि —

"व्यवहारिक दृष्टि से यह पूरी तरह माना जा सकता है कि रजस्वला होने के समय अथवा उसके बाद ही प्रत्येक स्त्री विवाहित होती है और इसीलिये हर सूरत में रजस्वला होने के साथ साथ पुरुष के साथ उसका सहवास शुरू हो जाता है।"

इस बात का महत्व और भी ज्यादह अनुभव होने लगता है जब कि हम यह देखते हैं कि भारत वर्ष में हर तीस वर्ष के अन्दर लगभग बत्तीस लाख माताएं। बच्चा पैदा होने को यातनाओं से मर जाती हैं। पिछले महा युद्ध में ब्रिटिश साम्राज्य, फ्रान्स, बेल्जियम, इटली और अमरीका के मिल कर भी इतने आदमी नहीं मरे थे। और भारतवासियों का औसत शारीरिक माप अन्य सब राष्ट्रों से कहीं कम है।

हम फिर बड़ी व्यवस्थापिका सभा की ओर आते हैं फिर उत्तर ही का एक आदमी बोलता है—एक सफेद दाढ़ी मूछों वाला लम्बा, सीधा, छरहरे और मजबूत बदन का जमीदार लोहे की तरह सख्त, जो कि अपने आस पास के मद्रासियों से शरीर में ठीक विपरीत, जिस समय वह बोलता था वे मद्रासी उसका मजाक उड़ाते थे—इन सरदार बहादुर का नाम कप्तान हीरा सिंह ब्रार था, ये एक पञ्जाब के वृद्ध सिख योद्धा थे। उन्होंने कहा कि —

'जनाब' मेरे ख्याल में छोटे बच्चों की मौतों को रोकने का असली इलाज यह है कि जो बाप इस तरह के बच्चे पैदा करें वे पीटे जाय, इतना ही नहीं बल्कि हमें अपने उन

बहुत से दोस्तों को चपत लगाने चाहिये जो कि हमेशा तन्दुरुस्त बच्चे पैदा करने के लिये उम्र के बढ़ाए जाने का विरोध करते हैं। × × × क्या इन लोगों का नौ और दस वरस की लड़कियों लड़कों को पति पत्नी कहना पाप नहीं है? यह बड़े शर्म की बात है। (आवाज़ें उठीं "नहीं!") × × × यह बात इस नसल के लिये और भावी नसलों के लिये दोनों के लिये बड़े दुर्भाग्य की है। × × × नौ और दस वर्ष की लड़कियाँ जो ख़ुद अभी बच्ची हैं जिन्हें बजाय पत्नियां बनने के गुड़ियां खेलनी चाहियें, बच्चों की मां बन जाती हैं। लड़के जिनके स्कूलों में पढ़ने की उम्र है आधी दरजन बच्चों के बाप बन जाते हैं × × × मैं समाज में जाना पसन्द नहीं करता। मुझे समाज में जाते हुए शरम आती है क्योंकि वहां न आदमी दिखाई देते हैं और न औरतें। मुझे स्वयं किसी बारह वर्ष की छोटी सी लड़की को अपनी पत्नी के तौर पर साथ लेकर समाज में जाते हुए शर्म आयेगी। × × × हम सब बातें करते हैं, केवल बातें करते हैं, यहांपर सैकड़ों तरह की बातें करते है, किन्तु इसके बाद क्या होता है? सब इसी मकान में छोड़ जाते हैं; सब प्लैटफ़ार्म के ऊपर फेंक जाते हैं, अपने घर कुछ नहीं लेजाते और काम कुछ नहीं होता × × ×। तन्दुरुस्त बच्चे एक बलवान क़ौम की बुनियादें होती हैं। हर एक मनुष्य जानता है कि माता पिता तन्दुरुस्त बच्चे पैदा नहीं कर सकते। यदि हमें कुछ काम करने योग्य बनना है तो हमारी लम्बी उम्रें होनी चाहियें और जबतक बाल विवाह न रोका जावेगा हमारी लम्बी उम्रें नहीं हो सकेंगी। हिन्दोस्तानियों का उसूल यही मालूम होता है, "जल्दी शादी करें और जल्दी मरें"।

बड़ी व्यवस्थापिका सभा में हिन्दोस्तानी हिन्दोस्तानी आपस में जो एक दूसरे के जवाब में स्पष्ट बातचीत करते हैं उनमें सच्चाई का पता लग जाता है। किन्तु इन्हीं सच्ची घटनाओं को जब एक कवि विदेशियों के सामने रखने के लिये नया वेश पहरा देता है तो देखिये कि उनका रूप कितना बदल जाता है। रवीन्द्रनाथ टेगोर ने अपने एक विवाह शीर्षक निबन्ध में जिक्र किया है कि बाल विवाह उन्नति आत्मा की उच्चता का पुष्प है और मनुष्य की जातीय के लिये अर्थवाद और विषय भोगके ऊपर उच्च मनस्विता की विजय का एक चिन्ह है। किन्तु वह जिस नतीजे पर पहुँचे हैं उससे यही मालूम होता है कि उनका विश्वास है कि यदि भारतीय स्त्रियों को वश में रखना है तो बालम्बला होने से पहले ही उन्हें मजबूती से बाधकर किसी के हवाले कर देना चाहिये। रवीन्द्रनाथ टेगोर के शब्द यह हैं —

"इच्छा' × × × जिसके विरुद्ध भारतीय विवाह प्रणाली ने युद्ध किया प्रकृति की अत्यन्त बलवान शक्तियों में से एक शक्ति है इसलिये उसे जीतने का प्रश्न आसान नहीं था। एक खास उम्र होती है × × × जब कि पुरुष और स्त्री के बाच यह आकर्षण हद को पहुँच जाता है, इसलिये विवाह समाज की इच्छा के अनुसार होना चाहिये [न कि पुरुष और स्त्री की पसन्द के अनुसार] तो पूर्वोक्त आयु के पहुँचने से पहले विवाह हो चुकना चाहिये। इसीलिये हिन्दोस्तान में बाल विवाह का रिवाज पड़ा।'

दूसरे शब्दों में इसके यह मानी है कि, पेश्तर इसके कि किसी स्त्री को अपने स्त्री होने का बोध हो उसका विवाह हो जाना जरूरी है।

इस तरह की बात जब कि ऐसे आदमी की लेखनी से निकलती है कि जो अर्वाचीन भारतीय लेखकों में सबसे अधिक विख्यात है, तो उससे यही साबित होता है कि हम लोग 'भौतिक विचारों वाले पश्चिमी' यदि जल्दी से ऐशिया निवासियों के उन वाक्यों पर विश्वास करलें जिनमें वे अपने यहां के दैनिक मानव जीवन को चित्रित करने का दावा करते हैं तो हम लोग धोखा खा जावेंगे।

यहां तक जो कुछ मैंने लिखा है वह विवाहित बच्चों के विषय में है। भारतीय वेश्याओं के विषय में आमतौर पर इस पुस्तक में लिखने की आवश्यकता नहीं है; किन्तु इस विषय के कुछ विशेष प्रसङ्गों पर रोशनी डालना उचित है। क्योंकि उनसे वास्तविक स्थिति का बहुत कुछ पता चल सकता है।

देश के कुछ भागों में ख़ास कर मद्रास प्रान्त और उड़ीसा में हिन्दुओं में यह एक रिवाज है कि माता पिता देवताओं से कुछ वर मांगने के लिये यह मन्नत मान लेते हैं कि यदि हमारा अगला बच्चा लड़की हुई तो हम उसे देवता के चरणों में भेंट कर देंगे। कभी कभी कोई विशेष सुन्दर बच्ची जिसे किसी कारण से घर में रखना अनावश्यक समझा जाता है मन्दिर में चढ़ा दी जाती है। यह छोटी सी बच्ची मन्दिर की स्त्रियों के सुपुर्द कर दी जाती है। यह स्त्रियां भी वही हैं जो स्वयम भेंट चढ़ाई गयी हैं वे उस बच्चे को नाचना और गाना सिखाती हैं। प्रायः पांच वर्ष की उम्र में जो उम्र बहुत ठीक समझी जाती है वह पुरोहित की वेश्या बन जाती है।

यदि वह अधिक उम्र तक जीवित रह गई तो फिर प्रति दिन की पूजा के समय देवता के सन्मुख वह नाचने और गाने का काम करती हैं; मन्दिर के आस पास के मकानों में उन

पुरुष यात्रियों के लिये जो मन्दिर के दर्शन के लिये आकर ठहरते हैं इस तरह की लडकियां सदैव कुछ दाम पर व्यवहार के लिये तय्यार मिल सकती हैं। वह सुन्दर वस्त्र पहनने लगती हैं। कभी कभी देवताओं के आभूषण उन्हें पहना दिये जाते हैं, और जब तक कि उनका सौन्दर्य ढल नहीं जाता वे यही काम करती रहती हैं। उसके बाद जिस देवता के मन्दिर में वे रह चुकी हैं उसका चिन्ह विशेष उन पर गोद दिया जाता है और उन्हें थोडा सा खर्च देकर खुले फिरने के लिये निकाल दिया जाता है। भिक्षा माग कर जीविका निर्वाह करना इसके बाद उनका विशेष अधिकार समझा जाता है। इन लडकियों के माता पिता चाहे कितने भी धनाढ्य, उच्चपद के और उच्च जाति के क्यों न हों इस तरह अपनी लडकी को निकाल देने के कारण समाज में बिलकुल अनादर के पात्र नहीं समझे जाते। माना जाता है कि मा बाप का ऐसा करना सर्वथा आदरणीय है। इस तरह की लडकियों की एक अलग जाति बन जाती है जिन्हें देवदासी अर्थात 'देवताओं की वेश्याएं, कहा जाता है। हर मन्दिर के साथ इनका होना आवश्यक है।

अब यदि यह पूछा जावे कि एक जिम्मेवार सरकार देश में इस तरह के रिवाज का क्यों जारी रहने देती है तो जवाब बड़ा सीधा है। इस रिवाज के पीछे सार्वजनिक सम्मति है, और इस रिवाज की जडें एक अत्यन्त स्थिति पालक और धर्म परायण लोगों के अत्यन्त प्राचीन इतिहास में गहरी गई हुई हैं। जो शख्स यह जानना चाहे कि यदि इस रिवाज पर सामने से कोई आक्रमण किया जावे तो लोग स्पष्ट तथा अस्पष्ट कितनी उग्रता के साथ धर्म के नाम पर उस आक्रमण का मुक़ाबला करेंगे, उस शख्स को मिस मेमी

विलायत कामसाइकल के अस्थायी कार्य प्रणाली और उनकी पुस्तकें पढ़ लेनी चाहिये।

यदि इन छोटी छोटी लड़कियों को ज़बरदस्ती मन्दिरों से निकाल लिया जावे तो सारा प्रान्त का प्रान्त उन्मत्त होकर लड़ने को खड़ा हो जायेगा।

'एशिया में आप जल्दी नहीं कर सकते'। किन्तु धीरे धीरे नीचे से पाश्चात्य आदर्शों और पाश्चात्य सम्पर्क अपना काम कर रहा है, और अङ्गरेज़ अफ़सर शान्ति से और धैर्य से शिक्षा देते रहते हैं, वर्षों के अन्दर शायद अन्तिम परिवर्तन के पक्ष में जितना इन चीज़ों का प्रभाव पड़ा है उतना किसी तरह के दबाव का नहीं पड़ सकता था।

इस प्रकार जब कि एक क़ानून अविवाहित लड़कियों के लिये सहवास स्वीकृति की आयु बढ़ाने के विषय में बड़ी व्यवस्थापिका सभा के सामने पेश हुआ तो उस प्रसिद्ध सदस्य राय बहादुर टी० रङ्गा चारियर ने ज़ोरों के साथ उसका विरोध किया। उनकी दलील यह थी कि इस क़ानून से मन्दिरों की वेश्याओं को बड़ा कष्ट होगा।

और क्यों?

क्योंकि टी० रङ्गा चारियर के अनुसार देवदासियों की बेटियों का विवाह जाति के हिन्दुओं से नहीं हो सकता, इसलिये?

'चूंकि इन लड़कियों का विवाह नहीं हो सकता उनकी मातायें कुछ बड़े बड़े ज़मींदारों के साथ उनका विवाह कर देती हैं और ज़मींदारों के यहां उनको रखा देती हैं।'

इस दयालु सदस्य ने आगे चलकर सभा को आगाह किया कि यदि लड़की की उम्र बढ़ा दी गई तो कोई ज़मींदार

उन्हें न रखेगा, नतीजा यह होगा कि उनका बहुत अच्छा सौदा जाता रहेगा और गरीब मा को अपनी लडकी का निर्वाह करना पड़ेगा।

उस दिन बहस में सबसे मनोरञ्जक बात यह न थी कि उस प्रसिद्ध ब्राह्मण ने अपने देश बन्धुओं के सामान्य भावों को प्रकट किया, वल्कि खास बात यह थी कि आस पास के सदस्यों ने उसके इन शब्दों का विरोध किया। लगभग इन सब लोगों ने टी० रङ्ग चारियर की दलील को नापसन्द किया। तीन वर्ष पहले इस तरह की दलील का लोग बिलकुल दूसरी तरह स्वागत करते थे।

इसके बाद उडीसा के सदस्य मि० मिश्रा बोले। उन्होंने देवदासियों वा मामूली दासियों अर्थात् वेश्याओं के विषय में यह विचार प्रकट किये —

'देव दासियों की प्रथा अत्यन्त प्राचीन समय से चली आ रही है। × × × विवाह के उत्सव में तथा अन्य उत्सवों में ईश्वर की स्तुति के भजन गाने के लिये उनका होना आवश्यक समझा जाता है। × × × जमींदारों और राजाओं को लडकियां दिये जाने के विषय में बहुत कुछ कहा जा चुका है। × × × जमींदार लोग कभी भी कुटनियों की मार्फत लडकियां नहीं लेते। जो होता है वह यह है। जब जमींदार या राजा शादी करते हैं तो उनकी पत्नियों वा रानियों के साथ बतौर लौंडियों के कुछ लडकियां आती हैं × × × कुटनियों द्वारा लडकियां कहीं नहीं ली जातीं और कोई भद्र मनुष्य वा जमींदार वा राजा वा कोई सामान्य मनुष्य लडकियां लेने के लिये इस घृणित उपाय का उपयोग कभी न करेगा। × × × नाबालिग लडकियां अपनी खुद रक्षा कर सकती हैं, हम

उनके विषय में इतनी चिन्ता क्यों करें ?

मि० मिश्रा की वक्तृता में सीधी घटनाएँ दी गई थीं, तथापि उसके उत्तर में जो वक्तृताएं हुईं उनसे पश्चिमी विचारों के प्रभाव का एक और दृश्य देखने को मिला। मि० मिश्रा के वाक्य उनके बहुत से सहधर्मियों के कानों में चुभे। बात चाहे कितनी भी सच हो ये लोग न चाहते थे कि इस तरह की बात लेख बद्ध की जावे। लोग बार बार चिल्लाने लगे, 'अपने शब्दों को वापस लीजिये। दूसरे वक्ताओं की वक्तृताओं से इस बात का काफ़ी सबूत मिला कि कम से कम विचारों की दृष्टि से देश में नए भाव पैदा होगए हैं।

जिन लोगों का धर्म ही उन्हें यह सिखाता है कि सब कामों से छूट जाना ही निर्वाण पद प्राप्त करना है उनके अन्दर मानसिक भावों को क्रिया का रूप देने के लिये अर्थात असल में लाने के लिये अभी एक और ज़बरदस्त मानसिक क्रान्ति की आवश्यकता है।

—:o:—

पांचवां परिच्छेद

स्पष्ट वादिता

बाल विवाह के परिणाम, जिनका खाका व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों के शब्दों म ऊपर लिखा आचुका है, देखने के लिये हिन्दोस्तान में किसी विदेशी के लिये सबसे सीधा उपाय यह है कि वह स्त्रियों के अस्पताल में जावे। यह मने पंजाब से बम्बई और मद्रास से संयुक्तप्रान्त तक अस्पताल निरीक्षण किया है। यह काम पुरुष नहीं कर सकता, कारण यह है, चाहे वह डाक्टर हो अथवा नहीं, उसे कदाचित ही कोई स्त्री मरीज दिखाई जावेगी।

उत्तर पूर्व के एक शहर में हिन्दोस्तानी स्त्रियों में विख्यात एक छोटा सा परदा अस्पताल है। जो भीरु स्वभाव स्त्रियां वहां इकट्ठी होती हैं उनमें से शायद कुछ की, अपने घरों की दीवारों के बाहर यह पहिला ही निकलने का अवसर होता है। यदि उन्हें तकलीफ न होती तो अब भी वे यहां आने का साहस न कर पातीं। मुसलमान औरतें हमेशा, और हिन्दू औरतें बहुधा, बन्द सवारियों में यहां आती हैं-- परदेदार गाड़ियों में छुप कर, या छोटी डोलियों में बैठकर जो मुश्किल से इतनी ऊंची होती हैं जिसमें वे झुक कर भी बैठ सकें जैसे मानों कुली गठरियों को बांस में लटकाए लिये जारहे हों। उनमें सरकारी क्लर्कों की बीबियां होती हैं अफसरों की बीबियां होती हैं या व्यापारियों की बीबियां होती हैं। कभी

धनवान स्त्रियां आती हैं, कभी गरीब, कभी उच्च जाति की आती हैं और कभी नीच जाति की। सब की सब, अपनी बीमारी में जिससे वे मर रही हैं, मदद के लिये इतनी आतुर होती हैं कि अपने दिल में पोषित धर्म अधर्म और छुआ छूत के विचारों तक की परवाह नहीं करतीं।

अस्पताल में छोटे छोटे एक मंजिला बङ्गलों की श्रेणी है। इनमें से कुछ वार्ड हैं और कुछ जुदा जुदा कमरे हैं। बरसों पहले, शुरू शुरू में काम बड़ा ढीला था औरतें मुश्किल से आती थीं। पहले साल प्रसव कार्य के केवल नौ केस आये थे। लेकिन अब अस्पताल के कमरों की कोई चारपाई ख़ाली नहीं है, यहां तक कि बरामदे तक चारपाइयों से भरे हुए हैं; और बीसियों स्त्रियां, जिनके लिये जगह नहीं है, जगह के लिये प्रार्थना करती हैं।

यदि आप, मरीज़ों की चारपाइयों के, बीचसे निकलें तो आपको तकियों की सफ़ेद सतह पर, अनार्य स्त्रियों के काले चेहरे, ब्राह्मण स्त्रियों के पक्के रंग के चेहरे मुसलमान स्त्रियों के सुघड़ चेहरे, जिनके पूर्वज उत्तर ईरान से आए थे, और मद्रासी स्त्रियों के भद्दे चेहरे दिखाई देंगे। सभी के चेहरे से साफ़ मालूम होता है कि ये पीड़ित और निस्सहाय हैं यहां लगभग सारा कार्य स्त्रियों के विशेष रोगों के इलाज़ ही का होता है। रोगी स्त्रियों में बहुत सी बिलकुल कम उम्र होती हैं। और क़रीब क़रीब सब की सब मैथुन सम्बन्धी गन्दी बीमारियों में मुब्तिला होती हैं।

कुछ निस्सन्तान स्त्रियां पुत्रवती होने की आशा में दवा या आपरेशन की प्रेरणा से आती हैं क्योंकि हिन्दोस्तानी स्त्री को पुत्र ही बैकुण्ठ पहुँचाने का कारण होता है। अङ्गरेज

लेडी सार्जन सुपरिन्टेन्डेन्ट ने मुझसे कहा कि 'इन औरतों में हमें बराबर ऐसी रोगणी मिलती रहती हैं जिनको एक बच्चा हो चुकने के बाद सूजाक की बीमारी लग जाती है उस स्त्री के सजाक जिससे उनकी कोख बिलकुल सत्यानाश हो जाती है। ऐसी कम उम्र की तादाद जो विवाह के पहले साल में ही इस तरह बरबाद होकर यहाँ आती हैं देखकर दिल दहल जाता है। नब्बे फी० सदी औरतों की कोख की सूजन का कारण सूजाक होता है।

जब हम लोग एक कमसिन लडकी के बिस्तरे के समीप खडे हुए जो भूखे पशु की तरह हमारी ओर देखने लगी तो लेडी डाक्टर ने मुझे बताया कि 'यह एक नई मरीज़ है। इसे बहुत से बच्चे हो चुके हैं किन्तु सब मरे हुए। इस मरतबा यदि इसे जिन्दा बच्चा न पैदा हुआ तो इसका पति इसे घर में न रखेगा, इसीलिये यह हमारे पास बच्चा पैदा कराने के लिये आई है। औरों की तरह इसे भी मैथुन सम्बन्धी रोग है। किन्तु हमें उम्मीद है कि हम इसे अच्छा कर सकेंगे।

एक दूसरी चारपाई के पास रुक कर मैंने एक लडकी देखी जिसके आखों में मृत्यु चित्रित थी और भीतर से दुखी होकर उसके सम्बन्ध में पूछा, 'इस बिचारी का क्या हाल है?'

लेडी डाक्टर ने जवाब दिया, 'यह एक हिन्दू अफसर की पत्नी है। पहली बार इसके जिन्दा बच्चा पैदा न हो सका इसलिये इस बार इस का पति ठीक उस समय जब कि इसके बच्चा होने ही वाला था इसे यहाँ ले आया हमारे पास आए इसको तीन दिन हुए। इसका दिल कमज़ोर और दमा है और इसकी एक टाँग भी टूटी है। मुझे लगभग उसी समय इसके

बच्चा जनाना पड़ा और उसी समय इसकी टांग भी ठीक करनी पड़ी। चिमटी से बच्चे निकालने पड़े। मरे हुए जोड़िया बच्चे थे इस लड़की को भी गंदी बीमारी ने भीतर से बरबाद कर रखा है, इसके अब कभी बच्चा नहीं हो सकता। किन्तु ख़याल है यदि इस समय इसे यह मालूम हो जावे तो यह मर जावेगी।

'इसकी आयु? 'तेरह साल कुछ महिने'?'

एक दूसरी पीली लड़की जिसके हाथ एक पक्षी के पञ्जों की तरह थे और जो उन हाथों से काग़ज़ का एक खिलौना पकड़े हुए थी, मेरी ओर देख कर मुसकराई। उसे देखते ही मैंने पूछा, 'इसे क्या हुआ?।

डाक्टर ने कहा, 'आह! यह लड़की एक सरकारी प्राइमरी स्कूल में पढ़ती थी। बड़ी ख़ुश दिल थी, इतनी होशियार थी कि हाल में उसे इनाम मिला था। छुट्टियों में उसका भाई इसे इसके पति के घर छोड़ आया था जिसकी आयु पचास वर्ष को थी। हिन्दुओं में यह बात निन्दनीय नहीं समझी जाती इसलिये वे इसके पति को भद्र पुरुष समझते हैं हम लोगों की नज़रों में वह पशु है × × × इसके साथ जो सलूक हुआ उस से यह लड़की इतनी डर गई कि कुछ बयान तक न कर सकती थी। कई सप्ताह उसकी हालत अधिकाधिक ख़राब होती गई। अन्त को वह बिलकुल पागल होगई। इस पर इसकी बहन जो हमारे यहां इलाज करा चुकी है इसे इसके पति के यहां से भगा कर यहां खेंच लाई।

'मैंने ऐसी औरत कभी नहीं देखी जिसके साथ इतना बलात्कार किया गया हो, इसके अन्दर के ज़ख़्मों में कीड़े पड़े हुए थे। यहां आने के कई दिन बाद तक यह बिस्तरे पर चुपचाप

पड़ी रही। एक शब्द इसके मुंह से न निकलता था—केवल कुछ डरी हुई कुछ भावशून्य आंखों से ताकती थी। एक दिन इत्फाक से एक लड़की इस अस्पताल में आई जिसका हाथ टूट गया था। उसका बिस्तरा इस लड़की के बिस्तरे के बराबर कर दिया गया। मैंने चक्कर लगाते हुए उस लड़की के साथ खेलना शुरू किया। यह लड़की देख रही थी। मालूम होता है कि अब इसे यकीन आया कि शायद इस मकान में हम सब लोग अन्यायी पिशाच नहीं हैं। अगले दिन जब मैं पास से गुजरी यह मुसकराई। उससे अगले दिन इसने पागलों की तरह मेरी गर्दन में हाथ डाल दिये। उसी समय से इसका दिमाग ठीक होने लगा। अभी तक इसका शरीर रोगी है किन्तु इसका मस्तिष्क ठीक हो रहा है। खुश किस्मती से इसकी स्मरण शक्ति इतनी नहीं जागी कि बीमार होने से पहले की दुर्घटनायें इसे याद आजावें। यह यहाँ अपने खिलौने लिये पड़ी रहती है कुछ हैरान सी रहती है अपने निर्बल हाथों से खिलौने लेकर खेलती रहती है और या अपनी बड़ी बड़ी आखों से हम लोगों को कमरे में आते जाते देखती रहती है। यह सन्तुष्ट है! इसे देख कर दया आती है।

इसी बीच इसके पति ने इसके विरुद्ध मुकदमा कायम किया है, इसलिये कि अपने विवाह के अधिकार को फिर से प्राप्त करे और इसे जबरदस्ती अपने यहां लेजाकर रखे। इसकी उम्र अभी १३ साल से कम है।'

इस तरह के पागल होने की अनेक मिसालें मिलती हैं एक बच्चे का कोमल शरीर यदि उसके माता पिता से बजाय अत्यन्त निर्बल शरीर मिलने का उसे बलिष्ट से बलिष्ट शरीर भी क्या न मिला हो इस तरह की ज्यादतियों को कैसे सहन कर सकता

है ? जिस लड़की का ऊपर ज़िक्र किया गया है वह एक ख़ुश-हाल शिक्षित और सभ्य कुटुम्ब की लड़की थी। किन्तु ठीक इसी तरह की एक मिसाल उससे भी छोटी लड़की की वहां से ३०० मील दूर मैंने एक गांव में देखी। इस दूसरी लड़की की बचपन में ही शादी हो गई थी। दस वर्ष की आयु में उसे पति के यहां भेज दिया गया। उसका इतना अधिक लगातार दुरुप-योग किया गया कि वह घबराकर पागल हो गई। इसके बाद पति ने उसे ख़ूब पीटा किन्तु वह केवल एक गठरी की तरह कोने में सिमट कर जा पड़ी और हांफने लगी। बहुतेरी मार पड़ी। किन्तु वह वहां से न हिली। पति ने समझ लिया कि अब इसे रखना व्यर्थ है, इसलिये अन्त में अपने इस बुरे सौदे पर निराश और कुपित होकर पति ने उसके छोटे से शरीर को अपने कन्धे पर डाला, उसे जंगल के सिरे तक लेगया और उसे मरने के लिये झाड़ियों में फेंक आया।

निस्सन्देह यदि एक हिन्दुस्तानी ही जो यह सब घटना देख रहा था एक अङ्गरेज़ मेम से जाकर सब हाल न कहता तो यह लड़की वहीं पड़ी पड़ी मर जाती। यह अङ्गरेज़ स्त्री हाल सुनकर स्वयं जंगल में गई और लड़की को अपने साथ ले आई कहते हैं कि इस भयंकर अत्याचार से उसका मस्तिष्क इतना स्तब्ध हो गया था कि उसे बहुत धीरे धीरे होश आया। किन्तु जब उसे शान्ति और प्रेम से रखा गया जिस तरह कि एक बच्चे को रखना चाहिये तब अन्त में उसका दिमाग़ खुलने लगा। जब मैंने पहिली बार इस लड़की को देखा, अर्थात् उसके जङ्गल में छोड़े जाने के एक साल चार, महीने बाद तब वह एक सुन्दर पुराने बग़ीचे में इधर उधर दौड़ती फिर रही थी दूसरे ख़ुशदिल बच्चों के साथ खेल रही थी और बड़े

सन्तोष के साथ एक गुडिया को लिये हुए थी। उसके अङ्गरेज रक्षक जबतक उसे रख सकेंगे रखेंगे। उसके बाद क्या होगा ? मालूम नहीं।

अधिक उत्तर के सिवाय शेष अधिकाश भारत में आमतौर पर यही हालत है। बम्बई प्रान्त में शिक्षित और उन्नत विचारों की स्त्रियों की सख्या सबसे अधिक है। किन्तु उस प्रान्त में अधिकाश स्त्रियों की स्थिति अन्य प्रान्तों के समान बिलकुल इसके विपरीत है। मिसाल के तौर पर मैंने एक स्त्री देखी जिसके साढे नौ वर्ष की आयु में लडका हो चुका था जिसका वजन चौदह छटाक था। मा का पेट चीर कर बच्चा निकालना पडा था।

बम्बई से एक हजार मील पूर्व में भारत की दूसरी ओर चले आइये तो वहाँ भी आपको यही हालत मिलेगी। वहा एक अस्पताल की सुपरिन्टेन्डेण्ट ने जो एक अत्यन्त योग्य और मेहनती अङ्गरेज लेडी डाक्टर थी मुझसे कहा, 'इन बाल पत्नियों से क्या आशा की जा सकती है? पहली ही बार गर्भवती होने में इनकी तमाम जीवन शक्ति खत्म हो जाती है। इसके बाद उनसे बराबर काम लिया जाता है—क्योंकि बच्चे म के जल्दी जल्दी पैदा होते हैं माताओं को अपने अन्दर बल सचार करने का कोई मौका ही नहीं मिलता। कोई विरला ही बालक ढाई सेर का होता है। आमतौर पर बच्चों का वजन दो सेर के लगभग होता है। बहुत से बच्चे मरे हुए पैदा होते हैं, और जो जिन्दा पैदा होते हैं उनमें भी जीवन शक्ति इतनी कम होती है कि वे आसानी से हरएक बीमारी का शिकार बन जाते हैं। मेरे पास जो मरीज यहा आती हैं वे अधिकतर कालिजों के विद्यार्थियों की ही स्त्रिया होती हैं। इनमें से लग

भग हर एक को आतशक या सूज़ाक़ होता है। जब मैं पहले पहले हिन्दोस्तान आई, मैंने कोशिश की कि इस तरह के प्रत्येक रोगी के माता पिता से जाकर मिलूं और उनसे कहूं कि तुम्हारी लड़की का यह हाल है, इस उम्मीद में कि वे अपनी लड़की के लिये कुछ उपाय करें। किन्तु जब मुझे मालूम हुआ कि अपनी लड़कियों के विवाह करने से पहले ही उनके माता पिता को यह मालूम था कि उनके भावी दामादों को इस प्रकार का रोग है और उन्हें इसमें न कुछ लज्जा मालूम होती थी और न कुछ हानि, तो मैंने इस प्रयत्न को व्यर्थ समझ कर छोड़ दिया। माता पिता इस बात को ज़रा भी दूषित नहीं समझते और न वे इस बात को सोचते हैं कि हम एक बुरी बीमारी आगे की नसल तक पहुंचा रहे हैं।

'अब मैं सोचती यह हूं कि यह देखते हुए कि हमारे अस्पतालों को आर्थिक सहायता की सदा आवश्यकता बनी रहती है, मेरा इन रोगियों को दवा देना कहां तक ठीक है? एक के इलाज पर क़रीब बीस रुपए ख़र्च होते हैं और रोगी औरत जिस दिन अस्पताल से अच्छी होकर घर जाती है उसी दिन पति के संसर्ग से उसे वही रोग फिर लग जाता है। इन क़ीमती बीस रुपए से मैं और बहुत से अच्छे काम कर सकती हूं, लेकिन फिर भी—

अब यदि मद्रास प्रान्त में देखिये, पूर्व या पश्चिम, सब जगह वही रामकहानी सुनाई देती है। एक अत्यन्त अनुभवी लेडी सर्जन ने मुझसे कहा, 'इस देश में अधिकांश स्त्रियों के लिये विवाह एक घातक शारीरिक आपत्ति है। सम्भव है कि लड़की के एक या दो तन्दुरुस्त बच्चे पैदा हो जावें किन्तु इस बीच स्वयम माता के शरीर में गन्दी बीमारी लग

जाने के कारण अथवा अत्याचार के कारण नष्ट और पङ्गुल हो चुकता है। मैं ने स्त्री रोग सम्बन्धी हजारों रोगियों का इलाज किया है और अब भी कर रही हूँ किन्तु मुझे एक भी रोगी स्त्री ऐसी नहीं मिली जिसे किसी ने किसी तरह की गन्दी बीमारी न हुई हो"।

हिन्दोस्तान के दूसरे प्रान्तों में भी, दूसरे डाक्टरों और लेडी डाक्टरों ने, जिनमें कुछ यूरोपियन और कुछ पश्चिमीय शिक्षा प्राप्त हुए भारतवासी थे, सब ने मुझे इसी तरह के बहुत से हाल सुनाए जिनसे छोटी लड़कियों के माताएं बनजाने के इन सब दुष्परिणामों का समर्थन होता है। मा का शरीर तपेदिक के लिये अधिकाधिक तय्यार होता जाता है, उसके भीतर के अङ्ग अपक उलट पुलट हो जाते हैं, उसकी कोमल और अपक्व हड्डियाँ और नरम पड़ जाती हैं, क्योंकि उसकी कमर की हड्डी और बच्चेदानी पर बेहद जोर पड़ता है, थोड़े ही समय में वह भीतर से इतनी बरबाद हो जाती है कि फिर बच्चा होना कठिन हो जाता है; उसे हिस्टीरिया और मस्तिष्क के रोग हो जाते हैं, उसकी मानसिक और शारीरिक बाढ़ बिलकुल रुक जाती है।

एक लेडी डाक्टर जिसे आजकल के भारत वर्ष का बल अनुभव है कहती है,—'हिन्दुस्तानी स्त्रियों में फी सदी बहुत कम मुझे तन्दुरुस्त और मजबूत मालूम होती हैं। मुझे इसका कारण यह मालूम होता है कि गन्दी बीमारियों के लग जाने और विषयभोग की अधिकता के कारण उनके मस्तिष्क रोगी हो जाते हैं और उनकी मानसिक शक्तियाँ खुलने नहीं पातीं। इन के साथ आम तौर पर दिन में दो दो और तीन तीन बार भोग किया जाता है।

तैंतीस साल हुए, जब भारतीय व्यवस्थापिका सभा में 'सहवास स्वीकृति की आयु' सम्बन्धी बिल पर बहस हो रही थी, उस समय जितनी लेडी डाक्टर भारतवर्ष में काम कर रहीं थीं उन सब ने मिलकर वाइसराय के सामने एक मेमोरियल और प्रार्थनापत्र पेश किया जिसमें सरकार से यह प्रार्थना की गयी थी कि जिन लोगों की सहायता के लिये हम सबने अपना जीवन अर्पण कर रखा है उनकी सरकार रक्षा करें। इस प्रार्थनापत्र में इन्होंने यह लिखते हुए कि हम केवल इस तरह की साफ़ गो मिसालें पेश करती हैं, जो कि हम में से किसी न किसी के साधारण व्यक्तिगत अनुभव में आई हैं, नीचे लिखे अनुसार कुछ रोगियों का हाल दिया कि इलाज शुरू कराने के समय उनकी क्या हालत थी:

'अ—आयु ९ साल, विवाह से अगले दिन ही जांघ की हड्डी उतर गई, कोख इतनी कुचल गई की पहचानी न जा सकती थी। मांस के चीथड़े लटक पड़े।

ब—आयु १० साल। खड़ी नहीं हो सकती, खूब रक्त बह रहा था, मांस के चीथड़े हो गए।

च—आयु ९ साल। इतनी बुरी तरह से बलात्कार किया गया है कि डाक्टरी द्वारा उसके अङ्गों को ठीक कर सकना लगभग असम्भव है, इसके पति के दो और बीवियां थीं जो दोनों ज़िन्दा थीं वह बहुत सुन्दर अङ्गरेज़ी बोलता था।

'ई—आयु लगभग ७ साल। अपने पति के साथ रहती थी। तीन दिन के बाद तीव्र यातनाओं के साथ मर गई।

'म—आयु लगभग १० साल। अपने हाथों और घुटनों के बल रेंगकर अस्पताल आई। जब से इसकी शादी हुई है कभी सीधी खड़ी नहीं हो सकी।

मूल सूची इससे बडी है उसे मे इस पुस्तक के अन्त मे दे रही हू।

यह बात सन् १८६१ की थी। सन् १६२२ में यह विषय फिर बडी व्यवस्थापिका सभा के सामने आया। लेडी डाक्टरों का यही प्रार्थना पत्र पेश किया गया क्योंकि इतने वर्ष बीत जाने के बाद भी हालत वही थी। इस बात की सच्चाई पर न किसी ने एतराज़ किया और न कर सकता था। जिस अङ्गरेज ने इस बार अपनी बहस मे इस प्रार्थना पत्र का जिक्र किया वह उसे ऊचे स्वर में पढकर सुनाना गवारा न कर सका। किन्तु जो बिल उस समय पेश था उस पर बहस करते हुए अन्त में उसने कहा कि —

"बहुत से लोगों ने कहा है कि इस बिल से आन्दोलन होने का डर है। आन्दोलन को कोई इतना नापसन्द नहीं करता जितना में करता हू। म तो आन्दोलन से उकता गया हूँ। किन्तु जनाब जब स्त्रियों और बच्चों की जिन्दगियों का सवाल आता है तो में ड्यूक आफ वैलिङ्गटन के शब्दों में केवल यही कह सकता हू कि "आन्दोलन करो और जहन्नुम जाओ।"

मि० गान्धी ने अपने २६ अगस्त सन् १६२६ के यंग इण्डिया में पृष्ठ ३०२ पर अपने नाम से 'बालविवाह का शाप' शीर्षक एक लेख प्रकाशित किया है। उसमें उन्होंने कहा है।

'बाल विवाह हमारे हजारों होनहार लडकों और लडकियों की जिन्दगियों पर कुठार चला रहा है जिन ज़िन्दगियो पर कि हमारे समाज का भविष्य सर्वथा निर्भर है।

'बाल विवाह प्रतिवर्ष हज़ारो निर्बल लडको और लडकियो को पैदा कर देता है जिनके माता पिता के शरीर भी अभी पक्के नहीं होते।

'बच्चों की भयंकर मृत्यु संख्या और मरे हुए बच्चों का पैदा होना जो इस समय हमारी समाज में फैला हुआ है इस सब का एक अत्यन्त उपजाऊ कारण बाल-विवाह ही है।

'हिन्दू समाज के (१) संख्या (२) शारीरिक बल और साहस और (३) सदाचार की दृष्टि से लगातार धीरे धीरे गिरते जाने का यह एक महत्वपूर्ण कारण है'।

जितना मनोरञ्जक मिस्टर गान्धी का लेख है उतना ही मनोरञ्जक इसका वह जवाब भी है जो तुरन्त एक ऐसे भारतीय सज्जन ने दिया, जिसे मिस्टर गान्धी स्वयम बतलाते हैं। कि 'समाज में उसका पद उच्च है।' यह सज्जन ६ सितम्बर के यङ्ग इण्डिया में लिखता है कि :—

" बाल विवाह के " ऊपर आप का लेख पढ़ कर मुझे बहुत बड़ा दुःख हुआ × × ×।

'मैं नहीं समझ सका कि जिन लोगों के विचार आप से नहीं मिलते उनकी ओर आप उदार भाव क्यों न दिखला सके × × × आप का यह कहना मुझे अनुचित मालूम होता है कि लोग बाल विवाह पर ज़ोर देते हैं वे "पाप में डूबे हुए हैं' × × ×।

'बाल विवाह का रिवाज किसी एक प्रान्त या श्रेणी विशेष तक परिमित नहीं है. यह भारत में लगभग सब जगह है × × ×।

'बाल विवाह के विरुद्ध ख़ास एतराज यह किया जाता है कि उससे माता और उसके बच्चों दोनों का स्वास्थ्य कमज़ोर हो जाता है। किन्तु नीचे के कारणों से यह एतराज़ अधिक लगता हुआ नहीं है। आजकल विवाह की आयु हिन्दुओं में बढ़ती जाती है. किन्तु जाति दिन पर दिन निर्बल

होती जाती है। आज से पचास या सौ साल पहले पुरुष स्त्री आम तौर पर आजकल के पुरुष स्त्रियों से अधिक बलवान, अधिक स्वस्थ और अधिक आयु के होते थे। × × × किन्तु उस समय बाल विवाह का अधिक प्रचार था। × × × इन घटनाओं से यह सम्भव मालूम होता है कि बाल विवाह हमारे शरीरों को उतनी हानि नहीं पहुँचाता जितनी कि कुछ लोग समझते हैं × × ×।

इस अन्तिम पेरे में जिस प्रकार की दलील दी गई है वह भारत वासियों में ऐसी आम है कि उस पर कुछ और कहे बिना नहीं रहा जा सकता। लेखक को अपने दादाओं की क्रिया और उनके पोतों की अवस्था में कोई सम्बन्ध दिखाई नहीं देता, यद्यपि उसने अपने हाथ से ही कागज के ऊपर लिखकर वह सम्बन्ध दिखला दिया है।

मि० गान्धी ने अपना काम जारी रखा उन्होंने और भी इस तरह के पत्र छाप दिये जो उनके मूल लेख के जवाब में आए थे। किन्तु मि० गान्धी की आवाज नक्कारखाने में तूती की आवाज है। ७ अक्तूबर सन १९२६ के यंग इण्डिया में पृष्ट ३४९ में मि० गान्धी एक बंगाली हिन्दू स्त्री का पत्र छापते हैं जो लिखती है कि —

'मैं नहीं जानती कि आपने हिन्दू समाज की असहाय बाल पत्नियों का जो पक्ष लिया है उसके लिये आप को किस तरह धन्यवाद दूँ × × × हम स्त्रियाँ हमेशा अपने दुख के भार को चुप चाप और नम्रता से सहन कर लेती हैं। हमारे अन्दर इतनी शक्ति ही नहीं रह गयी कि स्वयम किसी भी बुराई के विरुद्ध लड सकेंगी।'

इसके जवाब में मि० गान्धी ने अपने अनुभव से कुछ

मिलाते थे, मतलब यह कि एक साठ वर्ष के बूढ़े शिक्षा विभाग के आदमी ने ८ वर्ष की लड़की से शादी की और जनता में उसके आदर में कोई अन्तर नहीं पड़ा। किन्तु अन्त में मि० गान्धी ने एक नई और खास बात कही, उन्हों ने हिन्दोस्तान की उन स्त्रियों को जो पाश्चात्य शिक्षा पाए हुए हैं और अपनी शक्ति राजनीति में वक्तृताएं देने में और थोथी बातों में व्यतीत करती हैं और हिन्दोस्तान के इस महत्वपूर्ण कार्य की अवहेलना करती हैं जिसे केवल वेही कर सकती हैं, दोष ठहराया। मि० गान्धी ने लिखा कि:—

'बहुतसी औरतें सदा पुरुषों पर दोष लगाती हैं और अपनी आत्माओं को सन्तुष्ट कर लेती हैं! × × × वे बातें तो स्त्रियों के लिये वोट के अधिकार के लिये लड़ सकती हैं। इसमें न समय लगता है और न कुछ कष्ट उठाना पड़ता है। इससे मनोरंजन का उन्हें एक सरल साधन मिल जाता है किन्तु वे बहादुर स्त्रियां कहां हैं जो बाल पत्नियों और बाल विधवाओं में काम करें, और जो उस समय तक जब तक कि बालविवाह असम्भव न होजाये न स्वयम चैन लें न पुरुषों को चैन लेने दें?'

इन प्रश्नों का ज़िक्र करने में यह एक रिवाज सा हो गया है कि लोग इन बातों के असली रूप पर पर्दा डालने और इन्हें जल्दी से टाल देने का प्रयत्न करते हैं। मैंने अनुभवशील पादरियों के तजुर्बे से इस विषय में अधिक ज्ञान प्राप्त करने के लिये उनकी रिपोर्टों को पढ़ा। तो इन रिपोर्टों में लज्जाजनक बातों के स्थान पर केवल बिन्दु दे दिये गए हैं और इस प्रकार इन बातों को मानो समाधि देदी गई है। कारण यह है कि भारत के ईसाई पादरियों को पहले यूरोप के उन लोगों

का ख्याल करना पडता है जो उन्हें रुपए भेजते हैं और जिन-की मेजों पर इन पादरियों की रिपार्ट रखी जावगी, इसके बाद इन्हें उन तुनक मिजाज भारत वासियों का ख्याल करना पडता है जो यदि इन पादरियों से नाराज हो जाय तो इन्हें भारत में कुछ भी सफलता न हो सकती इसके अतिरिक्त साधारण यूरोपियन जिन्हें ये घटनाए मालूम भी हैं उन्हा ने इनको वर्णन करने के बजाए उन्हें ढकने का प्रयत्न किया है और भारतीय जीवन के इन धब्बों को थोथे वाक्यों में ढक दिया है। इसके दो कारण हैं, एक यह कि, ये लोग नहीं चाह-ते थे कि भारतवासी इनसे नाराज हो क्योंकि इससे भारत-वासी ससार की नजरो में गिर जाते और भारतवासी इस गिरने का कारण न अनुभव करते हैं और न समझ सकते हैं, दूसरा करण यह है कि ये यूरोपियन पाश्चात्य पाठक के चित्त को भ्रष्ट करना नहीं चाहते।

फिरभी इसी तरह के मामलो में सच्चाई को ढकना या उसे दबाना, धोखा देना है। क्योंकि बहुत कम पाश्चात्य पाठक ऐसे हैं कि जिनसे जब तक उनसे स्पष्टवादिता न की जावे फावडे को फावडा न बताया जावे, तबतक वे स्थिति का अनुमान कदापि नहीं कर सकते। यदि कोई वास्तव में यह चाहता है कि हिन्दोस्तान के प्रश्नो को समझे तो महात्मा गाधी के शब्दो म उसके लिये यह आने को धोखा देना होगा जो ससार में सब से बडा पाप है, यदि वह भारतीय जीवन के इन मौलिक मामलो को आख खोल कर न देखे, और यदि कोई मनुष्य इस विषय को टाल देना चाहता है तो उसको जरा यह सोचना चाहिऐ कि उसे इस प्रकार अपने तई प्रसन्न कर लेने का क्या हक है, उसे क्या

दूसरा भाग

ग्रांड ट्रंक रोड

गौंधर के पास ग्रांड ट्रङ्क रोड है। काली, नङ्गी, नोकीली पहाडियां अपनी घाटियों को आंख फाडे देख रही हैं। दोनों ओर कबीलों के लोगों के ग्राम हैं—हर मकान एक अलग छोटा सा दुर्ग मालूम होता है। चारो ओर ऊंचे लडाई के गढे हैं जिनकी मिनारें इर्द गिर्द के ऊंचे धुस्सों के ऊपर से दिखलायी देती हैं। इन धुस्सों में बन्दूकों के लिये सूराख बने हुये हैं।

यदि आप किसी मकान के मालिक से पूछें कि तुम्हारा पेशा क्या है? तो वह उत्तर देगा मेरा पेशा और क्या हो सकता है? वही जो मेरी कौम का पेशा है, हम लोग छापे मारते हैं।'

वे सडक पर गोली नहीं चलाते क्योंकि सडक सम्राट की है। किन्तु सडक के दोनो ओर उनका देश है। वहाँ वे जिधर चाहें गोलियाँ चलाते हैं। इन लोगों का समस्त 'जीवन युद्ध है, कबीला कबीले से युद्ध करता है, एक घर दूसरे घर से, एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से, तथापि मुसलमान हो या हिन्दू वे सब इसी में बहुत प्रसन्न रहते हैं। वहाँ की पहाडियां वृक्ष शून्य हैं। भोजन की सामग्री बहुत कम मिलती है, और जीवन का आनन्द इसी में है कि घात से छिपकर मनुष्यों का शिकार किया जावे और इसी में पूरी चतुराई दिखाई जावे।

दो मील तक लगातार से शानदार ऊंट की क़तार दुम से नाक और नाक से दुम मिली हुई रुई और चीनी लादे हिन्दोस्तान से एशिया को शान से झूमती हुई जा रही है और इसी तरह से एक दूसरी क़तार नाक से दुम और दुम से नाक मिली हुई एशिया का माल हिन्दोस्तान ला रही है अफ़रीदी सिपाहियों के हथियार वन्द गारद इनके साथ हैं। जगह जगह हथियार-बन्द सिपाहियों की चौकियां हैं। जगह जगह सड़क के किनारे सायदार जगह बनी हुई है कि जिनमें से छुप कर तीन चार तेज़ निसाने वाज़ वन्दूक़ चला सकें। कांटेदार तारों की बाड़ लगी हैं। उसी पर सरहदी क़बीलों के लोग पैदल चल रहे हैं। उनके वाज़ की सी तेज़ आंखें हैं और बाज़ की सी तेज़ नाकें। हरेक के पास दो दो बन्दूकें हैं और इस तलाश में हैं कि कहीं शिकार मिलजाय। खटखट करते हुए पलटन नं० २ का एक दस्ता अङ्गरेज़ सिपाहियों का वहाँ से निकला—गोरे रङ्ग के लड़के फुर्तीले तेज़ नज़र आते थे। जिन्हें वहाँ देख कर आश्चर्य होता था कि ये यहाँ क्या करते हैं किन्तु वास्तव में यह उन्हीं का प्रताप है जिसके कारण आज कोई हिन्दू खैबर तक जाने का साहस कर सकता है। परन्तु जब तक इङ्गलिस्तान का शान्तिप्रद राज्य वहाँ तक नहीं पहुंचा था, कोई हिन्दू सिवाय इसके कि स्त्री का वेश धारण कर छुप छुप कर निकल आवे खैबर से जिन्दा बचकर नहीं आ जा सकता था।

ग्रांड ट्रंक रोड दक्षिण की ओर बढ़ी चली जाती है। चौड़ी, साफ़ शान्त नदी के समान जिसके ऊपर विचार शून्य लोग बतौर लहरों के चले जाते हैं। इसके दोनों ओर तरह तरह के बन्दर खेलते हैं। मोर, हिरन, ऊटों के गल्ले के गल्ले

जिनकी छोटे नगे लडके बडी योग्यता से रखवाली करते थे।
— धूल का तूफान-बादाम की सी आखवाले सफेद-बैल जिनकी गर्दनों और सींगों पर नीले गोल पत्थरा की लड़ियां लिपटी हुई थीं और जो जापान के लिये रुई की भरी गठडियां खेंच रहे थे। गाव-इधर उधर खुले मैदानों में बसे हुये, कहीं पास पास, कहीं मीलों के फासिले पर। यही हिन्दोस्तानियों के असली निवास स्थान है। गाव क्या है मुट्ठी भर गारे की दीवारों के चन्द झोपडे हैं। गड्ढा खोद खोद इन दीवारों को बनाया है वही गड्ढा इनका अब जल कुण्ड हो गया है आधा सूखा आधा स्थिर, गदले पानी से भरा हुआ जिसमें ये लोग नहाते हैं, धोते हैं, और अपनी प्यास बुझाते हैं। हिन्दोस्तान की समस्त आबादी में से ९० फी सदी इसी तरह के ग्रामों में रहते हैं। हिन्दू और मुसलमान दोनों एक समान, परिश्रमी, हल जोतने वाले, सादे, अशिक्षित, शान्त और दयालु होते हैं सिवाय इसके कि जब कोई चुपके से उनमें जाकर वहा फसाद मचाने लगे।

सूर्य अस्त हो रहा है। मानों पृथ्वी से दश फुट ऊचाई पर मुह पर नीली बारीक नकाब छोडे एक प्रेत आत्मा चली जा रही है। धीरे धीरे यह नकाब रोशनी के नीले किरणों में परिवर्तित हो कर चारो ओर फैलती जाती है, तेज होती जाती है, यहाँ तक कि वायु मडल, ऊचे वृक्ष, और आकाश के तारागण सब इसकी नीले प्रकाश में विलीन हो जाते हैं। रात्रि हो गयी, ग्राम ग्राम में चूल्हे जलने लगे। इनसे उठे हुये धुयें ने चारो ओर फैल फैल कर वायुमडल को दूषित और सार हीन कर दिया। इसी समय अँधकार में इन आहुतियों से उत्पन्न होने वाले धुयें की वन्दना से ये मुग्ध हो कर भारत

माता अपना विराट रूप दिखलाती है, ऐसा जान पड़ता है मानो सांयकाल की आभा से परिप्लावित वृक्षों के पीछे अपने बच्चों की रसोईयों से निकले हुए धुयें की नक़ाब से शरीर को ढ़के हुये, नीले आसमान के तारों से अपने केशों को सुशोभित किये यह माता देश के बच्चों के लिये ईश्वर से हाथ फैला कर प्रार्थना कर रही है।

इसके अतिरिक्त ग्रांड ट्रङ्क रोड वैसोही है जैसा 'किम' में वर्णित है। उसे फिर पढ़िये, कारण उसकी एक एक बात सत्य है। ज़मजमाह अभी तक लाहोर में मौजूद है। महबूब अली को मरे तीन साल हो गये। किन्तु उसके दो बेटे इस समय इंगलिस्तान में शिक्षा पारहे हैं। और वृद्धा अभी तक अपनी बैल गाड़ी में सफ़र करती है और परदे में से उसकी तेज़ पतली आवाज़ धूलके मंडल को चीरती अब भी सुनायी दे जाती है।

छठवा परिच्छेद

पति परमेश्वर

एक कीमती सुन्दर मोटरकार जो महाराजा साहब ने भेजी थी हमें गैस्ट हाउस से महल की ओर उडाये लिये जा रही थी। मेरे साथ महाराजा का एक खास निजी कर्मचारी था, वह एक ऊंची जाति का सनातनी ब्राह्मण विद्वान था जिसे यूरोपियन पौशाक खूब फबती थी। वह बात चीत करने और समझाने के लिये पहले ही से तय्यार मालूम होता था।

मैंने उससे पूछा, 'फर्ज कीजिये कि आपके एक छोटी सी लडकी है। आप उसकी शादी किस उम्र में करेंगे ?'

उसने बढ़िया अङ्गरेजी में उत्तर दिया, 'पाच साल की उम्र में—किन्तु निस्सन्देह मुझे उसका नौवा साल समाप्त होने से पहले उसका विवाह कर ही देना पडेगा।'

'और यदि आप न करें, तो दण्ड क्या ? और किसे भोगना होगा ?'

'दण्ड मुझे भोगना होगा, मुझे जाति वाले जाति से निकाल देंगे। कोई जाति वाला न मेरे साथ खाएगा, न मुझे पानी पीने को देगा, न मुझे किसी सम्कार म बुलायेगा। मेरे लडके को विवाह के लिये कोई अपनी लडकी न देगा, अर्थात् मेरे पुत्र के कोई जायज पुत्र न होगा। वास्तव में मेरे सामाजिक अस्तित्व का फिर अन्त हो जायगा। जाति का कोई भाई मेरे मरने पर मुझे स्मशान तक ले जाने के लिये कन्धा

भी न देगा। और अगले जन्म में मुझे इससे अधिक यातना भोगनी पड़ेगी।'

'और स्वयम लड़की की क्या दशा होगी?'

'लड़की की? हां, ठीक। हमारे नियम के अनुसार मेरे लिये आवश्यक हो जायगा कि उसे अपने घर से निकाल कर अकेला जङ्गल में छोड़ दूं। वहां पर मुझे उसे ख़ाली हाथ छोड़ देना होगा। इसके बाद मैं उससे कोई सम्बन्ध नहीं रख सकता और न कोई हिन्दू उसे भोजन दे सकता है और न जङ्गली जानवरों से उसकी रक्षा कर सकता है यदि कोई ऐसा करे तो वह पाप उस पर भी पड़ेगा।'

'क्या सचमुच आप अपनी लड़की को इस तरह निकाल देंगे?'

'नहीं; क्योंकि उसका अवसर ही नहीं आ सकता। मैं हरगिज़ ऐसा पाप कर ही नहीं सकता जिसका मुझे यह दण्ड भोगना पड़े।'

यह बात ध्यान देने योग्य थी कि इस चित्र में उस सज्जन को सिवाय आपके कोई दुखिया दिखाई ही न देता था।

हिन्दुओं के यहां लड़की आमतौर पर एक भारी ऋण का बोझ समझी जाती है। लड़की के जन्म पर कुटुम्ब के मित्र आकर बाज़ाब्ता शोक और सहानुभूति प्रकट करते हैं। तथापि इस तरह का गवाह आदमी को प्रायः नहीं मिलता जैसा कि एक चलता पुर्ज़ा खुशहाल बूढ़ा हिन्दू ज़मीदार था जिसने मुझ से कहा कि: 'मेरे बारह बच्चे हुए। दस लड़कियां; जो स्वभावतः जीवित न रहीं वास्तव में इतना भार कौन सहन कर सकता! दोनों लड़के, बेशक, मैंने ज़िन्दा रखे।'

सर माइकेल ओड्वायर जिन दिनों भरतपुर में कमिश्नर

बन्दोबस्त थे उस समय की उन्होंने इसी तरह की स्पष्टवादिता की एक और मिसाल दी है। वह अपनी पुस्तक 'इण्डिया ऐज़ आई न्यू इट' में लिखते हैं,—

'महाराजा की बहन का विवाह पञ्जाब के एक बडे सरदार के साथ होने वाला था। महाराजा खुद नाबालिग थे। घर के लोगों ने ऐसे अवसरों पर जिस तरह फजूल खर्ची की जाती है उसके अनुसार जोर दिया कि ३० हजार पौण्ड से ४० हजार पौण्ड तक विवाह के लिये मन्जूर किया जावे। रियासत कौन्सिल के स्थानीय सदस्यों ने भी इसका समर्थन किया। रियासत उस समय अङ्गरेज सरकार की निगरानी में थी। जोर का दुष्काल और महगी पडी हुई थी। इसलिये पोलिटिकल एजण्ट ने और मैं ने इस तरह की फजूल खर्ची का कड़ा विरोध किया। अन्त मे पूरी कौन्सिल के सामने मामला पेश हुआ। मैं ने कौन्सिल के सब से बूढे सदस्य से पूछा कि, 'पहले ऐसे अवसरों पर क्या होता रहा है? पहले महाराजाओं की लडकियो या बहनों के विवाहों में क्या खर्च होता रहा है? उसने सिर हिलाकर कहा कि, पहले कभी ऐसा कोई अवसर आया ही नहीं'। मैं ने कहा, "यह कैसे हो सकता है?—रियासत दो सौ वर्ष से अधिक पुरानी है, और बिना किसी के गोद लिये पिता के बाद पुत्र, ग्यारह महाराजा गद्दी पर बैठ चुके हैं, क्या आप यह कहना चाहते हैं कि कभी किसी के लडकी पैदा ही नहीं हुई?"। बूढा आदमी कुछ देर झिझका, फिर कहने लगा, 'साहब आप हम लोगों के यहाँ के रिवाज खूब जानते हैं, निस्सन्देह आप कारण भी जानते हैं। लडकियाँ पैदा तो हुई थीं, किन्तु इस पीढी से पहले उन्हें बडा नहीं होने दिया जाता था।" और

बात सच्ची थी।'

किन्तु हमें यह भी याद रखना चाहिये कि लड़कियों के मार देने का रिवाज, न केवल प्रारम्भिक मनुष्य जातियों में ही बल्कि यूनान में, रोम में और लगभग समस्त ऐतिहासिक जातियों में सिवाय उनके जिनपर इसाई या मुसलमान सभ्यताओं का प्रभाव पड़ा है, सब में आम रहा है। आज-कल हिन्दोस्तान में सरकारी क़ानून से यह बात बन्द है, तथापि चूंकि इस पर छिपा कर अमल करना इतना आसान है इसलिये यह प्राचीन प्रथा, मालूम होता है, देश के बहुत से हिस्सों में अभीतक क़ायम है।*

इस तरह के मामलों में ठीक तादाद मालूम हो सकना कठिन है, जैसा कि हम आगे चलकर इसी परिच्छेद में दिखावेंगे। किन्तु बड़ी लड़कियों के विषय में संयुक्त प्रान्त की मर्दुमशुमारी के सुपरिन्टेन्डेण्ट का निम्न लिखित बयान बड़ी एहतियात से और बना कर लिखा गया है। उसमें लिखा है:—

जहाँ तक मैं समझता हूँ लड़कियों की ओर से कोई क्रियात्मक घृणा लोगों के दिलों में नहीं है......किन्तु यदि क्रियात्मक घृणा नहीं है तो निस्सन्देह लड़कियों की अवहेलना अवश्य की जाती है। "बेटे की रक्षा माता पिता करते हैं और बेटी की रक्षा ईश्वर करता है।" लड़की को उतने अच्छे कपड़े नही पहनाए जाते। जब वह बीमार होती है उसकी ओर इतना ध्यान नहीं दिया जाता। जब वह अच्छी होती है तो उसे लड़के से कम और घटिया खाना दिया जाता है। यह ज़ुल्म के ख़्याल से नहीं

* सेन्सस आफ़ इण्डिया, जिल्दएक भाग एक सन १९२१

किया जाता और न वे परवाही के कारण ऐसा होता है। इसका कारण केवल यह है कि लडकी से लडके को पसन्द किया जाता है, और तमाम ध्यान खबरगीरी और उत्तम पदार्थ लडके पर न्योछावर किये जाते हैं, जब कि लडकी को जो कुछ माता पिता और भाई तीनों से बचे उसी से सन्तुष्ट रहना पडता है। नतीजा यह होता है कि लगभग सदा एक और पाँच वर्ष के बीच की लडकियों की मृत्यु संख्या उस उम्र के लडकों की मृत्यु संख्या से कुछ न कुछ अधिक रहती है*।'

लोग लडकियाँ नहीं चाहते। इस की एक मिसाल बङ्गाल के अस्पताल में एक ऐसी घटना में मिली जिसमें अकस्मात में स्वय मौजूद थी। पाँच या छै साल की एक लडकी कुएँ में गिर पडी। इसके सिर पर बडी चोट आई।। उसकी माँ बेहोश लडकी को गोद में लिये हुए जिसके खून बह रहा था अस्पताल में भागी हुई आई। एक दो दिन में लडकी का जबडा बन्द हो गया। लडकी उस समय मृत्यु के द्वार पर पडी हुई थी। उसकी पीडा इतनी अधिक थी कि देखी न जाती थी। कष्ट बढ रहा था और माँ दुख और त्रास की मूर्ति बनी हुई उसके पास चिपटी बैठी थी और जब कि अङ्गरेज लेडी डाक्टर इलाज कर रही थी माँ अपनी बेटी के अच्छे होने के लिये देवताओं से प्रार्थनाएं कर रही थी। अचानक उसी बिस्तरे के पास एक बंगाली बाबू आकर खडा हो गया। यह कोई छोटा कर्मचारी या क्लर्क रहा होगा।

उसने डाक्टर से कहा, 'मिस साहब मैं अपनी पत्नी को लेने आया हूँ।'

---

* मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट १९११ जिल्द १५, पृष्ठ १९०

डाक्टर ने सख़्ती से जवाब दिया' 'तुम्हारी पत्नी ! देखो तुम्हारी पत्नी की क्या हालत है। अपने बच्चे की तरफ़ देखो तुम कह क्या रहे हो।'

उसने जवाब दिया, मैं यह कह रहा हूँ कि मैं अपनी पत्नी को तुरन्त घर ले जाने के लिये आया हूँ, ताकि वह मुझे पत्नी की तरह काम दे सके।'

'किन्तु यदि तुम्हारी स्त्री बच्चे को इस समय छोड़ कर जायगी तो तुम्हारा बच्चा मर जायगा। तुम इस समय उन दोनों को अलग नही कर सकते—देखो।' इस पर बच्ची जो किसी न किसी तरह उस घातक पीड़ा के समय भी बाप की धमकी समझ गई थी, रोने लगी और अपनी माँ से चिपट गई।

माँ फ़र्श पर लेट गई। उसने अपने पति के घुटने पकड़ लिये, उससे याचना की, उसके पैर चूमा और हिन्दोस्तानी तरीक़े से दोनों हाथों से उसके पैरों की धूल लेकर अपने माथे पर लगाई। वह रोकर कहने लगी, स्वामी मेरे स्वामी दया करो !

उसने जवाब दिया, 'चलो, मुझे तुम्हारी आवश्यकता है। तुम बहुत देर मुझ से अलग रह चुकी।'

'मेरे स्वामी—लड़की-छोटी सी लड़की-मेरे स्वामी।'

उस मनुष्य ने प्रार्थी पत्नी को अपने पैर से ठोकर मारी और फिर यह कह कर कि मुझे जो कहना था कह चुका। बिना एक और शब्द कहे बिना पीछे मुड़ कर देखे ड्योढ़ी की तरफ़ जाकर वह सूरज की खुली रोशनी में चला आया।

स्त्री उठी, लड़की चीख़ी, लेडी डाक्टर वर्षों से इस तरह की बातें देख रही थी तथापि उसे विश्वास न हुआ। उसने

चिल्ला कर पूछा, 'क्या तुम पति का कहना मानोगी ?'

स्त्री ने ठण्डी सांस भरकर कहा, 'मैं आज्ञा भंग करने का साहस नहीं कर सकती'—और अपने दुखित चेहरे पर कपड़ा खींचकर वह अपने पति के पीछे एक डरे हुये निर्बल पशु की तरह दौड़ी'। जो लड़कियाँ नौवें या बारहवें वर्ष में या इससे भी पहले पति के यहां चली जाती हैं, उन्हें किताबों से शिक्षा ग्रहण करने का न समय मिल सकता है और न मौका। किन्तु निस्सन्देह वह दो बातें सीख लेती हैं। एक, अपने पति की ओर धर्म और दूसरा, उन देवताओं या शैतानों की ओर धर्म जिनका उनसे सम्बन्ध होता है। पति की ओर धर्म प्राचीन समय से पद्म पुराण में इस प्रकार बयान किया गया है—

'स्त्री के लिये अपने पति के सिवाय इस पृथ्वी पर और कोई देवता नहीं है। अच्छे से अच्छा कार्य जो एक स्त्री कर सकती है वह यह है कि अपने पति की ओर पूर्ण आज्ञा पालन दिखला कर उसे प्रसन्न करने का प्रयत्न करे। यही उसके जीवन का एक मात्र लक्ष्य होना चाहिये।

पति चाहे कुरूप, बूढ़ा, निर्बल, दुराचारी भी क्यों न हो, चाहे वह क्रोधी, विषयी, बदचलन, शराबी, जुआरी भी क्यों न हो, चाहे वह गन्दी जगहों में क्या न जाता हो, दूसरी स्त्रियों के साथ खुला व्यभिचार क्यों न करता हो, अपने घर के लिये सर्वथा स्नेह शून्य ही क्यों न हो, पागल की तरह क्यों न बकता रहता हो, बेइज्जती का जीवन क्यों न व्यतीत करता हो, चाहे वह अन्धा, बहरा, गूंगा या अपाहज ही क्यों न हो, सारांश यह कि चाहे उसमें कितने भी दोष क्यों न हों, उस में कितने ही पाप क्यों न हों, पत्नी का कर्तव्य सदा यही

है कि उसे अपना देवता समझे, अपना समस्त ध्यान और सेवा उस पर न्योछावर करे, उसके चरित्र का तनिक भी ख़्याल न करे और उसे नाराज़ होने का कोई भी मौक़ा न दे। × × ×

'पत्नी का धर्म है कि केवल उस समय भोजन करे जब कि उसका पति अपना पेट भरचुका हो। यदि पति उपवास करे स्त्री को भी उपवास करना चाहिये; यदि पति भोजन को स्पर्श न करे तो स्त्री भी भोजन को स्पर्श नहीं कर सकती, यदि पति दुःखी है तो स्त्री को दुःखी होना चाहिये, यदि पति सुखी है तो पत्नी को उसके सुख में भाग लेना चाहिये......पत्नी को चाहिये कि पति के मरने पर स्वयं अपने तईं उसी चिता के ऊपर जिन्दा जला डाले, तबही हर कोई उसके गुणों की प्रशंसा करेगा। × × ×

'यदि पति गावे तो पत्नी को वाह वाह करनी चाहिये, यदि पति नाचे तो पत्नी को उसकी ओर देख कर ख़ुश होना चाहिये, यदि पति विद्वता की बातें करे तो पत्नी को सुन कर उसकी प्रशंसा करनी चाहिये। वास्तव में पति के सामने पत्नी को सदा प्रसन्न रहना चाहिये, और कभी रंज व असन्तोष के चिन्ह अपने चेहरे पर न लाने चाहिये।

'स्त्री को चाहिये कि ध्यान के साथ इस बात का ख़्याल रक्खे कि अपने माता पिता का ज़िक्र करके घर में झगड़े न खड़े करले, वा यदि उसका पति किसी दूसरी स्त्री को रखना चाहता हो तो उसका ज़िक्र करके, वा यदि पति ने उससे कोई कटु वाक्य कह दिया हो तो उसके कारण घर में झगड़े खड़े न करे। यदि स्त्री इस तरह के कारणों से घर छोड़ देगी तो लोग उसका मज़ाक़ उड़ावेंगे और उसकी बहुत बुराइयाँ करेंगे।

'यदि पति क्रोध में आजाय, उसे धमकी दे, उसे बुरी तरह गालियाँ दे, वा उसे निरपराध पीटे तो भी स्त्री का धर्म है कि नम्रता से उसकी बातों का उत्तर दे, उसके हाथ पकड़ कर चूमे और उससे क्षमा मांगे न कि ज़ोर से चिल्लावे या घर से भाग जावे

'पत्नी के समस्त वाक्यों और क्रियाओं से इस बात का खुला सबूत मिलना चाहिये कि वह अपने पति को अपना देवता समझती है। यदि पत्नी इस तरह का व्यवहार करेगी तो हर कोई उसकी इज्जत करेगा और वह पतिव्रता और धर्मात्मा पत्नी कहलायेगी।'

"ऐबे डु बुआ" नामक लेखक को मालूम हुआ कि उन्नीसवीं सदी में भी हिन्दुओं का व्यवहार इसी प्राचीन शास्त्र की मर्यादा के अनुसार था। उसने इस प्रश्न के इस पहलू को एक दार्शनिक की सी सावधानी के साथ तौला और उस पर अपनी पुस्तक 'हिन्दू मैनर्स, कस्टम्स एण्ड सेरीमनीज' में पृष्ठ २३१ पर इस प्रकार टिप्पणी की —

'हिन्दू घरानों के अन्दर पति और पत्नी में सच्चा मेल अर्थात् दोनों का एक दूसरे के साथ हार्दिक प्रेम, या शान्ति तक बहुत कम देखने को मिलती है। इस देश के अन्दर स्त्री और पुरुष के नैतिक आदर्शों में इतना जबरदस्त अन्तर है कि भारतवासियों की दृष्टि में स्त्री केवल एक इस तरह का निष्क्रय पदार्थ है जिसका एक मात्र धर्म है कि अपने पति की आज्ञाओं और उसके इच्छाओं का तन्मय हो कर पालन करे। हिन्दू लोग कभी यह नहीं समझते कि पत्नी पति की सहचरी है जिसे अपने विचार बताना या जिसकी खबरगीरी करना या जिस से प्रेम करना पति का सब से प्रथम कर्त्तव्य है।

आज्ञा का उल्लघन नहीं कर सकती उसके मस्तिष्क में इस विचार का कोई स्थान ही नहीं होता कि मैं विद्रोह कर सकती हूँ या किसी प्रकार की स्वतन्त्रता लाभ कर सकती हूँ। उसके जीवन का उद्देश्य केवल सेवा करना है। सास प्रायः बड़ी कठोर होती हैं और विना दया और प्रेम के बहू पर शासन करती हैं। यदि अकस्मात उस छोटी सी बहू के बच्चा पैदा होने में देर हो, या उसके लड़कियाँ पैदा हों तो आमतौर पर बुढ़िया की ज़बान कोड़े का काम करती है, वह अपनी बहू को पीटती भी है, वह उससे बदला लेने के लिये उसे इस बात की धमकियां दे देकर कि मैं अपने बेटे अर्थात तेरे पति का दूसरा विवाह कर लूंगी उसके जीवन को अन्धकार मय कर देती है। क्योंकि दूसरा विवाह वास्तव में हो सकता है।

ग्रामों में तहक़ीक़ात करते हुए अकसर सुना कि १४ और १६ वर्ष के बीच की अनेक स्त्रियाँ आत्म हत्या कर लेती हैं। भारतीय पुलिस के रजिस्टरों में इन आत्म हत्याओं का आम तौर पर जो कारण दिया जाता है वह यह है पेट में दर्द हुआ और सास के साथ लड़ाई।'

आज कल के उच्च श्रेणी के हिन्दू कुटुम्बों में पति और पत्नी का जो एक दूसरे के साथ सम्बन्ध समझा जाता है उसके विषय में एक अत्यन्त प्रसिद्ध भारतीय स्त्री मिस कौर्नीलिया सोराब जी कि जिनको हर श्रेणी और हर मज़हब की स्त्रियों के विषय में अच्छा ज्ञान है लिखती हैं।

'स्त्री अपने पति देव की मुख्य पुजारिन होती है, पति की सेवा करना ही उसका धर्म है, उसी में उसको आनन्द आता है।× × × वह समस्त धार्मिक मानसिक और सामाजिक व्यवहारों में अपने पति से कहीं नीचे रहती है; वह विनम्र

काली श्मशान घाट (मदर इण्डिया पृष्ठ ७)

और भक्तिपूर्ण होती है, किन्तु पति के जीवन के उच्चतर कार्यों में भाग नहीं ले सकती × × × पति की मा को प्रसन्न करना, जिसकी कि वह मुख्य नौकरानी की तरह होती है, और पति के लिये एक पुत्र पैदा कर देना ये ही दो उसकी आकांक्षाएं होती हैं। × × × एशिया में विवाह का सारा आदर्श केवल सन्तानोत्पादन पर ही निर्भर है। पति और पत्नी के हिताहित का एक होना दोनों का एक दूसरे के साथी होना ये बातें कभी विचार ही में नहीं आती। जिस समय पति भोजन करता है स्त्री चुपचाप नीची आंख किये उसके सामने खडी रहती है उसके लिये पति के चेहरे की ओर देखना भी एक धृष्टता है।

एक और स्थान पर मिस सोराब जी लिखती हैं,—

'जब स्त्री के एक पुत्र उत्पन्न हो जावे उस समय से घर की दूसरी स्त्रियां उसकी अधिक इज्जत करने लगती हैं। × × वह सफल हुई, उसका जीवन सफल हुआ। उस समय से स्वयं स्त्री में एक आत्म सम्मान पैदा हो जाता है, और साफ दिखाई देने लगता है। इसके बाद भी वह अपने पति की तो आज्ञाकारिणी दासी बनी रहती है, किन्तु अब एक प्रकार का व्यक्तित्व उत्पन्न हो जाता है और जहां तक कि औरतों का सम्बन्ध है वह अब उनमें मनुष्य समझी जाने लगती है, जो स्त्रियां पहले उसे ताने दिया करती थीं उनके सामने अब वह अपना सर उठाकर चल सकती है, उसके हृदय से अब सौत का डर निकल जाता है।*

शिक्षित खुशहाल और बडे बडे हिन्दू घरों की पत्नियों का यह एक आम चित्र है। छोटे घरों में भी मैंने अनेक ऐसी घर-

*'बिट्वीन दी ट्वाइलाइट्स' लेखिका - कौर्नेलिया सोराब जी।

जाएं देखीं जिनमें से एक नीचे दी जाती है और जिससे मालूम होता है कि उनमें भी स्त्रियों की दशा ठीक इसी तरह की है कारण यह है कि:—

हर श्रेणी की सनातनी हिन्दू स्त्रियां गरीब हो या अमीर अपने पूर्वजों और अपने देवताओं के नियमों का ईमानदारी और अभिमान के साथ पालन करती हैं।

जिस स्त्री का मैं ज़िक्र करने वाली हूं वह दिल्ली के नज़दीक के एक ज़िले के एक छोटे से ज़मींदार की पत्नी थी। उसका पति असाधारण एक बड़ा रोशन ख्याल आदमी था। उसने अपने पहला बच्चा होने के समय स्त्री को अस्पताल भेज दिया किन्तु कुछ देर करके भेजा बहुत कष्ट होने के बाद भी बच्चा मरा पैदा हुआ।

अगले साल फिर यही हुआ। स्त्री अस्पताल लाई गई किन्तु देर करके। पेट चीर कर बच्चा निकाला गया लेकिन जिन्दा न रह सका तीसरी बार वह ज़मींदार फिर अपनी स्त्री को अस्पताल लाया। किन्तु इस बार पिछले अनुभवों से लाभ उठा कर वह उसे उचित समय पर ले आया। ज्योंही कि प्रसव वेदना के बाद स्त्री को होश आया नौजवान अङ्गरेज नर्स ने बड़ी ख़ुशी के साथ नीचे झुक कर उससे कहा,—

भाग्यवान मां, 'मां' क्या तुम अपने बच्चे को न देखोगी? क्या तुम अपने पुत्र को देखना नहीं चाहती?

उस स्त्री ने तकिये के ऊपर अपना सिर छिपा लिया और धीमी, नैराश्यपूर्ण शब्दों में बोली, 'मुर्दे बच्चे को कौन देखना चाहता है! मैं बहुत देख चुकी बहुत—बहुत मरे हुए—मरे हुए-उसकी-आवाज़ शान्ति में विलीन हो गई। उसकी भारी पलकें झप गईं।

इसके बाद नर्स ने बच्चे को उठाया, बच्चा रोया।

तुरन्त हालत बदल गई इतनी जल्दी कि कोई अनुभव भी न कर सका। जो स्त्री बिस्तरे पर निर्जीव पड़ी हुई मालूम होती थी वह उठ बैठी। उसकी बड़ी बड़ी आँखें खुल गई और उनमें चमक पैदा हो गयी। अपने सूखे पतले हाथ बच्चा गोद में लेने के लिये उठाये। जीवन में शायद पहली ही बार उस स्त्री ने किसी को आज्ञा देने का साहस किया उसने एक सम्राज्ञी की तरह कहा, 'मेरा पुत्र मुझे दो ? फौरन किसी को मेरे गाव भेज दो और मेरे पुत्र के पिता को कहला भेजो कि तुम्हारे बच्चे की मा तुम्हें बुला रही है।' वह स्त्री बिलकुल बदल गई थी। उसमें अब शान्त, आत्म सम्मान और अपने बड़प्पन का विचार पैदा हो गया था।

बाप आया और टिड्डी दल की तरह सब रिश्तेदार आगये और पास के छोटे फेमिली क्वार्टर में जो हिन्दोस्तान के जनाने अस्पतालों के प्रत्येक प्राईवेट कमरों के साथ लगे रहते हैं भर गये, और इसी छोटी सी जगह में, जो करीब १५ फुट चौडी और २० फुट लम्बी थी। करीब दश दिन गुजार दिए दसवें दिन बडी खुशी और जलूस के साथ वे मा और बेटे दोनों को अपने गाँव लेगए।

गरीब हो या अमीर ऊंची जातिकी हो या नीची जातिकी 'प्रत्येक माता अपने पुत्र को ईश्वर प्रतिमा की तरह पूजती है। वह छुआ छूत, भूत प्रेत और जादू टोने की बातों के सिवा अपने बच्चे को कुछ भी नहीं सिखला सकती आज्ञापालन और नियमित जीवन की शिक्षा क्या चीज है वो स्वयम् ही नहीं जानती तो बच्चे को क्या सिखा सकेगी।

बच्चे को रोष, मनमौज और लालसाओं को नियमित

करना नहीं सिखाती उसे इस बात का ज़रा भी पता नहीं कि बच्चे को किस तरह पाला पोसा जाय। बच्चे को पूरा भोजन देने का अर्थ वह यही समझती है कि उसके छोटे से साँवले शरीर को इतना ठसाया जाय कि उसके बंडी के बटन टूट जाये। पेट में इस प्रकार अपने बचपन में वह लड़का इसी तरह पलता है जैसे अत्यन्त प्राचीन काल से उसके बाप दादे पलते आए हैं।

फिर भी जब लड़का विवाहित हो जाता है उसके दिल में अपने माता को अपने पती से ज्यादा इज़्ज़त रहती है और प्रायः माता की ओर सच्चे प्रेम और सच्चे आदर के भाव प्रगट करता है उसी समय स्त्री अपना अधिकार प्राप्त करती है और घर के अन्दर सख़्ती के साथ शासन करती है। वह कड़ाई के साथ प्राचीन मर्यादा को क़ायम रखती है, और इस बात को भूल कर कि एक दिन उसके अपने साथ क्या व्यवहार हुआ था अब अपनी छोटी छोटी बहुओं के निर्बल कन्धों पर वह सब भार रख देती है और उनके साथ उसी तरह क्रोध करती है जिस तरह उसके साथ जवानी में किया गया था। किन्तु शायद उसके लिये अभी एक और इससे उच्च पद बाकी है। प्रत्येक पौत्र के साथ जो उसकी गोद में बैठा दिया जावे उसकी इज़्ज़त और बढ़ जाती है। नसल का चलना अब असन्दिग्ध हो जाता है। उसके पति की आत्मा सुरक्षित हो जाती है। वह स्त्रियों में अपने तईं विशेष सम्माननीय समझने लगती है। देवताओं को धन्यबाद देती है

सातवा-परिच्छेद

पाप का फल

अभागी हिन्दू विधवा का चित्र पुत्रवती माता के ठीक विपरीत है। वैधव्य जैसा भयंकर दुर्भाग्य किसी स्त्री को मिलने का केवल एक ही कारण हो सकता है—वह यह कि किसी पूर्व जन्म में उसने भयंकर पाप किये हों। अपने पति की मृत्यु के समय से स्वयम अपने जीवन की अन्तिम घड़ी तक उसे उन पापों का प्रायश्चित लज्जा, कष्टों और आत्म बलिदान द्वारा करना पड़ता है और अपने प्रत्येक विचार में मृत पति की आत्मा की सेवा का ही लक्ष्य बनाना पड़ता है। चाहे वह तीन वर्ष की बच्ची हो जिसे विवाह का कुछ अनुमान ही नहो अथवा चाहे वह वास्तविक पत्नी हो जो अपने पति के साथ वैवाहिक जीवन व्यतीत कर चुकी हो हर सूरत में उसके साथ एक समान व्यवहार किया जाता है। पति की मृत्यु मानो यह सिद्ध कर देती है कि वह जन्म से पापी और मनहूस है। उसे स्वयम भी इस बात का विश्वास होता जाता है, ज्यों ही वह सोचने के योग्य आयु तक पहुँचती है वह समझने लगती है कि मेरे भाग्य में यही बदा है।

मिस सोरावजी अपनी पुस्तक 'बिटवीन दी ट्वाइ लाइ-टस' म पृष्ठ १४४-४६ पर लिखतों हैं —

'एक सनातनी हिन्दू विधवा अपने भाग्य को उसी भयंकर आनन्द के साथ सहन करती है जिस आनन्द के साथ कि कोई शहीद अपने आत्म बलिदान को सहन करता है × × ×

किन्तु उसके कष्टों में कोई कमी नहीं हो सकती × × × उसके सहर्ष अपने कष्टों के स्वीकार करने से कष्ट कम नहीं हो जाते कहा जाता है कि इसने पूर्व जन्म में कोई पाप किया था जिसके फल स्वरूप देवताओं ने उसका पति उससे छीन लिया। अब उसके लिये सिवाय इसके कोई काम नहीं रह जाता कि अपने पति की "मुक्ति" के लिये प्रयत्न करती रहे और ईश्वर प्रार्थना तथा तपस्या । द्वारा परलोक में उसके लिये एक उच्च पद प्राप्त करे × × × सास के लिये भी सिवाय बहू को कोसने के और कोई काम नहीं रह जाता × × × यदि ये अभागी घर में न आती तो मेरा बेटा क्यों मरता × × × इसमें विधवा के साथ कोई द्वेष भाव नहीं होता कोसने वाली उतनी ही भाग्या-धीन है जितनी वह जिसे कोसा जाता है × × × यह कह देना आसान है कि विधवा की ओर द्वेष भाव नहीं किन्तु साथ ही आप उसे कोसते रहना अपना विशेष अधिकार समझते हैं और हर तरह के अधिक से अधिक कष्टकर काम ज़बर-दस्ती उससे लेते रहते हैं। आपका व्यवहार दूसरों को धोखा देने वाला है।'

विधवा अपने मृत पति के घर में हर मनुष्य के लिये तुच्छ नौकरों की तरह काम करती है। कठिन से कठिन और भद्दे से भद्दे काम उससे लिये जाते हैं। उसे किसी तरह का आराम नहीं दिया जाता। उसके लिये कोई चैन नहीं। उसे दिन में केवल एक बार भोजन दिया जाता है, और वह भी बुरे से बुरा उसे कड़े से कड़े उपवास करने पड़ते हैं। उसे अपने बाल मुड़वाने होते हैं। उसे इस बात की अहति-यात रखनी पड़ती है कि किसी भी संस्कार में, शुभ-कार्य में, विवाह में, धर्मोत्सव में, अथवा उस स्त्री के सामने

जिसके बच्चा होने वाला हो अथवा किसी भी ऐसे मनुष्य के सामने जिसे उसके अशुभ दृष्टिपात से हानि पहुँचने की सम्भावना हो न आने पावे। जो लोग उससे बात करते हैं वे घृणा और लाछन के शब्दों ही में करते हैं। वह स्वयम अपने इन दु खों की मुख्य पुजारिन होती है। इस दु खमय जीवन को ठीक ठीक जारी रखना ही उसके लिये अब एक मात्र पुण्यकार्य रह जाता है।

प्राचीन फ्रान्सीसी यात्री बर्नियर अपनी पुस्तक ट्रेवल्ज इन दी मुगल एम्पायर सन् १६५६–१६६८, में पृष्ठ ३१०–११ पर लिखता है कि 'विधवाओं को इतनी तकलीफ इसलिये दी जाती थी ताकि पत्नियों को आसानी से वश में रखा जा सके, पति को बीमारी के समय पत्नी का उसकी सेवा सुश्रूषा करना असंदिग्ध होजावे, और पत्नी अपने पति को विष न देने पावे'।

कम से कम एक बार मैंने एक हिन्दू के मुंह से यह शब्द सुने। इस स्पष्टवादी हिन्दू ने कहा कि, 'हम पति लोग अपनी पत्नियों को इतना अधिक दु ख देते हैं कि हमें इस बात का डर रहता है कि वे हमें कहीं विष न दे दे। इसीलिये हमारे बुद्धिमान पूर्वजों ने विधवाओं के जीवन को भय कर बना दिया था—जिससे कि पत्नी पति को विष देने का विचार तक न कर पावे।

हिन्दोस्तान के बहुत से हिस्सों में जेलखानों के जनाना वार्डों में मैंने इस तरह की स्त्रियां देखी हैं जो अपने पतियों की हत्या का दण्ड भोग रही थीं। सम्भव है कि इस तरह के विचार करने वाली स्त्रिया बहुत कम होती हों, सम्भव है कि वे हिस्टीरिया के प्रभाव में ऐसा कर जाती हों। क्योंकि भार-

तीय स्वभाव से मिलती हुई सती की वह घटनाएं हैं जो अभी तक कहीं कहीं होती हैं। नई विधवा जान बूझ कर अपने कपड़ों पर तेल डाल लेती है। आग लगा लेती है और जल मरती है। इस कार्य को वह दूसरों से छिपकर करती है, किन्तु दूसरे लोग इसे गवारा करते हैं। कारण यह है कि यह दूसरी विधवाओं के साथ लोगों का व्यवहार देख चुकी है? वह जानती हैं कि मैं अब सब की किंकर, सबकी दासी बनने वाली हूं, मुझे भूखा रक्खा जावेगा, मुझे यातनाएं दी जावेंगी, कोसा जावेगा, और इन आपत्तियों से निकलने का यही पवित्र मार्ग है, यही धर्म का पालन है। बावजूद विदेशियों के बनाए हुये तमाम क़ानूनी निषेधों के एक विधवा सती होना अब भी धर्म और पुण्य का कार्य समझती है, इस नारकीय जीवन से बच जाती है और अगले जन्म में कहीं अच्छी जगह पैदा होने की आशा करती है।

सती की प्रथा यद्यपि उस धर्म शास्त्र के अनुसार आवश्यक है जिसे हम ऊपर उद्धृत कर चुके हैं तथापि आज कल क़ानून से बन्द है, लेकिन ध्यान रखना चाहिये कि यह नवाचार एक अपवाद की तरह है, इससे जनता के विचारों में उन्नति प्रकट नहीं होती, यह उन इनी गिनी बातों में से है जिसमें कि अङ्गरेज़ सरकार ने ज़बरदस्ती भारतीय धर्मों में हस्तक्षेप किया। सन् १८२९ में भारतीय शासन के इङ्गलिस्तान के बादशाह के हाथों में आने से २९ वर्ष पहले अङ्गरेज़ शासकों ने सन् १८८९ रेगुलेशन न० १७ द्वारा सती प्रथा को बन्द कर दिया था। प्रसिद्ध उन्नतशील भारत वासी राजा राम मोहन राय ने उस क़ानून का समर्थन किया था। किन्तु दूसरे प्रभावशाली बंगाली सज्जनों ने उसका ज़ोरों के साथ

विरोध किया और सती की प्रथा को कायम रखने के लिये अपील की अन्तिम अदालत लन्दन की प्रिवी कौन्सिल तक ये लोग लड़ने में न झिझके।

क्या यह अनुमान किया जा सकता है कि यदि मौका दिया जावे तो इस प्रथा की दबी हुई जड़ें फिर से हरी भरी हो सकती हैं? मि० गान्धी का ११ नवम्बर सन् १९२६ के यंग इण्डिया में एक हिन्दू लेखक ने लिखा है कि आज कल भी जब तक कि पति मरते समय इजाजत न दे जावे तब तक कोई विधवा पुनर्विवाह नहीं कर सकती। कोई धर्म परायण पति इस तरह की इजाजत न देगा। यह लेखक लिखता है कि—'इसकी अपेक्षा यदि पत्नी सती हो सके तो उसका पति उसके सती होने को अधिक पसन्द करेगा।'

पति की मृत्यु के समय वह उसके घर में रहती थी। विधवा हो जाने पर उसे कोई अधिकार आश्रय का नहीं रह जाता तथापि यदि वह पूर्वोक्त व्यवहार के साथ रहना चाहे तो घर में रखी जा सकती है। या तो बाहर निकाल दी जाती है फिर उसे दूसरों के दान पुण्य पर रहना पड़ता है या जैसा कि अनेक बार होता है उसे वेश्यावृत्ति धारण करनी पड़ती है। मन्दिरों के पास की भीड़ में अथवा तीर्थ स्थानों की गलियों में प्राय ये स्त्रिया सखे हुए चेहरे, मुंडे हुए सर, जिन पर प्राय अभागे बुढ़ापे के कारण छोटे छोटे सफेद सफन बाल दिखाई देते हैं, भीख मागती हुई मिलती हैं। कंजूस धर्मात्मा लोग कभी कभी उन्हें मुट्ठी भर चावल दे देते हैं। यह उनकी दुर्गति है।

पुनर्विवाह हिन्दू सनातन धर्म के अनुसार असम्भव है। विवाह कोई वैय्यक्तिक चीज नहीं है। बल्कि अनन्त समय के

लिये एक धार्मिक बन्धन है। और हमें कभी नहीं भूलना चाहिये कि अधिक हिन्दू भीतर तक सनातनी हैं। सनातन धर्म के अनुसार विधवा चाहे दुधमुहीं बालिका हो जिसने उस पुरुष को कभी देखा भी न हो जिसकी मृत्यु उससे कहा जाता है कि तेरे ही पापों का परिणाम है, अथवा चाहे वह बीस वर्ष की हो और पति के साथ सहवास और सहभोज न कर चुकी हो, किसी सूरत में भी उसका पुनर्विवाह नहीं हो सकता। तथापि हाल में पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव ने धीरे धीरे चाहे, कोई इस प्रभाव को माने या न माने कुछ जाग्रति पैदा कर दी है। भारत के विविध भागों में कई सभाएं स्थापित हुई हैं जिनका मुख्य उद्देश बाल विधवाओं का पुनर्विवाह कराना है। किन्तु यह आन्दोलन हिन्दू समाज के सबसे उन्नत भागतक ही अधिकतर परिमित हैं। इसका प्रभाव अभी इतना कम है कि विधवाओं की संख्याओं उससे कोई कमी नहीं बताई जा सकती।

इस विषय में १०० वर्ष पहले के ऐबे डुबुआ के विचार आम तौर पर अभी तक ठीक मालूम होते हैं। उसने लिखा है कि ६० वर्ष के बूढ़े के साथ एक छोटी सी लड़की का विवाह कर देना और फिर पति के मर जाने पर उसे पुनर्विवाह की इजाज़त न देना, इसका परिणाम प्रायः यही होगा कि विधवा चरित्र भ्रष्ट हो जावेगी। तथापि किसी विधवा का विवाह न होता था। ऐबे अपनी पुस्तक में लिखता है कि यदि विधवा विवाह की इजाज़त भी होती तो, 'यह एक विचित्र बात है कि ब्राह्मण विवाह के लिये बहुत छोटी उम्र की लड़कियों को ही पसन्द करते हैं, जिसके कारण इस इजाज़त से विधवाओं को कोई लाभ न हो सकता था।'

जिस समाज की विधवा एक अङ्ग है उस पर युवती विधवा के प्रभाव का अनुमान करने के लिये हमें यह याद रखना चाहिये कि बचपन में, वह स्त्री काम प्रदीपन की उसी परिस्थिति में पल चुकी है कि जिस परिस्थिति में कि लडके अर्थात् उसके भाई पलते हैं। जिन लडकियों को इस तरह के विचारों में पाला गया हो, जिनकी कामाग्नि को इस प्रकार प्रज्वलित किया गया हो उन्हें यदि अपनी वासना की न्याय तृप्ति से रोका जावेगा तो क्या इसमें कोई आश्चर्य है कि वे अपनी काम वासना के सन्मुख सामाजिक नियम की परवाह न कर सकेंगी और उसके मृत पति के कुटुम्ब के लोग अपनी इज्जत बनाए रखने के लिये उसे रोक कर रखने का प्रयत्न करते हैं। और ज्यादातर मुमकिन है कि अपनी तबियत को रोकने के लिये किसी बाहर की रोक टोक की आवश्यकता न पडती हो, उसके भीतर का आत्मोत्सर्ग का भाव ही उसे रोके रखने के लिये काफी होता हो। किन्तु भारतीय वक्ता प्राय इसके विपरीत दृश्य हमारे सामने रखते हैं। स्वराजिस्ट नेता लाला लाजपत राय ने दिसम्बर सन् १६२५ में बम्बई के अन्दर हिन्दू महासभा के सभापति की हैसियत से दु ख प्रकट करते हुए कहा था कि—

'बाल विधवाओं की हालत बयान नहीं की जासकती। जो लोग उनके पुनर्विवाह का विरोध करते हैं उन्हें ईश्वर खुश रखे, किन्तु उनके इस अन्ध विश्वास के कारण समाज में इतनी बुराइयाँ फैलती हैं और इतना नैतिक तथा शारीरिक कष्ट बढ़ता है जो कि समस्त समाज को पङ्गुल कर रहा है और जिसके कारण जीवन संग्राम में उसे सफलता मिलना कठिन हो रहा है।'

मि० गान्धी २६ अगस्त सन् १६२६ के यंग इण्डिया में पृष्ठ ३०२ पर वाल विवाह और वलात् वाल-वैधव्य के सम्बन्ध में एक दूसरे भारतीय लेखक के साथ अपनी सम्मति प्रकट करते हुए उसे इस प्रकार उद्धृत करते हैं:—

'इस प्रथा के कारण हज़ारों वाल विधवाएं प्रति वर्ष वढ़ती जाती हैं जिन के इस समाज में व्यभिचार और नाशकर रोग और वढ़ते जा रहे हैं।'

लोग वातें करते हैं, अपनी जाति की तथा अन्य सभाओं में प्रस्ताव पास करते हैं कि इस अन्याय युक्त और घृणित प्रथा को वन्द किया जावे। किन्तु वाल विधवाओं का पुनर्विवाह अभी तक इतना कम होता है कि सुधारकों के समाचार पत्रों में भी उसका समाचार विशेष रूप से दिया जाता है। विधवा हिन्दू पत्नी के पुनर्विवाह का तो अभी कोई विचार तक नहीं कर सकता।

यह एक विचित्र वात है कि जिन वातों का प्रभाव एक ओर ज़ोरों के साथ स्त्री को स्वतन्त्रता देने की ओर वढ़ता है, उन्हीं का प्रभाव स्त्री की दासता को और अधिक विस्तृत करता है अंग्रेज़ी रिवाज और पाश्चात्य शिक्षा के कारण ऊपर के लोगों में पुरानी अन्धी वातों से असन्तोष वढ़ता जाता है, दूसरी ओर अंग्रेज़ सरकार की नई इमारतों, सफ़ाई, और कृषि सम्वन्धी उन्नति के कारण धीरे धीरे नीचे की श्रेणियों के लोगों की आर्थिक अवस्था अधिकाधिक उन्नत होती जाती है, और उस प्रकार उनमें इस तरह के लोगों की संख्या वढ़ती जाती है जो समाज में ऊपर उभरना चाहते हैं। इसका परिणाम यह है कि सन् १६२१ की मदुम-शुमारी से मालूम होता है कि उन नीची जातियों में भी जिन-

में पहले विधवा विवाह का कोई निषेध न था अब इस तरह का निषेध साफ बढता जाता है।

हिन्दू बिरादरियों में सांसारिक धन सम्पत्ति का कोई प्रभाव नहीं, तथापि जब कोई छोटी जाति का आदमी यकायक अमीर हो जाता है और सुख चैन भोगने लगता है, तो पहला काम वह यह करता है कि ऊची जाति के लोगों के व्यवहार की नकल करता है। भारत म भी सामाजिक सीढी पर वह उसी तरह ऊपर चढने का प्रयत्न करता है जिस तरह कि इस प्रकार के लोग अमरीका में करते हैं। नतीजा यह होता है कि उच्च जाति के लोगों की बेडिया भी वह अपने शरीर पर धारण कर लेता है।

एक भारतीय कर्मचारी, बडौदा के मि० मुकरजी बतान् वैधव्य की प्रथा को ताडने के प्रयत्न के विषय म इस प्रकार लिखते हैं।*

'इस तरह के प्रयत्न तबतक बिलकुल निष्फल रहेंगे जब तक कुलीन हिन्दू विधवा विवाह के विरोध को एक कुलीनता का चिन्ह समझते रहेंगे। हिन्दुओं की नीच जातियों में भी जो लोग जरा धनवान हैं वे विधवा विवाह का उसी तरह विरोध करते जाते हैं जिस प्रकार कि ब्राह्मण करते हैं।

भारतवासियों म सबसे पहले प्रसिद्ध बगाली विद्वान पडित ईश्वर चन्द्र विद्यासागर ने बाल विधवाओं के पुनर्विवाह का आन्दोलन शुरू किया और इस तरह के पुनर्विवाहों का जायज करार देने के लिये कानून बनाने में सरकार को मदद दी। किन्तु उनके और उनके कार्य के परिणाम पर खेद

* सन् १९२१ की मदुम शुमारी की रिपोर्ट, भाग एक, अध्याय ७, पैरा १३४।

प्रकट करते हुए एक दूसरा प्रसिद्ध भारत वासी सरसुरेन्द्र-नाथ वैनरजी ने अपनी पुस्तक 'एनेशन इन दी मेकिंग' में पृष्ठ ६६ पर लिखा है।

'मुझे अच्छी तरह से याद है कि उस समय इस आन्दोलन से कितनी हलचल मच गई थी और किस प्रकार सनातनी हिन्दू इसके विरुद्ध उठ खड़े हो गए थे। × × × हिन्दू विधवाओं का पक्ष समर्थक (पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर) निराश होकर मरा जिस प्रकार वे अधिकांश लोग मरते हैं जो अपने समय से पूर्व पैदा हो जाते हैं। उनका जीवन कार्य पूरा न हो सका। × × × सन् १८६१ में उनकी मृत्यु हुई। उस समय से आज तक इस आन्दोलन ने वहुत ही कम उन्नति की है। अव यह दूसरी पीढ़ी है, किन्तु विद्यासागर का कार्य संभालने वाला कोई अभी तक पैदा नहीं हुआ; जिसके वाद आज हिन्दू विधवाओं की लगभग वैसी ही वुरी दशा है जैसी पचास वर्ष पहले थी। उनके आंसू पोंछने वाला और उनकी वलात् वैधव्य की वेड़ियों को काटने वाला कोई नहीं। शायद जोश के साथ सहानुभूति दिखाने वालों की संख्या वढ़ गई हो—ये लोग विद्यासागर के वार्षिकोत्सव के समय सार्वजनिक सभाओं में गुल मचा लेते हैं किन्तु हिन्दू विधवाओं के, छुटकारे के लिये विद्यासागर ने जो सन्देशा दिया है उसको प्रत्यक्ष रूप देने का कोई प्रयत्न नहीं करते।'

मिस्टर गान्धी जो अपनी वुद्धि के अनुसार सदा सत्य का व्यवहार करते हैं; ५ अगस्त सन् १९२६ के 'यंग इण्डिया' में पृष्ठ २७८ पर लिखते हैं :—

'छोटी लड़कियों के ऊपर ज़वरदस्ती वैधव्य लाद देना एक पाशविक अत्याचार है जिसके लिये ही हम हिन्दुओं को प्रति-

दिन भारी दण्ड भोगना पड रहा है। × × × इस तरह के वैधव्य के लिये किसी शास्त्र में प्रमाण नहीं है। यदि कोई विधवा जो अपने मृत पति के साथ एक बार प्रेम अनुभव कर चुकी हो, जान बूझकर अपनी इच्छा से सदा अविवाहित रहना चाहे तो उससे जीवन का सौन्दर्य और मान दोनों बढते हैं, घर पवित्र होता है और संयम धर्म ऊपर को उठता है। किन्तु जब धर्म या रिवाज जबरदस्ती किसी स्त्री पर वैधव्य लाद देते हैं तो उसका बन्धन असह्य हो जाता है और गुप्त पाप के द्वारा उससे घर गन्दा होता है और धर्म नीचे को जाता है। और जिस समय हम सोचते हैं कि पचास वर्ष से ऊपर आयु के बूढे और रोगी मनुष्य छोटी लडकियों के साथ विवाह करते हैं, बल्कि लडकिया खरीदते हैं, और कभी कभी एक दूसरे से बढकर नीलाम की सी बोलियाँ बोल कर खरीदते हैं, तो क्या हिन्दू विधवाओं की अवस्था पर हमें लज्जा और खेद नहीं होता ?"।

किन्तु यह भी एक व्यक्ति की राय है। जनता की राय नहीं। एक प्रसिद्ध भारतीय राजनैतिक नेता ने मुझसे से कहा था,—'हमें अब गान्धी के असलों की आवश्यकता नहीं है, गान्धी का दिमाग बहक गया है।'

सुप्रसिद्ध भारतवासी सर गङ्गाराम सी० आई० ई०, सी० वी० ए० ने सरकार से कुछ सहायता लेकर लाहौर शहर के अन्दर हिन्दू विधवाओं के लिये एक सुन्दर आश्रम और विद्यालय कायम किया है और उसके लिये धन जमा कर दिया है। सन् १९२६ में इस संस्था में ४० से ऊपर विधवाएँ थीं। बम्बई प्रान्त में विधवाओं के लिये और ऐसी पत्नियों के लिये जिन्हें उनके पतियों ने घर से निकाल दिया है पाच

संस्थाएं हैं जिन्हें सरकार से सहायता मिलती है और जिनका परोपकारी भारतवासी संचालन करते हैं। सम्भव है इस तरह की अन्य संस्थाएं भी हों; किन्तु यदि हैं तो सरकार का ध्यान अभी उनकी ओर नहीं गया। मैंने स्वयम बङ्गाल के अन्दर नवद्वीप नामक तीर्थ स्थान में विधवाओं के लिये एक आश्रम देखा था। जो स्थानीय चन्दों और यात्रियों की सहायता से चलता है। यह संस्था १४ वर्ष की पुरानी थी उसमें ८ विधवाएं थीं—मालूम होता है उसमें अधिक की गुंजाइश ही न थी।

सब से हाल की सरकारी रिपोर्ट के अनुसार हिन्दोस्तान में कुल विधवाओं की संख्या २,६८,३४८३८ है।*

—:o:—

* भारत सरकार की रिपोर्ट 'स्टैटिस्टीकल ऐब्सट्रैक्ट फ़ौर ब्रिटिश इण्डिया, १९१४-१५ से १९२३-२४ तक' पृष्ठ २०

आठवां परिच्छेद

भारत माता

छोटी लडकियों की कतारों की कतार—सब चार, पांच छै अथवा सात वर्ष की आयु की, पीतल की देवी के सामने फर्श पर पलोथी मारे बैठी हुई हैं। हर एक के सामने सफाई के साथ कुछ पुष्प, एक दो दाने, कुछ फल के टुकडे रखे हुए हैं, जिन्हें वे सभाल कर देवी पर चढाने के लिये अपने घर से लाई हैं। ये धर्म शिक्षा के लिये एक प्रकार की पाठशाला है। ये लडकियां पूजा के लिये मंत्र सीखती हैं और वह क्रियाएं सीखती हैं जिनका करना प्रत्येक हिन्दू स्त्री के लिये आवश्यक है। और वे यहीं सब सीखती हैं। इसी के सीखने की उन्हें जरूरत है। इसके बाद वे सब मिल कर प्रार्थना करती हैं।

उनकी अध्यापिका से जो एक गम्भीर हिन्दू स्त्री थी किसी ने पूछा, 'ये लडकियां किस चीज के लिये प्रार्थना कर रही हैं?'

उसने उत्तर दिया, 'कोई लडकी किस चीज के लिये प्रार्थना कर सकती है? यदि वह अविवाहित है तो पति के लिये और यदि विवाहित है तो अगले जन्म में इससे अच्छा पति पाने के लिये।'

स्त्रियां सब से पहले पतियों के लिये प्रार्थना करती हैं और फिर पुत्रवती होने के लिये। पुरुषों को अपनी आत्माओं के उद्धार के लिये पुत्रवान होना आवश्यक है।

हिन्दुओं के लिये सब से अधिक महत्व की चीज़ पुत्र है। पुत्र जन्म के सम्बन्ध में पहले हिन्दुओं के विचारों के कुछ प्रमाण हमें इससे पूर्व मिल चुके हैं। किन्तु भारतवासियों की योग्यता की यदि कोई भी व्यावहारिक खोज की जावे तो एक और महत्व की बात जिसका न कोई खंडन कर सकता है और न जिसे छिपाया जा सकता है, वह यह है कि प्रत्येक श्रेणी के हिन्दू अपने को बच्चों के पैदा होने के समय क्या क्या प्रबन्ध करते हैं।

हम भारत के अनेक स्थानों के ज़नाने अस्पतालों का ज़िक्र कर चुके हैं। ये अस्पताल बहुत अच्छा काम कर रहे हैं, अधिकतर स्त्रियों के रोगों के सम्बन्ध में। किन्तु जितना काम है उसके मुक़ाबले में इन अस्पतालों की संख्या बहुत कम है। और अधिकांश भारतीय स्त्रियों की इस समय जो अवस्था है उसमें यदि उनमें से प्रत्येक द्वार के पास भी एक अस्पताल बना दिया जावे तो भी अधिकांश भारतीय स्त्रियों को अस्पताल में जाने के लिये राज़ी नहीं किया जा सकता।

प्रत्येक भारतीय स्त्री को अपने संकट के समय जिस चीज़ की विशेष आवश्यकता पड़ती है वह "दाई" है और दाई क्या चीज़ है यह कोई नहीं समझ सकता जब तक स्वयम उसने देखा न हो। किसी दाई को हिन्दू क़ायदे के अनुसार बच्चा पैदा होने के समय और उसके कुछ बाद तक स्त्री 'अपवित्र' रहती है। उस समय के अन्दर जो चीज़ उससे छू जाय वह भी अपवित्र हो जाती है। इसलिये केवल वे स्त्रियां दाई का काम कर सकती हैं जो स्वयम अपवित्र अथवा 'अछूत' जाति की हों। इन अछूतों की

गन्दी आदतों के कारण ही सनातनी हिन्दू उन्ह छूने से परहेज करते हैं। इन आदतो को, वे इन्हे अछूत रखने का काफी कारण समझते हैं। इसके अतिरिक्त हिन्दू कायदे के अनुसार बच्चा पैदा होने के समय स्त्री को और नवजात बच्चे को दोनों को 'नजर' लग जाने का खास तौर पर डर रहता है। इसलिये कोई ऐसी स्त्री जिसका बच्चा मर चुका हो, या जिसका कभी गभ गिर चुका हो, भारत के बहुत से भागों म दाई का काम नहीं कर सकती, क्योंकि सम्भव है कि उसके हृदय में ईर्षा या द्वेष छिपा हुआ हो। न कोई विधवा 'दाई' हो सकती है, क्योंकि विधवा का देखना अशुभ है। ये सब नियम सब जगह नहीं माने जाते, किन्तु इनमें से प्रत्येक नियम देश के बडे बडे भागों में माना जाता है।

इसके अतिरिक्त दाई के काय के लिये किसी तरह की शिक्षा की जरूरत नहीं समझी जाती। दाई का कार्य एक पशा है, जो खास कुटुम्बो के लोग करते हैं। किसी दाई के मरने पर उसकी लडकी या उसके बेटे की वह वही पेशा करने लगती है। चाहे उसने अपने जीवन भर म कभी किसी के बच्चा होता हुआ भी न देखा हो। वह फौरन् अपना काम शुरू कर देती हैं।* किन्तु इस तरह के कुटुम्बों से बाहर यदि कोई और स्त्री चाहे तो वह भी इस कार्य को कर सकती है। और यदि वह 'अछूत' जाति की है तो चाहे उसने कुछ सीखा हो या नहीं केवल इच्छा प्रकट करने पर लोग उससे फौरन यह काम लेने लगते हैं।

नतीजा यह है कि हिन्दोस्तान की स्त्रियों के ऐसे सकट के

* अक्तूबर १९२५ की "नैशनल हैल्थ" पत्रिका में पृष्ठ १२५ पर दिल्ली के हैल्थ विजिटर मिसेस ग्रिफिन का लेख।

समय कि जब स्त्रियों के जीवन का सब से अधिक ख़तरनाक और सब से अधिक महत्त्व का समय होता है, तमाम गन्दी से गन्दी ग़रीब जातियों को, अन्धी, बूढ़ी, अपाहज, लक़वा मारी हुई, और बीमार स्त्रियां ही उनकी सहायता और सब काम करने के लिये नियत की जाती हैं।

वह स्त्री जिसके बच्चा होने वाला है, अपने होने वाले बच्चे के लिये छोटे छोटे कपड़े बनवा रखना या इस प्रकार की कोई अन्य तय्यारी नहीं करती। समझा जाता है कि ऐसा करना मानों यह समझ लेना है कि देवता अपनी कृपा दृष्टि उसपर अवश्य डालेंगे। और यह अनुचित है। किन्तु वह एक काम कर सकती है और करती भी है। वह यह कि साल भर तक जितने गन्दे से गन्दे चीथड़े या निकम्मे कपड़े घरवालों के हाथ से फिंकते रहते हैं उन्हें वह एक दालान में या किसी छोटे से अंधेरे कमरे के एक कोने में जमा करती रहती है।

जब बच्चा पैदा होने का समय आता है तो वह युवा पत्नी इसी बदबूदार कचरा घर में घुस जाती है, वह 'अपवित्र' समझी जाती है, और उस वेदना के समय जो कुछ वह छूती है वह भी अपवित्र हो जाता है और इस कार्य के बाद नष्ट कर दिया जाता है। इसलिये किफ़ायत के नाम पर उसके आस पास केवल वह चीज़ें दी जाती हैं या उसी तरह के आदमी भेजे जाते हैं जो अपवित्र और निकम्मे हों। यदि कोई पुरानी चारपाई हो जिसके पाए टूटे हुए हों तो वह उसे लेटने के लिये दी जाती है। यह चारपाई इसी तरह के अगले अवसर के लिये उस अंधेरे कोने में खड़ी रहती है। अथवा उसके लिये गोबर के उपलों या पत्थरों से ज़मीन के ऊपर

सहारा बना दिया जाता है। और कोई मनुष्य उस जगह को झाड़ने, साफ करने या धोने में समय नष्ट नहीं करता जब तक कि सब कार्य समाप्त न हो जावे*।

जब दर्द शुरू होता है तो दाई बुलाई जाती है। यदि अकस्मात् जिस समय दाई के पास बुलावा पहुँचा उस समय वह साफ कपडे पहने हुए है तो चाहे कितना भी जल्दी क्यों न हो वह पहले अपने कपडे उतार कर दूसरे गन्दे कपडे पहन लेती है। यह गन्दे कपडे इसी काम के लिये रखे रहते हैं, और अनेक रोगी जच्चाओं के सम्पर्क में आने के कारण रोगों के कीटाणुओं से भरे रहते हैं। इस प्रकार गन्दे से गन्दे कपडे पहन कर अनेक रोग साथ लेकर, वह दाई अपने अभागे बलि के साथ उस गन्दे कमरे में बन्द हो जाती है।

यदि उस कमरे में कोई रोशनदान हो तो दाई उस कचरे या घास फूस से बन्द करा देती है। कहा जाता है कि बच्चा पैदा होने के समय ताजी हवा नुक्सान करती है—उससे ज्वर हो जाता है। यदि परदे बनाने के लिये काफी चीथडे हों तो दाई उन्हें गांठ कर उनके परदे बना कर दरवाजों में लटका देती है और उसी कोने में परदा के अन्दर दीवाल के सहारे जच्चा को लिटा देती है ताकि उसे बिलकुल हवा न लगने पावे। इसके बाद और अधिक अंधेरा बनाने के लिये वह एक छोटी सी बत्ती तेल में भिगोकर जला लेती है अथवा बिना चिमनी की मट्टी के तेल की ढिबरी जलाती है जिसमें से बुरी तरह धुआं निकलता रहता है। इसके बाद किसी बरतन में वह खोट से कोयले जलाती है। उसे चारपाई

* 'नेशनल हेल्थ' १९२१, पृष्ठ ७०। तथा मैरी घोष की लिखी प्युअरपिरल फीवर पृष्ठ १५३।

के नीचे अथवा ज़च्चे के पास रख देती है। इस आग का विषैला धुआँ भीतर की बदबू को और भी बढ़ा देता है।

मैंने जो पहली दाई काम करते हुए देखी उसने ज्योंही मैं कमरे में घुसी तुरन्त कुछ विशेष बदबूदार मसाला मुट्ठी भर कर इस आगके ऊपर डाल दिया। इसका उद्देश यह था कि बच्चे वा उसकी माँ को मेरी नज़र न लग जावे। मसाला डालते ही उस से गहरा धुआँ निकला और लपट भी उठी। उस लपट की रोशनी में मैंने उसका चुड़ैल सा मुंह और जुँए भरे हुए बाल, उसके लटकते हुए चीथड़े और गन्दे पञ्जे देखे और उसने भी कीचड़ भरे और लगभग दृष्टि शून्य नेत्रों से उस बदबूदार धुएं में मेरी तरफ़ देखा। किन्तु जब उसकी लपट से बिस्तरे में आग लग गई और उसके बेहोश मरीज़ के शरीर की ओर बढ़ चली तो उस आग को बुझाने के लिये वह दाई नहीं दौड़ी। वह देख ही न सकती थी और न उसे इतना होश था कि समझ सकती।

यदि बच्चा पैदा होने में देर हो जाय तो यह आशा की जाती है कि दाई इसका वास्तविक कारण बता सके। वे अपना लम्बा, गन्दा हाथ जिसमें गन्दे छल्ले और कड़े पहने होती है और जिस पर अकथनीय रोगों के कीटाणु जमा होते हैं, ज़च्चा के पेट के अन्दर घुसेड़ देती है, जो कुछ उसे वहां मिलता है उसे खेंचती मरोड़ती है*। यदि बच्चा पैदा होने में अधिक देर और कठिनाई हो जावे और ज़च्चा का पति ख़र्च मंजूर करे तो एक दूसरी दाई बुलाई जाती है और फिर एक तीसरी दाई बुलाई जा सकती है और बच्चे को अलग अलग टुकड़ों में

* बी० एम० एस० एफ० रिपोर्ट, 'इम्प्रूवमेण्ट आफ़ दी कन्डीशन्स आफ़ चाइल्ड बर्थ इन इण्डिया, पृष्ठ ७०' इत्यादि

बाहर निकाला जाता है—कभी एक टांग और कभी एक हाथ।*

एक और लेडी डाक्टर लिखती हैं —

'अनेक बार यह देखने में आया है कि उन सूरतों में जब के जच्चा का पेड किसी रोग के कारण (आस्टियो मलेसिया) सिकुड जाता है, और बच्चे के सिर के निकलने में कठिनाई मालूम होती है, तो दाई बच्चे के हाथ पांव खेंचने का प्रयत्न करती है और यदि टोम सकता है तो उन्हे तोड डालती है। वह बच्चे को जोर से बाहर खींच लेना पसन्द करती है। इस तरह की सूरतों में जच्चा का शरीर बुरी तरह फट जाता है, कभी कभी उसका मसाना तक फट जाता है, नतीजा यह होता है कि मसाने और योनि के बीच में बहुत बडी दरार सी पड जाती है। यह रोग हिन्दोस्तानी स्त्रियों को बहुत होता है और इससे उन्हें बहुत कष्ट भोगना पडता है*।'

इस तरह की प्रसव वेदना तीन दिन, चार दिन, पांच अथवा कभी कभी छै दिन तक जारी रहती है। इस तमाम समय में जच्चा को कुछ भी आहार नहीं दिया जाता—यही प्राचीन प्रथा है—और दाई अपनी सब पुरानी तरकीबें करती है। वह जच्चा को अपनी मुट्ठियों से दाबती है, उसे दीवाल के सहारे खडा कर देती है और अपने सर से उसके पेट में टक्करें मारती है। नगी जमीन पर उसे सीधा लिटाती है, उसके हाथ पकड कर अपने गन्दे नगे पेरों से उसकी जांघों को कुचलती है यहा तक कि डाक्टर लाग कहते हैं कि प्राय दाई के लम्बे पैरों के नाखूनों से जच्चा का गोश्त चीथडे चीथडे हो जाता

*डाक्टर मेरियन ए० बायली, एम० ए० एम० बी० इत्यादि रिपोर्ट, पृष्ठ ८५ एण्ड एपेन्डिक्स पार्ट ५ पृष्ठ ६९

*पूर्वोक्त रिपोर्ट पृष्ठ ७१

है। अथवा वह जच्चा को लिटा कर उसके बदन पर ऊपर नीचे चलती है जिस तरह कोई कपड़ों को रौंदता है। इसके अतिरिक्त वह अजीब अजीब चीज़ों की पोटलियां बनाती है, जड़ी बूटियों की, गन्दे बांध की, शरीफ़े के बीजों की या मिट्टी की या मिट्टी में लौंग, घी और गेंदे के फूल मिला कर, या छिलके और मसाले—गरज़ें के कोई भी चरपरी चीज़ हो और इन गोलियों को स्त्री की योनि में ठूंस देती है ताकि बच्चा जल्दी पैदा हो। देश के बाज़ हिस्सों में, बकरी के बाल, बिच्छू के डंक, बन्दर की खोपड़ियें और सांप की केंचुलें ऐसे अवसर पर उपयोग करने के लिये बड़ी अच्छी चीज़ें समझी जाती हैं*।

इन चीज़ों के ठूंसे जाने से और उनके कारण जो ज़ख्म हो जाते हैं उनसे आम तौर पर वह रास्ता हमेशा के लिये आधा व पूरा बन्द हो जाता है।

यदि आवलनाल के निकलने में पांच मिनट से ज़्यादा लग जावे तो फिर वही गन्दा छल्लों और कड़ों से लदा हुआ हाथ और वही कलाई फिर अन्दर दे दी जाती है और आवल-नाल को तोड़कर बाहर खींच लिया जाता है।

ज़च्चाखाने के अन्दर साफ़ कपड़े अथवा गरम पानी नहीं दिया जाता। यदि ज़च्चा का शरीर ठण्डा होने लगता है तो प्रायः ताज़े गोबर या बकरी की मेंगनियों से या गरम राख से उसे गरमी पहुँचाई जाती है।

तीर्थ स्थान बनारस में जो कि सनातन धर्म का गढ़ है, सात तरह के मेहतर होते हैं। वे सब अछूत गिने जाते हैं। पहिली श्रेणी के मेहतरों में से दाइयें होती हैं: सब से अन्तिम

* श्वेत्कि रिपोर्ट।

और सब से निम्न श्रेणी के मेहतरों में से आवलनाल काटने वाली होती हैं। आवलनाल काटना इतना निकृष्ट कर्म समझा जाता है कि काशी में मेहतरानी भी सिवाय उन मेहतरानियों के जो सब से निम्न श्रेणी में हैं इस काम को करना गवारा नहीं करतीं।

इसलिये दरिद्र अस्पर्शनीय दाई अपने साथ एक अपने से भी बत्तर दाई लाती है जो कि मां और नवजात बालक दोनों पर अपना हुनर आजमाती है।

नाल काटने के लिये कभी एक बांस की खपच्ची का उपयोग किया जाता है, कभी एक पुराने टीन के टुकड़े का, कभी एक जंग लगी हुई कील का, कभी एक ठीकरे या टूटे हुए शीशे का कभी कभी जब आवलनाल काटने वाली के पास कोई औजार नहीं होता अथवा उसे आस पास कोई तेजधार की चीज दिखाई नहीं देती तो वह पड़ोसियों से कोई चीज मांग लाने के लिये निकलती है। एक बार मैंने यह शब्द सुने जिन्हें मैं जल्दी नहीं भूल सकती —'हे, हे, सुनती हो? मेरा चाकू बाहर दे दो! मुझे अभी तरकारी काटना बाकी है।

आवलनाल का बाहरी सिरा बिना मरहम पट्टी के इसी प्रकार छोड़ दिया जाता है। जहां ज्यादा एहतियात की जाती वहां उस सिरे पर थोड़ी सी मट्टी या कोयला या गोबर और कई चीजें लगा दी जाती हैं। इन चीजों का असर अधिक बुरा होता है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि जो बच्चे अपने जन्म के समय की मुसीबत से बच जाते हैं उनमें से एक बहुत बड़ी संख्या जबड़े* बन्द होने या बदन अकड़ने से मर जाते हैं।

* 'आम तौर पर बंगाल में जितने बच्चे पैदा होते हैं उनमें से आधे आठ साल की उमर से पहले मर जाते हैं, और कुल आबादी का केवल

बच्चे को मां से अलग करते ही आमतौर पर उसे नंगी ज़मीन पर बिना ढके अरक्षित छोड़ दिया जाता है जब तक कि दाई उसे उठाने के लिये तय्यार न हो जाय। यदि लड़की हुई तो प्राचीन समय से कई इस तरह के सरल नियम चले आ रहे हैं जिनके द्वारा उस अप्रिय मेहमान को उसी समय और वहीं पर ख़तम कर दिया जाता है।

बच्चे को आहार देने के विषय में देश के विविध भागों में भिन्न भिन्न रिवाज़ हैं मध्य प्रान्त में सबसे पहले आमतौर पर शक्कर और उसके साथ नवजात बालक का पेशाब मिलाकर दिया जाता है*।

दिल्ली में शक्कर और मसाले, या शराब या शहद। अथवा पहले तीन दिन तक एक चीज़ दी जाती है जिसे घुट्टी कहते हैं, इसमें मसाले होते हैं जिनमें पुराने जंग लगे हुए शुभ सिक्के और कागज पर लिखे हुए तावीज़ डालकर पका लिये जाते हैं। यह चीज़ें देश के विविध प्रान्तों, विविध जातियों और बिरादरियों में कुछ कुछ भिन्न होती हैं। किन्तु अन्तर केवल तफ़सील का होता है, जो चीज़ें उपयोग की जाती हैं उनमें बुद्धिमत्ता सब जगह एक सी ही मालूम होती है।

मां को जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है आमतौर पर बच्चा पैदा होने के समय से चार से सात दिन तक कुछ खाने पीने को नहीं दिया जाता। अथवा यदि कुछ दिया जाता

एक चौथाई चालीस तक की उमर तक पहुंचता है × × × बच्चों की इस मृत्यु के कारण यह है, फ़ी सदी मौतें जन्म काल की निर्बलता के कारण होती है और ११.४ फ़ीसदी जबड़े बन्द होने के कारण।'—बंगाल के डाइरेक्टर आफ़ पब्लिक हेल्थ की चौव्वनवीं सालना रिपोर्ट, पृष्ठ ९-१०।

*पूर्वोक्त रिपोर्ट पृष्ठ ८६—डाक्टर बायली का बयान।

है तो केवल कुछ सूखी मेवा और खजूर। इसमें प्राय उद्देश्य कम खर्चे का होता है—ताकि घर के बरतन अपवित्र न हों। किन्तु हर सूरत में यह रिवाज एक प्राचीन रिवाज चला आता है जिसे घर वालों की कम खर्ची से खुद बखुद पुष्टि मिल जाती है*।

कुछ सम्प्रदायों बिरादरियों में बच्चे को तीसरे दिन तक छाती से नहीं लगाया जाता। इस रिवाज से भयकर हानि होती है। कहीं कहीं मा से यह आशा की जाती है कि वह अपने नवजात बालक के अतिरिक्त यदि उसके कोई बडा बच्चा हो उसे भी दूध पिलावे। प्राय एक तीन वर्ष के बच्च को अन्दर भेज दिया जाता है ताकि ठीक उस समय जब कि जच्चा के सख्त दर्द हो रहा है, वह उसे दूध पिलावे। बाहर की औरतें कहने लगती हैं 'रोता था—भूखा था और कुछ खाता नहीं।

इन तीन बातों का अर्थात् एक, पूर्वजों का निर्बल और रोगी होना, दो 'खराब भोजन मिलना' और तीन, उनके अपने बाल विवाह और अपक्व सहवास और उसके सम्बन्ध के रोग, इन तीनों का परिणाम यह होता है कि हिन्दोस्तान की स्त्रियों में से फीसदी एक बहुत बडी सख्या की या तो हड्डिया इतनी छोटी होती हैं, और या वे भीतर से इतनी बिगडी हुई और रोगी होती हैं कि बिना डाक्टर की चीर फाड की सहायता के साधारण तौर पर बच्चा पैदा नहीं कर सकती। यह निशक हो कहा जा सकता है कि इस तरह की सब स्त्रियों को यदि किसी अङ्गरेज या अमरीकन लेडी डाक्टर या इङ्गलि-

*अक्तूबर सन १८२५ की नैशनल हैल्थ पृष्ठ १२४ पर एडिस ग्रिफिन का लेख।

स्तान की शिक्षा पाई हुई हिन्दोस्तानी लेडी डाक्टर की सहायता न मिले तो वे धीरे धीरे यातनाएं भोगकर मर जाती हैं॥। इस तरह की सहायता यदि नज़दीक हो भी तो प्रायः ज़च्चा का पति अथवा उसके कुटुम्ब की वुढ़ियें प्राचीन प्रथा का पालन करती हुई ज़च्चा के पास तक उस सहायता को पहुँचने नहीं देतीं।

जिन सूरतों में कि बच्चा मामूली तरीके से पैदा हो जाता है उनमें भी भारतवासियों की दृष्टि में परिणाम प्रायः मौत से भी अधिक कष्ट कर होता है। श्रीनगर के ज़नाना अस्पताल की योग्य लेडी डाक्टर ए० वौंहन पूर्वोक्त रिपोर्ट के पृष्ठ ९८-९९ में इस प्रकार लिखती हैं:—

'वहुत सी स्त्रियों के इसलिये बच्चा नहीं होता क्योंकि बच्चा पैदा होने के अवसर पर उनके साथ इतना बुरा व्यवहार

॥ हिन्दोस्तान में मेडिकल कालेज के लड़कों के लिये स्त्रियों के रोगों और दाई के काम में शिक्षा पास करना अत्यन्त कठिन है। इसका कारण यह है कि हिन्दोस्तानी स्त्रियें कभी ऐसे अस्पतालों में जाने के लिये राज़ी नहीं हो सकतीं जिनमें पुरुष डाक्टर जा सकते हों। इसलिये वहुत ही बिरले अवसरों को छोड़ कर मेडिकल कालेज के लड़कों को इन चीज़ों की शिक्षा पुस्तकों से लेनी पड़ती है। यदि कोई लड़का विदेश से ये चीज़ें सीख आवे तो भी उसे उसपर अमल करने का कोई अवसर नहीं मिलता। यह सच है कि कभी कभी पाश्चात्य शिक्षा पाए हुए हिन्दोस्तानी डाक्टर एक भारी परदे के बाहर बैठकर बच्चा जनवाते है। ज़च्चा के पास दाई रहती है, वह भीतर से चिल्ला चिल्लाकर पूछती रहती है और डाक्टर उसकी बातें सुनकर बाहर से चिल्लाकर उसे हिदायत करता है। किन्तु, इस तरह की कार्रवाई को साधारण अर्थों में डाक्टरी अमल नहीं कहा जा सकता।

किया जाता है कि वह सदा के लिये बेकार हो जाती है। बहुत से आदमी इसलिये निस्सन्तान रह जाते हैं क्योंकि जिस समय उनके पुत्र पैदा हुआ था उसी समय अज्ञानता से उसे मार डाला गया, अथवा दाइया ने उनकी स्त्रियों को इस बुरी तरह से नाश किया कि फिर वे बच्चा पैदा करने के योग्य ही न रहीं। × × ×

'अपने कथन को स्पष्ट कर देने के लिये मैं कुछ नमूने की मिसालें देना चाहती हूं। इस तरह की घटनाओं का इस देश की प्रत्येक लेडी डाक्टर को सामना करना पडता है।'

'कहीं से बुलावा आता है हम से कहा जाता है कि किसी स्त्री के दर्द हो रहा है। हम पहुँचते हैं हमें एक छोटे से अँधेरे और गन्दे कमरे में ले जाया जाता है जिसमें प्राय खिड़की नदारद। यदि कोई खिडकी होती भी है तो उसे ठूस ठूस कर बन्द कर दिया जाता है। कहा जाता है कि ताजा हवा से जच्चा को बुखार हो जाता है। कमरे के अन्दर एक कढाई में कोयलों की आग जलती होती है जिससे कमरे की रही सही हवा भी गन्दी हो जाती है। एक चारपाई पर अथवा जमीन पर जच्चा पडी होती है। उसके पास एक या दो गन्दी बुढिया होती हैं जिनके कपडे अत्यन्त मैले हाथ धूल म सने हुए और बालों म जुए भरी होती हैं। वे कहती हैं कि हम दाई हैं, इस स्त्री को तीन दिन से दर्द है और हम बच्चे को नहीं निकाल पाते। फिर एक बार प्रयत्न करने के पहले वे हमारे सामने फश पर अपने हाथ रगडती हैं। देखने पर हमें पता चलता है कि योनि का बाहर का हिस्सा सूजा हुआ और फटा हुआ है। दाइयां कहती हैं कि यह केस बडा खराब है और हमें बच्चा जनाने के प्रयत्न में अपने हाथ और पैर

दोनों इस्तेमाल करने पड़े हैं × × × क्लोरोफ़ार्म सुंघाया जाता है और औज़ारों से बच्चे को बाहर निकाला जाता है। जब हम बच्चे को निकालते हैं तो उसके साथ साथ जब कभी कभी डोरियां और चीथड़े जिनके अन्दर बेल के बीज होते हैं स्वयस गर्भ के अन्दर से निकलते हैं, यह चीज़ें दाइयों ने अन्दर ठूस रखी थीं। × × ×

'यह न समझिये कि केवल निर्धन घरों की स्त्रियों को ही इस तरह कष्ट भोगने पड़ते हैं। मैं आपको बहुत से ऐसे हिन्दोस्तानियों के घर दिखा सकती हूँ जो यूनिवर्सिटियों के ग्रेजुएट हैं और जिनकी स्त्रियों के इन गन्दे चीथड़ों के ऊपर बच्चे जनाए जाते हैं और जिन के यहां रिवाज के अनुसार यहीं बाज़ारी दाइयां आती हैं, क्योंकि रिवाज का पालन करना ज़रूरी है और बी० ए० के कोर्स में "समझदारी" नहीं पढ़ाई जाती।'

यह सब वृत्तान्त पूर्वोक्त रिपोर्ट में पृष्ठ ९९—१०० पर दिया हुआ है।

उसके बाद डा० बीहन अपने तजर्बे से कुछ और मिसालें देती हैं जिन में से एक नमूने की मिसाल हम नीचे देते हैं,—

'एक धनाढ्य हिन्दू जो किसी भारतीय यूनीवर्सिटी का ग्रैजुएट है और स्वयं प्रोफ़ैसरी करता है, अत्यन्त उच्च शिक्षा पाए हुए है, हमें अपने घर बुलाता है। उसकी स्त्री के बच्चा हुआ है और बुख़ार आता है। × × × हम ने देखा कि दाई के पास रोग के कीटाणुओं को मारने के लिये कोई दवाइयां (डिस इन्फ़ैक्टेंटस) नहीं हैं, क्योंकि इस तरह की दवाइयां ख़रीदने में क़रीब तीन रुपए लगते हैं और दाई को केवल

एक रुपैया और कुछ गन्दे कपडे मिलते है। जच्चा कुछ बेकार गन्दे कपडो के एक ढेर पर पडी हुई है, जिनमें एक पुरानी वास्कट, एक पुराना विलायती सफरी कम्बल, किसी पारसल के ऊपर का बरसाती का टुकडा और पति की एक गन्दी और दागदार कमीज का फटा हुआ आधा हिस्सा है। किसी तरह की चादर या साफ कपडा का वहाँ निशान तक नहीं था। उसके पति ने मुझ से कहा 'साफ चीजें हम इसे पाचवें दिन देंगे, अभी नहीं देंगे, हमारे यहाँ का यही रिवाज है।'

'हमने बहुतेरी कोशिश की किन्तु वह स्त्री रक्तविकार के ज्वर (सेप्टीसीमिया) से मर गई। यह रोग उसे या तो उन गन्दे कपडों से लगा जो बिना धोए रखे रहते हैं और घर में हर ऐसे अवसर पर काम में लाए जाते हैं, और या उस दाई से लगा जिसके पास न गरम पानी, न साबुन न नाखून साफ करने का ब्रश और न डिसइनफेक्टेण्ट दवाइयाँ, किन्तु जिसने फिर भी अपनी भरसक कोशिश की।'

इस तरह की गवाहियां मौजूद हैं जिनमें कि शिक्षित, ससार म घूमे हुए, उच्च घरानों के हिन्दोस्तानियों ने, जिनके पास स्वय यूरोपियन यूनीवर्सिटियों की डिग्रियाँ हैं, अपनी पत्नियों को इसी पैतृक अधकार का शिकार बनने दिया। एक हिन्दोस्तानी डाक्टर की मिसाल दी जाती है। उसके पास इङ्गलिस्तान को किसी युनिवर्सिटी की पी० एच० डी० और एम० डी० की डिग्रियाँ थीं। वह निहायत योग्य और होशियार डाक्टर माना जाता था, और इस समय दाइयों को अर्वाचीन मिडवाइफरी सिखाने की एक सरकारी सस्था का प्रधान अफसर है। हाल में उसीकी नौजवान पत्नी के बच्चा होने का था। उसने घर की बूढी स्त्रियों के दबाव में आकर

पुराने ढंग की एक 'दाई' को बुलाया जो अन्य 'दाइयों' के समान ही गन्दी और जाहिल थी। उसकी स्त्री ज़च्चा ख़ाने के ज्वर से मर गई। बच्चा जनाने में ही मर गया। डाक्टर बौहन फिर लिखती है कि,—'जब हम यह देखते हैं कि पढ़े लिखे भारतवासी भी जिनके पास इङ्गलिस्तान की डिग्रियां हैं जाहिल दाइयों के हाथों अपनी पत्नियों और बच्चों को मक्खियों की तरह मर जाने देते है, तो हम मुश्किल से अनुमान कर सकते हैं कि उनकी अधिक दरिद्र बहनों की क्या हालत होती होगी।'

किन्तु भारत की सराहनीय अङ्गरेज़ और अमरीकन लेडी डाक्टरों की सब की यह राय है कि इस मामले में अमीरी ग़रीबी का और बड़ाई छोटाई का कोई सम्बन्ध नहीं।

पूर्वोक्त रिपोर्ट के पृष्ठ ८६ पर डाक्टर मैरिअन ए० बौहन लिखती हैं कि :—

"यह बातें हरगिज़ सब से निर्धन वा सब से जाहिल लोगों तक ही परिमित नहीं हैं। मैं राजाओं के घरों में बुलायी गयी हूँ और वहाँ पर मैंने इनमें से बहुत सी बातें होते देखी हैं, और जब मैं ने हवा के आने पर वा रोग कीटाणुओं के मारने के लिये दवाइयों के उपयोग पर ज़ोर दिया तो मेरा खूब ज़ोर के साथ विरोध किया गया।

मेहतरानी हो या ब्राह्मणी, कुजात हो या रानी, उस भयकर घड़ी में इन सब की हालत एक सी होती है, जिस घड़ी को इन की जीवन का सार कहना अत्युक्ति नहीं। एक भारतीय ईसाई स्त्री जिसकी पदवी और जिसकी योग्यता दोनों ऊंचे दरजे की है और जिसके लिये उसके चरित्र के प्रताप से अनेक ऐसे द्वार खुल गए हैं जो दूसरों के

लिये नहीं खुलते, एक बालिका रानी का हाल इस प्रकार बयान करती है। यह ईसाई स्त्री उस रानी के यहां केवल दया के नाते गई थी।

जिस समय वह कमरे में पहुँची वह लड़की, जिसकी उम्र अभी दस वर्ष की ही थी और जो एक राजा की स्त्री थी, बच्चा जनने वाली ही थी। दाइयें अपने काम में लगी हुई थीं। किन्तु मामला गम्भीर मालूम होता था। पुरोहित को सहायता के लिये बुलाया गया था। दरवाजे के बाहर एक बूढ़ा ब्राह्मण बैठा हुआ था। जो शास्त्रों में से जोर जोर से कुछ पाठ कर रहा था और समय समय पर अपनी पोथी में से कुछ पढ़कर दाइयों को हिदायत करता जाता था।

यह बूढ़ा एकाएकी चिल्ला पड़ा, 'सुनो सुनो रानी के शरीर के ऊपर आग रखने की यही सायत है। जल्दी से आग जला कर उसके शरीर के ऊपर रखदो।'

फौरन दाइयां उसकी आज्ञा को तैयार हो गयीं।

इस ईसाई स्त्री ने जिसे इस बात का अभ्यास हो गया था कि ऐसे अवसरों पर अचम्भा प्रकट न कर, बड़ी शान्ति से पूछा 'और हमारी छोटी सी रानी के लिये आग की क्या जरूरत पड़ी?

दाइयों ने उदासीनता के साथ उत्तर दिया, 'ओह! यदि उसकी किस्मत में जीना होगा तो जी जायगी, निस्सन्देह उसके बदन पर जलने का एक बड़ा दाग पड़ जायगा। या यदि उसकी किस्मत में मरना है तो मर जायगी।

यह कह कर वे बराबर आग तय्यार करती रहीं।

उस ईसाई स्त्री को सूझ अच्छी थी। वह फुर्ती से बाहर बैठे हुए ब्राह्मण के पास गई और कहने लगी, 'पंडितजी, क्या

आप ईश्वर के कोप से नहीं डरते ? आप आग की बलि दे को तय्यार हैं। किन्तु यह रानी है, साधारण स्त्री नहीं। क्य गंगा माई नहीं देख रही हैं ? और क्या वे इस बात से कुपि न होंगी कि उनका कोई आदर नहीं किया गया ?'

उस बूढ़े ने कुछ घबराकर ऊपर आँख उठाकर देखा औ कहा, 'सच है, देवता लोग बहुत जल्दी कुपित हो जाते हैं— 'किन्तु पोथी में साफ़ लिखा है'—यह कह कर उसने कु घबराए हुए अपने घुटने पर रखी हुई प्राचीन पोथी क ओर नज़र डाली।

स्त्री ने फिर पूछा क्या इस घर में गंगाजल है ?'

बूढ़े ने कहा भला कोई घर बिना गंगाजल के भी होता है

इसाई स्त्री बोली—"सुनो मेरी आत्मा भीतर से कह रही है कि गंगा जल को शुद्ध आग के ऊपर रख कर तीन बार गरम किया जावे। फिर उसे जादू के थैली में भरा जावे। यह थैल देवता मेरे जरिये आप को देंगे। फिर उस थैले को महारानी के शरीर पर रख दिया जावे। इस प्रकार जल और अग्नि दोनों को मिला कर यज्ञ करने से देवता प्रसन्न होंगे और उनका कोप मिट जावेगा।'

बूढ़े ने उत्तर दिया यह बात बुद्धिमानी की है। ऐसा ही कीजिये। ईसाई स्त्री जल्दी से दौड़कर अपना गरम पानी से सेकने का अङ्गरेजी थैला उठा लाई।

भारतवासियों के अन्दर अन्ध विश्वास हर श्रेणी और हर स्थिति के लोगों में पाए जाते हैं। स्त्रियें आम तौर पर यही समझती हैं कि रोग का कारण किसी देवता का कोप है। दवा और चीर फाड़ से देवता भाग जाता है, और नाराज़ हो जाता है, और देवताओं को नाराज़ करना बहुत बुरा है।

इसलिये आगे का ख्याल कर के जादू टोना और मन्नतों से काम निकालना अच्छा है।

देवताओं के अतिरिक्त बहुत से भूत चुडैल भी इतने अधिक हैं जितने कि समुद्र के किनारे बालू के कण। इनमें अधिक वृद्धि करना उचित नहीं।

सब से बुरे भूतों में उन मरी हुई स्त्रियों की आत्माएं गिनी जाती हैं जो कि प्रसव के समय बच्चा पैदा होने से पहले मर जाती हैं। यह भुतनियां निर्जन रास्तों और घरों में घूमती रहती हैं। उनमें डाह बहुत अधिक होती है। उनके पैर पीछे को मुड़े होते हैं।

इसलिये जब कभी कोई जच्चा जिससे अभी कोई बच्चा पैदा नहीं हुआ है, मरती हुई दिखाई देती है, तो दाई अपना यह कर्तव्य समझती है कि घर वालों की रक्षा के लिये उसी समय से उपाय करने लगे,—यद्यपि सम्भव है कि वह जच्चा कई दिन से दर्द में पडी हो और उसकी सूखी हड्डियां बच्चे को बाहर निकलने न देती हों।

दाई ऐसे अवसर पर सब से पहिले मिरचे लेकर मरती हुई जच्चा की आंखों में रगड देती है, इसलिये ताकि उसकी प्रेतात्मा अन्धी हो जावे और बाहर न निकल सके। इसके बाद दाई दो लम्बी लोहे की कीलें लेती है और असहाय जच्चा के दोनों हाथ फैला कर हर एक हथेली को फर्श पर एक कील से कस कर गाड देती है—असहाय जच्चा इस व्यवहार को समझती है सब, और अपने भाग्य के सामने सर झुका देती है। इस कील गाडने का उद्देश्य यह होता है कि प्रेतात्मा जमीन में गडी रहे और निकल कर इधर उधर घूम कर जीवित लोगों को दिक न करे। इस प्रकार वह स्त्री मर जाती

है और मरते दम तक करुणा के साथ देवताओं से अप
पूर्व जन्म के उन भयंकर पापों के लिये क्षमा याचना कर
रहती है जिन का उसे यह फल मिल रहा है।

ऊपर का बयान यद्यपि भयंकर मालूम होता है तथा
इसके सबूत में बहुत से और विश्वसनीय डाक्टरों की गवा
पेश की जासकती है जो कि भारत के दूर दूर के भागों में र
चुके हैं। इस अध्याय की सब मुख्य मुख्य बातें इसी तरह व
गवाही के आधार पर और स्वयं मेरे व्यक्तिगत तजुरबे
आधार पर दी गई हैं।

तथापि यह फ़र्ज़ कर लेना कि दोष दाई का है, दाई
साथ अन्याय करना है। यद्यपि दाई की क्रियाऐं अमानु
षिक होती हैं तथापि जो कुछ वह करती है प्राचीन समय
उसके पेशे का इसी तरह रिवाज चला आता है। यदि व
कोई बात भूल जावे वा बदल दे तो सब लाभ जाता रहे
केवल जिस घरों में वह काम करती हैं, उन घरों की बूढ़
स्त्रियां उसकी अयोग्यता के लिये उसे लानत मलामत करेंगी
और किसी दुसरी दाई को जो सब प्राचीन रिवाजों का ठीक
ठीक पालन करे उसकी जगह बुला लेंगी।

दाई के कामों में यह भी शामिल है कि बच्चा पैदा होने
समय और उसके लगभग दस दिन बाद तक ज़च्चा के पास
मौजूद रहे। इन लगभग दस दिनों के अन्दर घर का को
दूसरा आदमी ज़च्चा के पास नहीं जाता, क्योंकि इत
दिनों तक ज़च्चा अपवित्र रहती है। इस समय के अन्दर
रोगी ज़च्चा और उसके नवजात बालक का सारा काम दा
ही करती है। दस दिन के अन्त में दाई से यह भी आश
की जाती है कि वह उस अपवित्र कमरे को साफ़ करे और

फर्श और दीवारों को गाय के गोबर से लीप दे।

दाई को मजदूरी लडका हो तो अधिक मिलती है और लडकी हो तो कम। यह मजदूरी कहीं ज्यादा होती है और कहीं कम। धनाढ्य लोग इस समस्त सेवा के लिये अधिक से अधिक १५ रुपए तक दे देते हैं, बशर्ते कि लडका पैदा हुआ हो। किन्तु आम तौर पर खुशहाल लोग पुत्री जन्म के लिये आठ आने देते हैं। गरीब लोग लगभग १० दिन की सेवा के बदले में दाई को बेटे के होने में दो या तीन आने और लडकी के होने में एक या डेढ आना देते हैं। दाई स्वयं दरिद्र से दरिद्र घर की होती है, इसलिये उसकी इतनी हैसियत नहीं होती कि साबुन की एक टिकिया, या थोडी सी साफ रुई खरीद सके। दाई को यह चीजें भारत में कहीं नहीं दी जातीं। और इस प्रकार यह समस्त हत्या जारी रहती है।

भारत के बहुत से हिस्सों में कई ऐसी संस्थाएं कायम हैं जिनके द्वारा माताओं और बच्चों की रक्षा का उपाय किया जाता है और जो कि इंगलिस्तान वालों के चन्दों से चलती हैं। इस तरह की संस्थाओं में हर जगह और कामों के साथ साथ दाइयों को शिक्षा देने का भी प्रयत्न किया जाता है, किन्तु यह काय अत्यन्त कठिन है। दाइयां सदा यही एतराज करती हैं कि हम कोई ऐसी बात नहीं सीखनी है जो हमसे काम लेने वालों को मंजूर न हो। एक लेडी डाक्टर ने मुझे अपनी दाई-कक्षाएं दिखाईं, जिसमें कि एक भयकर पंक्ति निकम्मी बुड्ढी डुकरिया की दिखाई देती थी। लेडी डाक्टर ने मुझसे कहा कि —

"इन औरतों को कक्षा में बुलाने के लिये हमें पैसा देना पडता है। यह धन इंगलिस्तान से आता है। उनमें से कुछ

को हम इसलिये धन देते हैं ताकि वे दाई का काम छोड़ दें। यह रक़म बहुत थोड़ी होती है। किन्तु इनके गुज़ारे के लिये काफ़ी होती है। यह इतनी वृद्धा, इतनी मन्द बुद्धि और आम तौर पर इतनी दुखिया हैं कि कुछ सीख नहीं सकती। फिर भी जब हम उनसे प्रार्थना करते हैं कि तुम दाई का काम मत करो क्योंकि इससे दूसरों को नुकसान होता है तो वे जवाब देती हैं "और हम कैसे जीवन का निर्वाह करें ? यही हमारी रोज़ी है।" बात सच है।'

जिस तरह की घटना की नीचे मिसाल दी जाती है उस तरह की घटनाएं आम तौर पर होती रहती हैं। जिस समय मैंने इस घटना का हाल सुना उस समय यह बिल्कुल हाल ही की बात थी। उत्तर भारत में इसी तरह के इङ्गलिस्तान के धन से एक अङ्गरेज लेडी डाक्टर 'सार्वजनिक स्वास्थ्य' पर दाइयों आदि को शिक्षा देने के लिये रहती है। इस दृश्य को आंखों के सामने लाने के लिये हमें यह याद रखना चाहिये कि यह लेडी डाक्टर एक अत्यन्त सुन्दर और जोशीली, नौजवान स्त्री है, जो कि सदा ठीक फ़ैशन में और सुथरी दिखाई देती है, लाहौर में वह दाइयों का एक क्लास चलाती थी। उसने अपने यहां की शिक्षा पाई हुई दाइयों से यह कह रखा था कि कोई कठिन मामला हुआ करे तो मुझे बुला लिया करो।

सन् १९२६ में सर्दी के दिनों में एक दिन रात को तीन बजे उसकी एक शिष्या ने उसे बुलाया। वह पहुंची। एक कुजात मनुष्य का घर था। एक छोटी सी कच्ची झोपड़ी, जिसके भीतर शायद ८ फुट चौड़ी और १२ फुट लम्बी जगह रही होगी। उस में दस मनुष्य थे, जिनमें कुटुम्ब की तीन पीढ़ियां शामिल थीं। सिवाय ज़च्चा के और सब जोरों के साथ सो

रहे थे। उसी कमरे में एक भेड़, दो बकरियां कुछ मुर्गे और एक गाय भी थी क्योंकि घर के मालिक को अपने पड़ोसियों का एतबार न था। एक मिट्टी के दिये में एक छोटी सी बत्ती जल रही थी। और कोई रोशनी न थी। सिवाय मनुष्यों और पशुओं के शरीरों के और कोई सामान गरमी पहुंचाने का न था। सिवाय दरवाजे के और कोई रोशनदान न था और वह दरवाजा भी बन्द था।

कमरे में पीछे की ओर एक छोटी-सी कोठरी थी जिसमें एक दूसरे के ऊपर चार चारपाइयां रखी थीं। इन सब पर घर के लोग सो रहे थे। नीचे से तीसरी चारपाई पर एक स्त्री पड़ी थी जिसके सख्त दर्द हो रहा था।

बूढ़ी दादी ने नींद में कहा 'दाई बाहर गई है' और दीवार की ओर करवट लेली।

एक पल की देर न की जा सकती थी। दाई को तलाश करने का समय न था। सौभाग्य से चारपाइयों के ढेर के पास ही गाय आराम से लेटी हुई थी वह चुस्त नौजवान अङ्गरेज लेडी फौरन उस भोली विनम्र गाय की पीठ पर चढ़ गई और वहां से वह सफलता के साथ दो छोटे छोटे हिन्दुओं को जिनमें एक लड़का था और एक लड़की संसार में ले आई।

काम समाप्त होते ही, दाई कमरे में लौटी और बहुत नाराज हुई। वह सहन में गई हुई थी और स्त्री के पति से इस बात पर झगड़ रही थी कि नाल काटने से पहले मुझे क्या मिलेगा बिना कुछ न कुछ पहले से हाथ पर धाराए कोई चतुर दाई नाल नहीं काटती। यह एक सामान्य अनुभव है।

कुछ हिन्दोस्तानी भद्र पुरुष-इस सम्बन्ध में कि उच्च कोटि वालों में क्या होता है बात चीत करते हुए कहा कि,—

'निस्सन्देह हम हिन्दोस्तानियों में दाइयों का कार्य बिल्कुल दूसरी तरह से होना चाहिये, किन्तु क्या 'यह सम्भव है कि इस देश में आकर यह कार्य करने के लिये काफ़ी अङ्गरेज़ स्त्रियां मिल सकें ?'

आज कल की नौजवान पत्नियों में कुछ थोड़ी ऐसी भी होती है जो अर्वाचीन डाक्टरी सहायता स्वीकार करने को तय्यार हैं। किन्तु ज़बरदस्त विरोध घर की बूढ़ी स्त्रियों की ओर से होता है और उनका विरोध चल जाता है।

जिन अनेक अङ्गरेज़ लेडी डाक्टरों ने इस समय भारत को अपना जीवन अर्पण कर रखा है उनमें से एक अत्यन्त योग्य लेडी डाक्टर पञ्जाब की डा० एग्नीस सी० स्कार्ट एम० बी० बी० एस० पूर्वोक्त रिपोर्ट के पृष्ठ ६१ पर लिखती हैं कि:—

'एक शिक्षित पुरुष यह इच्छा कर सकता है कि एक अधिक योग्य और शिक्षित दाई मेरी स्त्री के बच्चा जनावे, किन्तु घर में वास्तविक हुकूमत ज़नान खाने की बूढ़ी स्त्रियों की चलती है, ये बूढ़ी स्त्रियां अज्ञानता और पक्षपात की एक संगीन दीवार खड़ी कर देती हैं और उसे क़ायम रखती हैं; जिसके सामने पुरुषों की कुछ नहीं चल सकती।'

इसी विषय पर डाक्टर के० ओ वोड्रान लिखती हैं कि:—

'स्त्रियें अपनी सबसे बड़ी दुश्मन आप ही हैं। और यदि कोई मनुष्य कोई ऐसा तरीक़ा निकाल सके जिससे दादियों, पड़दादियों और लकड़ दादियों को शिक्षा दी जा सके।'

'और उन्हें बुद्धि दी जा सके और उन्हें इस बात के लिये राज़ी किया जा सके कि वे अज्ञानी गन्दी बाज़ारी दाइयों को न बुलावें तो वह मनुष्य हिन्दोस्तानी क़ौम पर बड़ा अहसान

करेगा। मेरी राय में यह कार्य असम्भव है।'

एक दूसरी लेडी डाक्टर उसी रिपोर्ट में पृष्ठ ७१ पर लिखती हैं कि —

'आमतौर पर सास या कोई और बुढ़िया जच्चाखाने की देख रेख करती है यह बुढ़िया स्वयं पुराने रिवाजों की अभ्यस्त होती है और उनके पालन किये जाने पर ज़ोर देती है × × × अत्यन्त प्राचीन काल से यह रिवाज चला आता है कि जच्चा खाने का सब प्रबन्ध घर की बड़ी बूढ़ी का काम है पुरुषों को उसमें दखल देने का कोई अधिकार नहीं।'

'इस प्रकार एक विचित्र चित्र हमारी आँखों के सामने आता है। एक मनुष्य है जिसने अत्यन्त प्राचीन काल से अपनी पत्नी को अपना गुलाम बना रखा है, और जिसकी इस लोक तथा परलोक दोनों के लिये जीवन भर की सबसे जबरदस्त आवश्यकता यह है कि उसके एक पुत्र हो, और फिर उसी मनुष्य को अपने उसी विनीत गुलाम की इच्छा के आधीन अपनी हार्दिक अभिलाषा को पूरा करने में निराशा उठानी पड़ती है। पहले उसने यही ठीक समझा कि स्त्री को अज्ञान में रखे कि वह सदा के लिये अपने प्राकृतिक भावों और प्रवृत्तियों को दबा दे और उसे 'पृथ्वी पर अपना ईश्वर' मानकर उसके सामने सदा करीने से और सेवा के लिये तय्यार फिरती रहे। स्त्री अपने बचपन से मृत्यु पर्यन्त उसकी आज्ञाकारिणी बनकर निर्दय अनुशासन के आधीन अगणित सदियों तक उसके सामने इसी तरह फिरती रही और उन्हीं अगणित शताब्दियों में पुरुष ने बचपन से मृत्यु पर्यन्त, अपने तईं किसी तरह के अनुशासन के आधीन नहीं रखा। अब अन्त में जैसा उन दोनों ने बोया था वैसी ही पैदावार

तय्यार हो गई स्त्री ने सनातन मर्यादा की चट्टान पर चिपट कर प्राण दे दिये उसका सारा भार किसी तरह के भी हितकर परिवर्तन के विरुद्ध पड़ा; पुरुष का लक्ष्य और उसकी संकल्प शक्ति इतनी निर्बल पड़ गई उसकी नसें और उसकी हिम्मत इतनी टूट गई कि वह हार कर अपने घर के अन्दर अपने ही ग़ुलाम के सर्वथा हाथों में आ गया।

जितने हिन्दोस्तानी बच्चे ज़िन्दा पैदा होते हैं उनमें लगभग बीस लाख प्रति वर्ष मर जाते हैं। सन् १९२१ की मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट जिल्द १ भाग १ पृष्ठ १३२ पर लिखा है कि जो संख्याएं हमें मिली हैं उनसे मालूम होता है कि बच्चों की मृत्युओं में से ४० फ़ी सदी से ऊपर जन्म के पहले सप्ताह के अन्दर होती हैं और ६० फ़ी सदी से ऊपर पहले मास के अन्दर।'

मरे हुए बच्चे बहुत अधिक पैदा होते हैं इसके मुख्य कारणों में आतशक और सुज़ाक हैं। एक कारण यह भी है कि बच्चा जन्म के धक्के को सहन करने के सर्वथा अयोग्य होता है।

जन्म और मौत की संख्याएं हिन्दोस्तान में कच्ची होती हैं क्योंकि अधिकतर ये संख्याएं अशिक्षित ग्रामवासियों द्वारा जमा की जाती हैं। यदि कोई बच्चा मर जावे तो मां एक दो रात अंधेरे में रोती रहती है। किन्तु यदि ग्राम के पास कोई नदी हो तो बच्चे का शरीर योंही नदी में बहा दिया जाता है उस पर कोई चीथड़ा बतौर कफ़न के भी नहीं ढका जाता। चीलें और कछुवे उसके छोटे से इतिहास को समाप्त कर देते हैं। और आमतौर पर इसी की सम्भावना अधिक होती है कि ग्राम में कोई भी उस बच्चे के जन्म वा उसकी मृत्यु

को रिपोर्ट करने की तकलीफ नहीं उठाता। इसलिये बच्चों की संख्याए अधिक से अधिक 'लगभग संख्याए' कही जा सकती हैं।

तथापि सम्भव है कि इन हालत में बच्चा की मौतों की वास्तविक संख्याएं यदि जानी जा सके। पाश्चात्य सोचने वालों को बजाय अत्याधिक मालूम होने के उनकी कमी पर आश्चर्य होगा।

एक अमरीकन लेडी डाक्टर ने कहा था—'मैं समझती थी कि बच्चा बडी नाजुक चीज होता है किन्तु यहा के अनुभव से विवश होकर मुझे यह मानना पडता है बच्चे से अधिक मजबूत कोई चीज नहीं होती, क्योंकि ये बच्चे सदा बच जाते हैं।'

नौवां परिच्छेद

परदे के पीछे

पिछले अध्यायों में अधिकतर हिन्दुओं का ज़िक्र है। मोटे तौर पर हिन्दुस्तान की तीन चौथाई आबादी हिन्दुओं की है। बाक़ी एक चौथाई में मुसलमान हैं। इन में उत्तर के मुसलमानों और दक्षिण के मुसलमानों में बड़ा अन्तर है। उत्तर के मुसलमानों के रक्त में पुराने ईरानी और अफ़ग़ान आक्रमणकारियों के रक्त का ख़ासा हिस्सा मिला हुआ है। दक्षिण के मुसलमान अधिकतर हिन्दू नौमुसलिमों की औलाद हैं, और उनमें कम वा अधिक अभी तक हिन्दू चरित्र की बहुत सी बातें मौजूद हैं।

कुछ बातों में मुसलमान स्त्रियें अपनी हिन्दू बहनों से बहुत अच्छी रहती हैं। इन बातों में मुख्य यह गिनाई जा सकती हैं, कि मुसलमानों में न बाल विवाह का रिवाज है और न बलात् वैधव्य का और इन दोनों कुप्रथाओं के कारण जो अनेक दुःख हिन्दू स्त्रियों को सहने पड़ते हैं उनसे मुसलमान स्त्रियें बची रहती हैं। इसी के कारण उन्हें माता पिता से अधिक उत्तम शरीर और मस्तिष्क मिलते हैं। मुसलमानों का आहार भी हिन्दुओं से बहुत अच्छा है। इसलिये जिस समय मुसलमान औरतें जवान होती हैं वे हिन्दू औरतों से अधिक मज़बूत रहती हैं। लेकिन, बस, बड़े होते ही उच्च श्रेणी की मुसलमान स्त्रियों के सब हक़ ज़ब्त हो जाते हैं। क्योंकि

अब वे एक प्रकार शेष जिन्दगी भर के लिये घर की चहार दीवारी के अन्दर कैद कर दी जाती हैं।

इस तरह स्त्रियों के अलग रखने का परदा कहते हैं। परदे का रिवाज हिन्दोस्तान में मुसलमान आक्रमणकारियों ने प्रचलित किया और वे ही पहले परदा मानते थे, किन्तु थोड़े ही दिनों बाद उच्च जाति के हिन्दू भी इसे अपने लिये सामाजिक श्रेष्ठता का एक चिन्ह मानने लगे। इसलिये हिन्दुओं ने भी बतौर फैशन के परदे का पालन करना शुरू कर दिया। और आज दिन देश में खुशहाली बढने के साथ साथ, यह मध्यम-कालीन प्रथा भी ठीक उसी प्रकार बढती हुई मालूम होती है जिस प्रकार हिन्दुओं में बाल विधवाओं के पुनर्विवाह का निषेध। यदि कोई स्त्री समाज के सब से ऊपर के भाग में पाश्चात्य प्रभाव के कारण स्वतंत्र फिरती हुई नजर आती है, तो उसी के मुकाबले में उसकी कई छोटे दर्जे की किन्तु खुशहाल बहनें जो समाज में अधिक सम्मान-नीय समझे जाने के लिये इच्छुक हैं जान बूझकर इन बेड़ियों को पहने रहती हैं।

मालूम होता है कि शायद परदे के रिवाज का प्रारम्भ उस समय से हुआ जिस समय कि युद्धों में शत्रु की स्त्रियों को लेजाना वैसा ही न्याय्य समझा जाता था जैसा शत्रु के माल को लूट लेना। घर की स्त्रियों को चहार दीवारी के अन्दर बन्द करके मनुष्य अपने दरवाजे की रक्षा कर सकता है। इस विषय पर हिन्दोस्तानियों की गवाहियाँ लेने से मालूम होता है कि कुछ न कुछ दर्जे तक आज भी लोगों को इसी आपत्ति का भय लगा रहता है। भारत के एक ऐसे भाग में

जहां पर परदा बहुत कम है मैं ने देखा कि एक क्लब है जहां पर अँगरेज़ और हिन्दोस्तानी दोनों तरह की स्त्रियां आमोद प्रमोद के लिये जमा होती हैं, उस क्लब को हिन्दोस्तानी मेम्बरों ने जो सब उच्च श्रेणी की स्त्रियां थीं मिलकर यह प्रार्थना की कि क्लब की मेम्बरी के लिये जो कम से कम आयु नियत थी उसे घटा कर बारह कर दिया जावे, अथवा और भी अच्छा हो कि ग्यारह कर दी जावे। इस प्रार्थना का कारण उन्होंने स्पष्ट शब्दों में यह बताया कि हम आधे दिन के लिये भी अपनी इस आयु की लड़कियों को मा की नज़र से ओझल और घर के पुरुषों के साथ घर पर अकेले छोड़ने से डरते हैं।

समाज के नीचे से नीचे भाग में भी यही चिन्ता रहती है। गांव के हिन्दू किसान की स्त्री एक घण्टे के लिये भी अपनी लड़की को घर पर अकेला नहीं छोड़ती क्योंकि उसे लगभग यक़ीन है कि मैं ने लड़की को छोड़ा और लड़की बरबाद हुई। मैं यह नहीं कह सकती कि यह हालत हर जगह है। किन्तु मैं यह अवश्य कह सकती हूँ कि देश के अत्यन्त दूर दूर के भागों में हिन्दोस्तानियों और यूरोपियनों दोनों ने मेरा ध्यान इस ओर आकर्षित किया कि हिन्दोस्तानियों के दैनिक जीवन की यही हालत है।

कोई मामूली मुसलमान अपने ज़नाने के अन्दर किसी दूसरे पुरुष को जाने न देगा। केवल इस कारण क्योंकि वह जानता है कि लोग इसे एक मौक़ा समझेंगे। यदि कहीं मुट्ठी भर हिन्दू दूसरे विचार और व्यवहार के मिलते भी हैं तो उसका प्रायः अथवा केवल मात्र कारण सदा यह होता है कि

उनके विचारों पर स्त्री जाति की ओर पाश्चात्य लोगों के विचारों का कुछ असर पड गया है, किन्तु उनमें भी अपने देश बन्धुओं पर अविश्वास कम नहीं होने पाया। पुरुषों और स्त्रियों के दरमियान इस तरह का परस्पर व्यवहार जिसमें स्वतन्त्रता और निर्दोषता दोनों हो भारत वासियों के दिमाग में आ ही नहीं सकता।

इसलिये हिन्दोस्तान के बहुत से हिस्सों में उच्च श्रेणी के हिन्दुओं में जनाना एक अलग चीज है और स्त्रिया उसी के अन्दर बन्द रहती हैं। जनाने के भीतर की मुसलमान स्त्रियें यदि कहीं बाहर निकलती भी ह तो बुर्के ओढकर या परदे-दार गाडियों में निकलती हैं। हिन्दू राजाओं की पत्नियों की गाडियों में कभी कभी अंधेरे शीशे लगे रहते हैं जिनम से स्त्री आसानी से बाहर का हाल देख सके, किन्तु बाहर वाले उसे न देख सकें। किन्तु यदि किसी खुशहाल मुसलमान बावरची की स्त्री बाहर जाती है तो सिर से पैरों तक एक मोटा बुर्का पहन कर जाती है? बुर्के में आँखों के सामने तक तीन इञ्च की जाली सी होती है जिस में से वह आधे अन्धों की तरह कुछ कुछ देख सकती है।

दिल्ली में मै एक परदा पार्टी में मोजूद थी जिसमें केवल स्त्रियें जा सकती थीं। उस में एक आफत आते आते बच गई। यह पार्टी एक उच्च अङ्गरेज अफसर के मकान में हुई थी। भारतीय स्त्रियाँ सब आइ। उनके शरीरों पर भारी कपडे लिपटे हुए थे। मोटरों में से वे निकलीं ऊपर भारी परदे पडे हुए थे उनकी अङ्गरेज मेजबान न स्वय बाहर आ आकर उनका स्वागत किया, क्योंकि परदे का खयाल रखते हुए घर

के सब पुरुष नौकर बाहर निकाल दिये गए थे। मेम साहब—अकेली इस काम के लिये रह गई थीं कि सब मेहमानों को अपने गोल कमरे तक लेजावें। कमरे में जाकर उन्होंने अपने ऊपर के बुर्क़े और चादरें उतार कर रख दीं, वे अपनी अत्यन्त सुन्दर हिन्दोस्तानी पोशाकों में कमरे में इधर उधर बैठ गईं और उन अङ्गरेज स्त्रियों के साथ जो उनसे मिलने के लिये बुलाई गई थीं मीठी मीठी बातें करने लगीं। उन हिन्दोस्तानी स्त्रियों में जो सब से बड़ी थी वह आसानी से सब पर हावी थी। वह अपनी उम्र अधिक बतलाती थी। वह हलकी पीली मख़मल का लम्बा पाजामा जो घुटनों के नीचे पिंडली से मिला हुआ था, सुनहरी देसी जूते, और रेशमी कमख़ाब की एक छोटी सी सुन्दर जाकट पहरे थी और अपने सर पर एक काश्मीरी शाल लपेटे थी जिसके चारों ओर सुन्दर कामदार पल्ला था।

हम लोग चाय के कमरे में गए। फिर मेम—अकेली भण्डार से चाय की मेज़ तक आती जाती रही और अकेली अपनी हिन्दोस्तानी मेहमानों की ख़ातिर करती रही। सिर्फ़ अङ्गरेज़ स्त्रियों ने उसे काम में मदद दी।

यकायक बाहर के बरामदे से कुछ लोगों के आने की आवाज़ें आईं—पुरुषों की आवाज़ें, स्त्रियों की आवाज़ें—आवाज़ें अधिक ज़ोर की होती गईं—नज़दीक आती गईं—मालूम हुआ कुछ बढ़े चढ़े आ रहे हैं। मेज़बान कुछ डरी हुई सी जल्दी से दरवाज़े की ओर बढ़ी। कमरे के अन्दर तहलका मच गया। भारतीय स्त्रियों के सफ़ेद बुर्क़े और चादरें, कुछ दूर रखे हुए थे। वे भाग कर कोनों में घुस गईं। उन्होंने अपनी

पीठें मोड़ लीं। अङ्गरेज़ औरतें उनकी हालत को समझ कर उनके सामने आ कर खड़ी हो गईं, और जहाँ तक बन पड़ा, उन्हें ढक लिया।

इस बीच बरामदे में और झगड़ा बढ़ गया—इस के बाद यकायक फिर सब खामोश हो गये और लौटते हुए पहियों की आवाज़ सुनाई दी। मेम—भीतर लौटी, वह हाँप रही थी, उसने बार बार क्षमा याचना की, उसे अब कुछ शान्ति हुई।

उसने कांपती हुई भारतीय स्त्रियों से कहा, 'मुझे बड़ा दुःख है। किन्तु अब सब हो चुका। मुझे क्षमा कीजिये अब आप किसी चीज़ से न डरें।' इसके बाद उसने हमलोगों की ओर रुख करके कहा,—'नौजवान रूज़वेल्ट और उसकी स्त्री मिलने आए थे। उन्हें पता न था।'

इसी के बाद जो बात चीत हुई उसमें एक सब से छोटी उम्र की हिन्दोस्तानी स्त्री ने कहा कि,—

'आपके लिये हमारे परदे को पसन्द करना कठिन है। किन्तु हमें और किसी बात का पता ही नहीं। हम अपने घरों के अन्दर सुख और शान्ति के साथ एक सुरक्षित जीवन व्यतीत करती हैं। और जिस तरह के पुरुष होते हैं उसे देखते हुए यदि हम बाहर रहें तो भयभीत और दुःखी रहें।'

किन्तु एक अधेड़ आयु की स्त्री ने दूसरी तरह के विचार प्रकट किये। उसने दूसरी स्त्रियों से बचा कर धीरे से कहा,—'मैं अपने पति के साथ इङ्गलिस्तान हो आई हूँ, वहाँ पर मेरे पति ने मुझसे परदा छुड़वा दिया था, क्योंकि इङ्गलि-

स्तान में स्त्रियों का आदर होता है। मैं स्वतंत्रता से गलियों में, दूकानों पर, गैलरियों में, बागों में और दोस्तों के घरों में आती जाती थी और सदा बिल्कुल खुश रहती थी। कोई न मुझे छेड़ता था, न डराता था। पुरुषों और स्त्रियां दोनों के साथ अनेक बार मैंने बातें की और मुझे उसमें बड़ा आनन्द आया। ओह, वह जीवन बड़ा विचित्र था—स्वर्ग था! किन्तु इस देश में—यहां कुछ नहीं है। मुझे अपने घर की सामाजिक स्थिति के अनकूल जनाने के अन्दर रहना पड़ता है, सख़्त परदा करना पड़ता है, सिवाय स्त्रियों के या अपने पति के और कोई देखने को नहीं मिलता। हम कुछ देख नहीं सकते। हमें कुछ पता नहीं। हमारे पास कोई बात नहीं, जो हम एक दूसरे से कहें। हम लड़ते हैं। चित्त ऊब जाता है। किन्तु ये लोग'—उसने चुपके से सब से वृद्धी स्त्री की ओर सिर हिला कर कहा—'ये लोग नहीं मानतीं। केवल हमारी मेज़बान के कारण इस तरह की स्त्रियें आज यहां आ गईं। इससे अधिक के लिये वे कभी राज़ी न होंगी। और यदि हम लोग परदे के नियम को अणुमात्र भी ढीला करना चाहें तो हर घर के अन्दर हमारे जीवन को एक मुसीबत बना देने के सब सामान मौजूद है।

इसके बाद उन सब के चेहरों को देखने से इन बातों का चित्र नज़र के सामने आ जाता था। नई स्त्रियों के चेहरे सुन्दर भावशून्य मालूम होते; जो उस स्त्री की उम्र की थीं जो कि बात कर रही थी उनके चेहरों में अकथनीय उदासीनता और तकान मालूम होती थी; और बूढ़ियों की आंखें तेज़ और उनके लोहे के से होठों पर सत्ता चमकती थी।

कलकत्ता यूनीवर्सिटी कमीशन की रिपोर्ट जिल्द दो, भाग १ में पृष्ठ ४—५ पर लिखा है,—

"उच्च श्रेणी की तमाम कट्टर बङ्गाली स्त्रियें चाहे हिन्दू, हों या मुसलमान, छोटी सी आयु में परदे के अन्दर करदी जाती हैं और अपनी शेष आयु घरों के अन्दर बाहर के ससार से सर्वथा पृथक गुजार देती हैं। घर की सबसे बूढ़ी स्त्री उन पर शासन करती है। यह परदा हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमानों में अधिक कडा है। × × × थोडी सी स्त्रियों ने जिनपर पश्चात्य विचारों का प्रभाव है परदा छोड दिया है, × × × [लेकिन उनके विषय में] अधिकाश देश वासी यह समझते हैं कि ये भ्रष्ट हो गई ।

किन्तु बम्बई में बहुत कम परदा है। निस्सन्देह इसका मुख्य कारण पारसी स्त्रियों की उच्च स्थिति और उनका उदार प्रभाव है। मद्रास प्रान्त में केवल मुसलमान और धनाढ्य हिन्दू परदा करते हैं। दो हिन्दू सज्जनों ने, जो दोनों इङ्गलिस्तान में वैज्ञानिक शिक्षा पाए हुए थे, मुझसे कहा कि हमने स्वयं बहुत चाहा कि हमारी स्त्रिया परदा न करें, हमने अपनी लडकियों को एक यूरोपियन स्कूल म शिक्षा के लिये भेज रखा है। किन्तु हमारी पत्नियों को परदे के बाहर रहना अच्छा मालूम हुआ। उन्हें इससे क्लेश हुआ और उन्होंने बडी खुशी से फिर से परदे में रहना शुरू कर दिया और इस समय इस देश की जो हालत है उसे देखते हुए हमें यह मानना पडता है कि उन पत्नियों के पक्ष में भी बहुत कुछ कहा जा सकता है। हिन्दोस्तान में और उसके बाहर स्त्रियों के उच्च पद के विषय में हिन्दू महा पुरुषों के सुन्दर कथन प्राय सुनने में आते हैं मनु के

निम्न लिखित कथन जैसे वाक्य प्रायः उद्धृत किये जाते हैं,—

जहां स्त्री का आदर नहीं होता।
वहां यज्ञ निष्फल जाते हैं।

किन्तु जैसा कि मिस्टर गान्धी ने थोड़े से में मुझसे साबरमती में १७ मार्च सन १९२६ को कहा था,—'उपदेश का क्या मूल्य है। यदि हमारा व्यवहार इसके विपरीत है तो।'

परदे का एक नतीजा यह है कि उस में तपेदिक् खूब फैलता है डाक्टर आर्थर लैङ्कस्टर ने अपनी पुस्तक 'ट्यूबरक्लोसिस इन इण्डिया' में पृष्ठ १४० पर दिखलाया है कि परदे का पालन करने वाली श्रेणियों में तपेदिक् से स्त्रियों की मृत्यु भयङ्कर रूप से अधिक होती है उन्होंने यह भी दिखलाया है कि एक ही जगह रहने वाले सब ही सी आदतों और एक ही सी हैसियत के लोगों में से जो लोग परदे का पालन करते हैं उनमें उन लोगों की अपेक्षा जो अपनी स्त्रियों को इतना बन्द नहीं रखते तपेदिक् से मौतें बहुत ज़्यादा होती हैं।

कलकत्ते के हैल्थ अफ़सर ने अपनी सन् १९२७ की रिपोर्ट में लिखा है,—

'शहर की मृत्यु संख्याओं में आम तौर पर उन्नति हुई है, तथापि अभी तक स्त्रियां पुरुषों की अपेक्षा ४० फ़ी सदी से अधिक ज़्यादा मरती हैं × × × जब तक लोग इस बात को न समझेंगे कि एक बड़े शहर के अन्दर सिवाय उन अत्यन्त धनाढ्य लोगों के जो अपनी ही ज़मीनों में बड़े बड़े खुले मकान बनवा सकते हैं, परदे के कड़े पालन का आवश्यक परिणाम अनेक स्त्रियों की अकाल मृत्यु है तब तक शहर से यह कलङ्क कभी दूर न होगा।'

लन्दन स्कूल आफ हाइजीन एन्ड ट्रापिकल मेडीसन के डाइरेक्टर डाक्टर एन्ड्रयू बालफोर ने अपनी पुस्तक 'हेल्थ प्राबलेम्स आफ दी एम्पायर' में पृष्ठ २८६ पर, यह दिखलाते हुए कि भारतवासियों की आदतें किस प्रकार तपेदिक की बीमारी के फैलने में सर्वथा सहायक होती हैं, लिखा है कि, 'जिस रिवाज के अनुसार बड़े बड़े कुटुम्ब एक साथ रहते हैं परदे का रिवाज जिसके कारण स्त्रियों को मकानों के अंधेरे और मैले हिस्सों में रहना पड़ता है, बाल विवाह जिसके कारण हजारों नौजवानों की जिन्दगी चुस जाती है, जहां चाहे थूक देने की हानिकर आदत।' इन सब चीजों के साथ साथ गन्दगी, सफाई की कमी, घर में बन्द रहना, हवा और व्यायाम की कमी,—ये सब चीजें मिलकर तपेदिक के कीड़ों के लिये कि बहुत अच्छा उद्गम स्थान बना देती हैं। अनुमान किया गया है हिन्दोस्तान में प्रतिवर्ष ६ लाख से लेकर १० लाख तक मनुष्य तपेदिक से मरते हैं।"

यह भी अनुमान किया गया है कि आज कल हिन्दू और मुसलमान मिला कर चार करोड़ हिन्दोस्तानी स्त्रियें परदे में रहती हैं*। किन्तु जिन अनुभवी अफसरों से मैं बात चीत कर सकी उनकी राय यह है कि इस अनुमान में यदि वे स्त्रियां गिनी गई हैं जो इतने कड़े परदे में रखी जाती हैं कि उन्हें कभी अपने घरों से नहीं निकलने दिया जाता और न सिवाय अपने पति या पुत्र के वे और किसी पुरुष को देख सकती हैं तो इस तरह की स्त्रियों की संख्या पूर्वोक्त अनुमान से लगभग एक तिहाई से अधिक न होगी। जो स्त्रियां अपने

*'इण्डिया एन्ड मिशन्स, दी बिशप आफ डोरनोकेल।

विवाह के दिन से लेकर अपनी मृत्यु के दिन तक कभी बाहर के संसार को नहीं देखतीं उनकी संख्या बहुत सोच समझ कर अन्दाज़ा लगाने पर १, १२,५०,००० और १,७२,६०,००० के बीच में मालूम होती है।

जो स्त्रियें परदे में रहती हैं उनके दिमागों पर परदे का जो असर पड़ता है उसके विषय में प्रामाणिक हिन्दोस्तानियों की राय उद्धृत करना ही उचित प्रतीत होता है। एक भारतीय डाक्टर—एन० एन० पारेख ने बड़ी व्यवस्थापिका सभा के सामने कहा था:—

'अज्ञानता और परदे की प्रथा दोनों ने मिल कर भारतीय स्त्रियों को पशुओं की स्थिति तक पहुँचा दिया है। वे न अपनी रक्षा कर सकने के योग्य हैं और न उन की कोई स्वतन्त्र संकल्प शक्ति है। वे अपने पुरुष मालिकों की गुलाम हैं।'

प्रसिद्ध स्वराजिस्ट नेता लाला लाजपत राय ने दिसम्बर सन् १९२५ में बम्बई की हिन्दू महासभा के सामने सभापति की हैसियत से वक्तृता देते हुए कहा था:—

'आजकल के हिन्दू जीवन का मुख्य गुण अकर्मण्यता है हिन्दुओं की व्यक्तिगत और सामाजिक तमाम मानसिक स्थिति इन चार शब्दों में बन्द है, 'जो होना है हो' हिन्दुओं को हर बात के सामने झुक जाने की आदत पड़ गई है। यह प्रवृत्ति, यह मानसिक स्थिति और यह आदत हिन्दुओं को हिन्दू माताओं से मिली है। मालूम होता है यह गुण इनके रक्त तक में मिला हुआ है। हमारी स्त्रियों की उन्नति के मार्ग में बहुत सी बाधाएं हैं। न केवल अज्ञान अन्धविश्वास ही उनके दिमाग़ को खोखला कर देते हैं, बल्कि

शारीरिक दृष्टि से भी उनकी अवस्था अत्यन्त निर्बल है × × × स्त्रियों को बहुत कम ताजी हवा मिलती है, और व्यायाम लगभग बिल्कुल नहीं। फिर हिन्दू जाति किस प्रकार उन्नति कर सकती है अथवा किस प्रकार बलवान बन सकती है? हमारी बहुत सी स्त्रियों को तपेदिक हो जाता है और वे बहुत छोटी उम्र म मर जाती हैं। उनमें से जिनके बच्च होते हैं वे अपने बच्चों को भी विरसे में यह बीमारी दे जाती हैं। तपेदिक के रोगियों को शेष घरवालों से अलग रख सकना लगभग असम्भव है। × × × किसी झगडालू दुर्गे गुस्ताख और बदतमीज स्त्री से अधिक घृणित कोई चीज नहीं होती, किन्तु यदि हिन्दू स्त्रियों के लिये बलवान, साहसी स्वतन्त्र ओर योग्य माताए बनने का सिवाय इसके और कोई उपाय न हो तो इस समय की पतित अवस्था से मैं उनमें ये सब अवगुण उत्पन्न हो जाना अधिक पसन्द करु गा।'

इस जगह, गर्ल्स कालेज कलकत्ता की अंगरेज लेडी प्रिन्सिपल का व्यवहारिक तजुरबा, दिया जा सकता है। कलकत्ते के हेल्थ अफसर के बयान से जो ऊपर दिया जा चुका है, यह आठ साल बाद का तजुरबा है। इसका सम्बन्ध बंगाल की उदार और अत्यन्त उन्नत घरों की लडकियों से है।

'उन्हें व्यायाम से रुचि है, और मजबूर हो कर ही वे व्यायाम करती हैं। यदि वे कर सकें तो खुली हवा में जाना भी छोड दें। औसतन विद्यार्थी अत्यन्त दुर्बल होती हैं। उसे अच्छे भोजन, व्यायाम और इलाज के तौर पर जिम्नैस्टिक की जरूरत है। उसकी छाती सिकुडी हुई और रीढ की हड्डी

बहुधा टेढ़ी होती है। उसे खेल कूद से कोई शौक नहीं होता ××× हमें इस अधिकार की आवश्यकता है××× जिससे हम विद्यार्थी को उन इलाजों के लिये, जो उसे स्त्री बनाने में सहायक होंगे, मजबूर कर सके।*

किन्तु हिन्दोस्तानी लड़कियों में उनके दिवालिये जिस्म को दुरुस्त करने के लिये शारीरिक शिक्षा के प्रचार की आशा करना किसी बाहर से आए हुए पाश्चात्य मनुष्य के लिये स्वप्न तुल्य है। पुरातन परिपाटी के भारत को इसकी आवश्यकता नहीं।

'हिन्दू पिता यह शिकायत करता है कि मैं अपनी लड़की को वेश्या नहीं बनाना चाहता। उसका व्याह परिमित कुटुम्बों के अन्दर ही करना होगा; और वहाँ किसी न किसी बुढ़िया औरत को यह कहने का अवसर मिलेगा कि, "इसे लड़की को खुले बज़ार हाथ पैर मटकाना सिखाया गया है। निस्सन्देह ऐसी निर्लज्ज लड़की को हमारे घर में नहीं लाना चाहिये।[१]"

इस प्रमाण को देने वाला लिखता है कि, 'यथार्थ में इस प्रकार की आपत्ति केवल सनातनियों को ही होती है, किन्तु सनातनियों की तादाद बहुत ज़्यादा है।

कलकत्ते के आक्सफ़ोर्ड मिशन ने अपने २० फ़रवरी

---

*सिस्टर मेरी विक्टोरिया प्रिन्सिपल आफ़ दी डिओसीज़न कालेज फ़ार गर्ल्स, फिफ्थ क्विन्क्वीनिअल रिव्यू आफ़ दी प्रोग्रेस आफ़ एजूकेशन इन बंगाल, पैराग्राफ्स-५२१-५२४।

१ दी इन्सपेक्ट्रेस फार ईस्टर्न बंगाल कलकत्ता यूनिवर्सिटी कमीशन रिपोर्ट, वाल्यूम २ भाग १ पृष्ठ २३।

१६२८ के साप्ताहिक पत्र में 'तू हत्या न कर' शीर्षक सम्पादकीय लेख के शुरू में यह लिखा था।*

'कुछ वर्ष पूर्व हमने पूर्वोक्त शीर्षक देकर एक लेख छापा था। जिसमें एक स्त्री लेखिका ने स्पष्ट शब्दों में बंगाल के अन्दर परदों के पीछे और जनानखानों में एकत्रित स्त्रियों की तन्दुरुस्ती और उनके जीवन के भयानक ह्रास का वर्णन किया था। हमने सोचा था कि हेल्थ अफसर की रिपोर्ट के आधार पर लिखे हुए उस समय के इस आविष्करण से हमारे पास विरोध के पत्रों का ढेर इकट्ठा हो जायगा और लोग तुरन्त सुधार की जिज्ञासा करेंगे। किन्तु पुरुषों पर इसका जरांभर भी असर नहीं हुआ। जाहिरा, लोगों में लेशमात्र भी हित पैदा नहीं हुआ। यदि जादू टोने और जंतर मंतर के इस्तेमाल के भोले और अनाड़ीपन की आप किसी लेख में निंदा करदें तो तुरन्त समालोचना शुरू हो जावेगी, और अन्ध विश्वास की बेहूदा बातों को ग्रेजुएट तक जोरों से समर्थन करने लगेंगे। किन्तु इस सत्य वर्णन पर भय की एक भी आवाज नहीं उठी कि, कलकत्ते में प्रति मनुष्य पीछे पांच स्त्रियां राजयक्ष्मा के रोग से मरती हैं।"

फिर भी इस विषय में मौजूदा स्थिति देखते हुए, पाश्चात्य शिक्षा पाए हुए युवकों में थोड़ी सी बेचैनी दिखाई देती है। उनमें से कुछ कहते हैं कि हम हिन्दोस्तान को पाश्चात्य विचारों से मुक्त करने के बाद, स्त्रियों के विषय को अवश्य अपने हाथों में लेंगे। फिर भी बहुधा इस विषय में इतनी ज्यादा अधीरता लोगों में नहीं दिखाई देती जितनी पूर्वोक्त

* दा इल्सट्रेटेड वीकली आफ इंडिया ... बंगाल आदि पृष्ठ २४।

पत्रिका में प्रकट अवनी मोहन दास गुप्त के विचारों में है। वे लिखते हैं:—

'मैं "ज़नान ख़ानों" में अपनी माताओं और बहिनों की स्थिति पर विचार करता हूँ तो कांप उठता हूँ। × × × अत्यन्त सवेरे से अत्यन्त रात्रि तक बिना मर्मर ध्वनि किये हुए, अपने समस्त जीवन भर उन्हें वही नित्य कर्म पालन करना पड़ता है, मानों वे स्वयं सहिष्णुता की अवतार हैं। इसके अनेक उदाहरण मिलेंगे जब कि, एक स्त्री विवाह के समय सुसराल जाकर उस समय तक वहां से नहीं निकली, जब तक कि बिचारी मर न गयी वे हमेशा काम के लिये तय्यार रहती हैं मानों उन्हें कोई इच्छा या दुःख नहीं है किन्तु केवल त्याग, उन्हें बिना विरोध के कष्ट सहना पड़ता है × × × मेरा भारतीय युवकों से अनुरोध है कि स्त्रियों की स्वतन्त्रता की पताका फहरादो। उन्हें उनके स्वत्वों को दो × × × क्या मैं मरू भूमि मे चिल्ला रहा हूँ?'

बंगाल तीव्र राजनैतिक अशान्ति का केन्द्र है-भारत में अराजकों की मुख्य सेना पैदा करने, बम फेंकने वालों और हत्यारों का उद्गम स्थान है। बंगाल हिन्दोस्तान में अपने विषय भोग के लिये भी बढ़ा चढ़ा है, प्रत्येक देश के प्रामाणिक डाक्टरों और पुलिस अफ़सरों की यह राय है कि अधिक विषय वासना और विचित्र अपराधों की ओर प्रवृत्ति-इन दोनों में बड़ा सम्बन्ध है। जब विषय तृप्ति के साधारण उपाय समाप्त हो जाते हैं तो अपनी पाप प्रकृत्ति को सन्तुष्ट करने के लिये अनुचित और अस्वाभाविक साधन ढूढ़ने लगता है। किन्तु बंगाल कड़े परदे का भी गढ़ है। हम यह कल्पना किये बिना नहीं रह सकते कि जिन पागलपन के

राजनैतिक पापों में बंगाल के नवयुवकों ने भाग लिया, उनमें उन्हें कुछ न कुछ उत्तेजना अपने परदे के अन्दर के घरेलू जीवन की नीरसता और नैराश्यता से भी अवश्य न मिला हो। जिस नैराश्यता को पश्चिम के उन सिद्धान्तों ने और भी बढा दिया होगा जिन्हें इन नवयुवकों ने तोते की तरह रटा तो था मगर अपना न सके थे।

परिच्छेद दसवां

कुमारियां

ब्रिटिश भारत की स्त्रियां में दो फ़ी सदी से कम पढ़ी लिखी हैं: अर्थात दो फ़ी सदी से कम ऐसी हैं जो किसी भी एक भाषा में कतिपय सरल वाक्यों का एक पत्र लिख सकती हैं अथवा पढ़ सकती हैं। ठीक ठीक पूछा जावे तो सन् १९२१ में इस तरह की पढ़ी लिखी स्त्रियों की संख्या हज़ार पीछे १८ थी॥। उस से दस साल पहले १९११ में हज़ार पीछे केवल १० स्त्रियाँ पढ़ी लिखी थीं। इस वृद्धि के महत्व को समझने के लिये दो बातों पर विचार करना आवश्यक है। पहली बात यह कि सौ वर्ष पहले सिवाय इक्का दुक्का विरली मिसालों के भारत में पढ़ी लिखी औरतों का कहीं निशान तक न था। दूसरी बात यह कि अधिकांश जनता धार्मिक और सामाजिक बिना पर स्त्री शिक्षा की सदा कट्टर विरोधी रही ह और अभी तक विरोध करती है।

ऐ० वे० डु० बुआ ने अपनी पुस्तक 'हिन्दू मेनर्स कस्टम्स एण्ड सेरीमनीज़' १९ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में लिखी थी। उस पुस्तक में उसने पृष्ठ ३३६–७ पर लिखा है:—

'ब्राह्मणों की स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में और दूसरी जातियों की स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में बहुत कम

॥ "इण्डिया इन १९२४-५" एल० एफ० रसब्रूक विलियम्स सी० बी० ई० पृष्ठ २७६।

अन्तर है × × × ये स्त्रियाँ इस योग्य ही नहीं समझी जातीं कि उनमें कोई इस तरह के मानसिक गुण उत्पन्न हो सकें, जिनसे वे अधिक आदर के योग्य बन सकें और जीवन में अधिक उपयोगी साबित हो सकें। × × × इन विचारों का कुदरती नतीजा यह है कि स्त्री-शिक्षा की ओर बिलकुल ध्यान नहीं दिया जाता। यद्यपि बहुत सी छोटी लड़कियों में खासी योग्यता पाई जाती है, तथापि उनके दिमाग सर्वथा अशिक्षित और अविकसित रह जाते हैं। × × × किसी प्रतिष्ठित स्त्री के लिये पढ़ना सीखना अपमान जनक समझा जाता है, और यदि किसी ने कुछ सीख भी लिया तो वह इसे कहते हुए शर्माती है।'

पूर्वोक्त बयान हिन्दुओं के विषय में लिखा गया है। किन्तु भारत के अन्दर इसलाम ने भी स्त्रियों की शिक्षा को नापसन्द किया है। परिणाम यह हुआ कि दोनों धर्मों के अधिकांश लोग स्त्री शिक्षा को अनावश्यक, धर्मविरुद्ध और आपत्तिजनक समझते हैं।

सन १९१७ में भारत के गवरनर जनरल इन कौंसिल ने एक कमीशन मुकर्रर किया, जिसका काम कलकत्ता यूनिवर्सिटी और उससे सम्बन्ध रखने वाली बंगाल की संस्थाओं तथा उनकी स्थिति के विषय में तहकीकात करना और सिफारिश करना था। इस कमीशन में लीड्स, ग्लासगो, मैनचेस्टर और लन्दन की यूनिवर्सिटियों के बड़े बड़े अंगरेज शिक्षक और उनके साथ प्रतिष्ठित हिन्दोस्तानी विद्वान थे। बंगाल का प्रान्त बहुत दिनों से अपने विद्या प्रेम के लिये ब्रिटिश भारत के समस्त प्रान्तों में ऊँचा रहा है। इसलिये जो गवाहियाँ इस कमीशन ने तीन साल के अन्दर जमा कीं

उनसे समस्त भारत के विषय में राय क़ायम करना अन्य प्रान्तों के साथ अन्याय करना न होगा।

स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में दौलतपुर की हिन्दू एकेडेमी के मंत्री मि० ब्रजलाल चक्रवर्ती का निम्न लिखित बयान जो कमीशन की रिपोर्ट की जिल्द १२ में पृष्ठ ४१४ पर दिया हुआ है, पढ़ने योग्य है :—

'हिन्दुओं के धर्मशास्त्रों में यह कड़ी आज्ञा है कि स्त्रियों के सिवाय कुटुम्ब के और किसी तरह के प्रभाव में न आने देना चाहिये। इसीलिये किसी तरह की स्कूल या कालेज की शिक्षा प्रणाली हिन्दू स्त्रियों की आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकती × × × स्त्रियों को घर के अन्दर काफ़ी नैतिक और व्यवहारिक शिक्षा मिल जाती है और जिस तरह की शिक्षा है स्कूलों में दी जा सकती है उससे यह घर की शिक्षा कहीं अधिक महत्व की है।'

कमीशन के एक दूसरे गवाह आसनसोल हाई स्कूल के हेडमास्टर मि० हरिदास गोस्वामी ने इसी विचार को और बढ़ाकर कहा कि:—

'लड़कियों के अन्दर उन्हें शिक्षा देकर इस तरह के शौक पैदा कर देना जिन्हें पूरा करने का उन्हें अपने बाद के जीवन में कोई अवसर न मिलेगा, और इस प्रकार उनमें भाव असन्तोष और अशान्ति के बीज बो देना; बुद्धिमत्ता नहीं है।

एक और गवाह मि० रवीन्द्र मोहन दत्त उसी यूनिवर्सिटी के मेम्बर थे। उन्होंने इस बात पर दुःख प्रकार किया कि, अज्ञान और अन्ध विश्वास का अन्धकार' इतना है कि उसके कारण भारत की स्त्रियां 'अपने शिक्षित पतियों भाइयों और बेटों के साथ सदा लड़ती और उनका बात बात में विरोध

करती रहती हैं। तथापि मि० रवीन्द्रमोहन दत्तकी राय यही थी कि इस विषय में सनातनी हिन्दुओं के ही मत के अनुसार कार्य होना चाहिये। इस गवाह को इस बात का सच्चा डर था कि यदि बाहर से हिन्दू घराने के अन्दर'

'इस तरह के क्रान्तिकारी और अधार्मिकता के विचार फैलाए गए जो कि हमारी इन समस्त प्राचीन संस्थाओं का जो सदियों के तजुरबे से कायम हुई और जो कि मानों हमारे रग में और हमारे रक्त के अन्दर प्रवेश कर गई है' तो भविष्य के लिये आपत्ति का डर है।

किन्तु जब भी स्त्री शिक्षा का विषय भारत की राजनैतिक संस्थाओं में बहस के लिये पेश होता है तो अनेक सज्जन परिवर्तन के पक्ष में वक्तृताएं देने के लिये खड़े हो जाते हैं। सन १९२१ की दिल्ली की बड़ी व्यवस्थापिका सभा में डाक्टर हरी सिंह गौड ने स्त्रियों को परदे में रखने और उन्हें दबाकर रखने की कड़ी निन्दा की। और संयुक्तप्रान्त के शहरों के प्रतिनिधि मुंशी ईश्वर शरण ने मजाक उड़ाते हुए कहा कि,

'× × × इस कलियुग का यह प्रताप है कि लड़कों को पहले शिक्षा दी जाती है और फिर वे अपने बड़ों का हर बात में कहना मानने से इनकार करते हैं × × × यह हमारी मूर्खता है कि हमने अपनी लड़कियों को शिक्षा देना शुरू कर दिया है। × × × यदि यह कार्य जारी रहा तो मैं पूछता हूँ कि क्या आप यह समझते हैं कि आप अपनी लड़कियों पर जिस तरह चाहे हुक्म चला सकेंगे ?'

मुझे याद है कि एक बार मेरे एक परिचित धनाढ्य हिन्दू नौजवान ने जो अभी हाल ही में इङ्गलिस्तान की किसी यूनिवर्सिटी से शिक्षा पाकर लौटा था बड़े जोश में आकर यह कहा

कि मैं हरगिज़ हरगिज़ किसी हिन्दोस्तानी स्त्री से शादी न करूंगा क्योंकि मैं किसी दसवीं सदी की पत्नी के साथ अपने को बांधना नहीं चाहता। उच्च पदवियों के उन भारतवासियों में जिन्होंने पाश्चात्य शिक्षा पाई है यह इच्छा कि उनकी पत्नियां भी उन्हीं की तरह पढ़ी लिखी हों, कभी कभी इतना ज़ोर कर जाती हैं कि वे पत्नियों के साथ विवाह करके बहुत अधिक दहेज पा सकते थे उन्हें छोड़कर वे पेसियों के साथ विवाह करते हैं जिनके साथ उन्हें बहुत कम दहेज मिलता है

इस तरह के लोगों का महत्व अवश्य है किन्तु उनकी संख्या अभी कम है शायद जितनी स्वतन्त्रता स्त्रियों को बम्बई में दी जाती है उतनी किसी दूसरे प्रान्त में नहीं दी जाती, तथापि बम्बई की एजूकेशन रिपोर्ट में लिखा है कि—

शिक्षित लोग अपने बेटों के लिये शिक्षित पत्नियां चाहते हैं और शायद इसी उद्देश से वे अपनी लड़कियों को शिक्षा देते हैं किन्तु ज्योंही वे अपनी लड़कियों में कोई इस तरह की इच्छा देखते हैं जिससे मालूम हो कि लड़की विवाह को रोक कर या मुलतवी करके शिक्षा जारी रखना चाहती है तो वे आमतौर पर तुरन्त लड़कियों को स्कूल से हटा लेते हैं।

मध्य प्रान्त के रिपोर्ट में लिखा है कि:—

जो माता पिता अपने लड़कियों के शिक्षा के विरुद्ध नहीं हैं वे भी यह समझते हैं कि लड़कियों के लिये प्राइमरी तक भी शिक्षा काफ़ी है और प्राइमरी के बाद ही लड़की इतनी बड़ी हो जाती है कि फिर उसे घर के बाहर नहीं भेजा जा सकता।'

आसाम के रिपोर्ट में लिखा है कि:—

'माता पिता अपने लड़कियों को इसलिये स्कूल भेजते हैं

पति पत्नी

त उनके लिये अच्छे और कभी कभी सस्ते दामों पर शौहर मिल सके किन्तु ज्यों ही किसी लड़की के लिये उचित वर मिला तुरन्त उसे स्कूल से उठा लिया जाता है और परदे में डाल दिया जाता है।"

निस्सन्देह अधिकांश लोगों के भाव पूरी तरह से प्राचीन मर्यादा को कायम रखने के पक्ष में हैं। उस मर्यादा को उल्लंघन करना मनुष्य जीवन को आपत्ति में डालना है। इसी आपत्ति को समझने के लिये कलकत्ता युनिवर्सिटी के फिलासफी के प्रोफेसर डाक्टर बृजेन्द्र नाथ शील की निम्न लिखित उपमा बहुत फबती हुई है वह लिखते हैं कि —

'स्त्री एक प्रकार की शराब खींचने वाली है और उसकी नाद में पुरुष घर की खींची हुई शराब है अथवा हिन्दोस्तानी इसे इस प्रकार कहना पसन्द करेंगे कि स्त्री सूत कातने वाली है और पुरुष घर के कते हुये सूत का कपड़ा है।

कलकत्ता युनिवर्सिटी कमीशन की रिपोर्ट में लिखा है कि आमतौर पर लोग इसी तरह की दलीलें दे कर स्त्री शिक्षा का विरोध करते हैं और प्रायः वे लोग भी इस विरोध का समर्थन करते हैं जो पूरी तरह पाश्चात्य शिक्षा पा चुके हैं। यदि लड़की को स्कूल भेजा भी जाता है तो उसका उद्देश्य शिक्षा देना नहीं होता, क्योंकि शिक्षा से तो लोगों को इतनी घृणा है और कोई उसकी आवश्यकता अनुभव नहीं करता, वरन लड़की को इस उद्देश्य से स्कूल भेजा जाता है कि उसे घर वालों से बचा कर चन्द घंटों के लिये एक सुरक्षित जगह में रखा जा सके।

मि० बी० मुकर्जी एम० ए० एफ० आर० ई० एस० लिखते हैं कि—

'इस कड़ी सामाजिक पद्धति के कारण जिसके अनुसार १२ वर्ष की लड़की की शादी कर देना आवश्यक है और धर्म है, उस आयु के बाद साधारण हिन्दू लड़की के शिक्षा को जारी रखना असम्भव हो जाता है।'

यह अनुमान किया गया है कि जितनी लड़कियां स्कूल भेजी जाती हैं उनमें से ७३ फ़ी सदी पढ़ना लिखना सीखने से पहिलेही उठा लीजाती हैं।

सन १९२२ में अकेले बंगाल प्रान्त में जितनी लड़कियां स्कूल में पढ़ने के लिये भेजी गयीं उनमें से सौ पीछे केवल, एक की शिक्षा प्राइमरी क्लास के बाद जारी रह सकी।

भारत की स्त्रियों में शिक्षा प्रचार का कार्य अत्यन्त कठिन और निराशाजनक है। इसकार्य में जो कुछ भी थोड़ी बहुत तरक्की हुई है, उस में सबसे पहली और बड़ी बात यह ज़ाहिर होती है कि अंगरेज़ सरकार कितने धैर्य और परिश्रम के साथ लोगों की रुचि इस ओर खींचने का प्रयत्न करती रही है, दूसरी बात यह ज़ाहिर होती है कि अगरेज़ और अमरीकन पादरियों ने इस सम्बन्ध में कितना कठिन परिश्रम किया है: और तीसरी बात यह ज़ाहिर होती है कि हिन्दोस्तानियों में जो सबसे अधिक उन्नत विचारों के हैं वे सोचने में और अपने विचारों को कार्य का रूप देने में कितनी योग्यता से काम करते रहे हैं। किन्तु अनुमान यह किया जाता है कि यदि स्वयं भारतवासी अपनी कार्यप्रणाली में ज़बरदस्त परिवर्तन न करेंगे तो कुछ लोगों के विरोध और कुछ की अकर्मण्यता के मुक़ाबले में पूर्वोक्त तीनों शक्तियों के मिले रहने पर भी कम

नोट - प्रोग्रेस आफ इज़ूकेशन बंगाल, ज़े डबलू होम, एम० ए० छठी पंचवर्षीय रिव्यू"

मे कम १५ साल इस बात में लगेंगे कि हिन्दोस्तान की १२ फी सदी स्त्रियों को प्राइमरी तक की शिक्षा दी जा सके।

सन् १९०८ मे बम्बई के निकट पूना में सेवा सदन की बुनियाद रखी गई थी। इस संस्था का उद्देश्य निर्धन स्त्रियों और लडकियों को प्राइमरी स्कुलो में शिक्षा देने का कार्य तथा अन्य उपयोगी कार्य सिखलाना है। भारत में हिन्दोस्तानी स्त्रियों की यह अपने ढंग की सब से पहली संस्था है। हाल की रिपोर्ट से मालूम होता है कि इस संस्था में लगभग एक हजार स्त्रिया शिक्षा पाती हैं। इस संस्था की सफलता से जाहिर होता है कि यदि भारत की अधिक भाग्य शाली स्त्रिया चाहें तो वे अपनी कम भाग्यशाली बहिनो के लिये क्या कुछ कर सकती हैं। किन्तु इस संस्था का कार्य केवल बम्बई प्रान्त तक परिमित है। और सरकारी रिपोर्ट से मालूम होता है कि दुर्भाग्यवश इसके मुकाबले की कोई और संस्था भारत के किसी दूसरे भाग में नहीं है।

मैं एक दूसरे परिच्छेद में दिखाऊंगी कि सरकार की ओर से शिक्षा प्रवन्ध का कार्य हाल में भारत वासियो के हाथों में सौंप दिया गया है।

सन् १९२१–२२ में समस्त ब्रिटिश भारत के अन्दर प्राइमरी स्कूलों से लेकर आर्टस और व्यवसायिक कालेजों तक छोटे बड़े सब २३,७९८ गर्ल्स स्कूल थे। इनमें प्राइमरी स्कूलों में पढने वाली लडकियो की संख्या १२,६७,६४३ थी, मिडिल स्कूलों में २४,५५५, हाई स्कूलों में इससे भी कम अर्थात् ५,८१८। ये संख्याएं सन १९१७—२२ की प्रोग्रेस आफ एजूकेशन इन इण्डिया' जिल्द २ से ली गई हैं।

इस रिपोर्ट में लिखा है कि 'यद्यपि प्राइमरी शिक्षा से

आगे बढ़ने वाली लड़कियों की संख्या अभी तक शोक जनक और अत्यन्त कम है—अर्थात् समस्त भारत की १,५०,००,००० की ऐसी आबादी में से जो स्कूल जाने के योग्य आयु की हैं, केवल तीस हज़ार—तथापि सन १६१७ की संख्या के मुक़ाबले में यह संख्या ३० फ़ी सदी अधिक है।

सन् १६२४-२५, में बम्बई प्रान्त के अन्दर कुल स्त्रियों में से केवल २०—१४ फ़ी सदी किसी तरह के स्कूलों में शिक्षा पा रही थीं, सन् १६१६ में समस्त भारत में हिन्दू स्त्रियों में से ६ फ़ी सदी और मुसलमान स्त्रियों में से १.१ फ़ी सदी स्कूलों में पढ़ती थीं*।

पूर्वोक्त रिपोर्ट में यह भी लिखा है कि, 'इस तरह के स्कूलों की संख्या बढ़ाना जिन में शुरू शुरू में लड़कियें खेल-कूद करती रहें और जहां से कि धीरे धीरे वे लोअर प्राइमरी स्कूलों में चली जावें बहुत आसान है। इस तरह के स्कूलों की संख्या दिखाकर लोगों पर प्रभाव डाला जा सकता है, किन्तु शिक्षा पर उसका कोई असर न होगा और जनता का धन व्यर्थ नष्ट होगा।'

किन्तु स्त्रियों को अशिक्षित बनाए रखने के प्रयत्न में, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि पुरानी दाइयों को और परदे की प्रथा को क़ायम रखने में सब से ज़बरदस्त शक्ति प्राचीन स्थिति पालकता की और बूढ़ी स्त्रियों की शक्ति है। ये बूढ़ी स्त्रियें केवल अपने स्वर्ग के देवताओं और अपने पृथ्वी के देवताओं को प्रसन्न रखने के लिये अपनी शक्ति भर अपनी लड़कियों को अपनी तरह अशिक्षित रखने में जान लड़ा देंगी।

---

*'प्रोग्रेस आफ़ ऐजूकेशन इन इण्डिया' १९१७-१९२२ जिल्द १, पृष्ठ १२६

उस मुहफट बूढे सिख किसान सिपाही कैप्तान हीरा सिंह ग्रार ने एक वार किसी सुधार के सम्बन्ध में व्यवस्थापिका सभा के अन्दर कहा था —

'कितनेही लाला और कितनेही पडित प्लेटफार्म पर खडे होकर कहते हैं "अब इस सुधारका समय है अब उस सुधारका समय है" किन्तु होता क्या है? जब ये लोग घर जाते हैं और फिर अगले दिन सुबह हम से मिलते हैं तो कहते हैं, "हम क्या कर सकते हैं? हम लाचार हैं। जब हम घर वापस गये तो जो कुछ हम करना चाहते हैं औरतें हमें नहीं करने देतीं। वे कहती हैं कि हमें तुम्हारी वक्ताओं की परवाह नहीं किन्तु हम तुम्हें उन बातों पर अमल न करने देगे जो तुम बाहर लोगों से कह आये हो।''

स्त्रियों को अशिक्षित बनाये रखने में प्राचीन प्रथा की इन पुरोहितानियों के अतिरिक्त एक और जबरदस्त शक्ति काम करती है। यह शक्ति, स्वार्थ और धन की शक्ति है। जो मनुष्य अपनी लडकी की शादी न कर उसे इस लोक तथा परलोक में इस तरह का दंड भोगना पडता है जिससे सब बचना चाहते हैं। प्राय कोई मनुष्य भी बिना इस प्रकार का दहेज दिये जिसमें उसकी कमर टूट जाय अपनी लडकी की शादी नहीं कर सकता, शादी का खर्च उस दहेज के अतिरिक्त होता है और यह खर्च इतना अधिक होता है कि आमतौर पर विवाह के बाद लडकी का बाप कर्ज में डूब जाता है। आमतौर पर लडकी की आयु बारह वर्ष होने के पहिले ही पिता को यह भार उठाना पडता है। तब उसे शिक्षा देने में और अधिक व्यय क्यों करे। यदि पिता गरीब है और अपनी लडकी से मजदूरी कराकर कुछ कमा सकता है तो वह सब हानि उठा

कर उसे स्कूल क्यों भेजे, विशेष कर जब कि लड़की थोड़ेही दिनों के बाद उसे सदा के लिये छोड़कर दूसरे की सेवा में चली जावेगी। कलकत्ता युनिवर्सिटी के फ़ेलो राय हरिनाथ घोष बहादुर ने कमीशन की रिपोर्ट जिल्द १८ पृष्ट ४८५ में इस विचार को इस प्रकार प्रगट किया हैः--

'लोग आम तौर पर अपने लड़कों को शिक्षा देना पसन्द करते हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि लड़के बुढ़ापे में हमें आराम देंगे और सुख पहुंचायेंगे और घर का नाम जगायेंगे, किन्तु लड़कियां विवाह होते ही दूसरे के हांथों में चली जायेंगी'।

एक औसत हिन्दोस्तानी बाप को चाहे वह किसी भी श्रेणी का हो इस तरह की दलील ठीक मालूम होती है। परिणाम यह है कि भारत की मातायें बनने का महत्वपूर्ण कार्य अशिक्षित और अबोध बालिकाओं की समझ और उनकी बुद्धिमत्ता पर छोड़ दिया जाता है।

जब कि लड़कियों की प्रारम्भिक शिक्षा तक के लिये लोगों के इस तरह के भाव हैं तो उच्च शिक्षा की कठनाइयों का अनुमान करना अधिक कठिन नहीं है। कलकत्ता युनिवर्सिटी में मोहनी मोहन भट्टाचार्य ने कमीशन की रिपोर्ट जिल्द १८ पृष्ठ ४११ पर लिखा है किः—

"भारतीय स्त्रियों के लिये उच्च शिक्षा का प्रश्न × × × व्यवहारिक सुधार के क्षेत्र के लगभग बाहर प्रतीत होता है। किसी भी कट्टर हिन्दू या मुसलमान स्त्री न कभी कालेज में नाम लिखाया न कभी स्कूल की उच्च कक्षाओं तक पढ़ा। जो लड़कियां युनिवर्सिटी की शिक्षा पाती हैं वे या तो ब्राह्मणों की होती हैं या ईसाई × × × वो दिन अभी बहुत दूर है जब कि बंगाल के अन्दर युनिवर्सिटी को लड़कियों की एक बड़ी

अथवा अच्छी संख्या के लिये उच्च शिक्षा का प्रबन्ध करना पड़ेगा'।

सबसे हाल की रिपोर्ट से मालूम होता है कि समस्त ब्रिटिश इंडिया में आर्टस और व्यवसायिक कालिजों के अन्दर लड़कियों की सख्या केवल ६६१ है। मि० भट्टाचार्य के शब्द एक प्रकार भारतवासियों को दोषी निन्दनीय ठहराते हैं किन्तु राय सतीशचन्द्र सेन बहादुर का स्पष्ट वक्तव्य ऐसा है जिससे अधिकाश भारतवासी सहमत होंगे। कमीशन की रिपोर्ट की बारहवीं जिल्द में पृष्ठ ४०१ पर उनका बयान इस प्रकार दर्ज है —

'पश्चिम के उन्नति जातियों में जिन में कि स्त्रिया पुरुष के लगभग तुल्य समझी जाती है और जहा पर हर एक स्त्री विवाह की आशा नहीं कर सकती, वहा स्त्रियों के लिये उच्च शिक्षा आवश्यक हो सकती है। किन्तु × × × पाश्चात्य प्रणाली × × × भारतवर्ष की स्त्रियों के लिये न केवल अनुपयुक्त ही है वरन उन्हें चरित्र भ्रष्ट कर देने वाली भी है × × × यह प्रणाली भारतीय स्त्रियों के आदर्शों और उनके स्वभाव दोनों को नाश कर डालती है।"

अब केवल विवाह होने के बाद स्त्रियों की शिक्षा का प्रश्न रह जाता है। भारतवासियों के आजकल के विचारों को देखते हुये इस प्रश्न को केवल एक शब्द में खतम किया जा सकता है—'अव्यवहारिक बम्बई के सेवा सदन की विद्यार्थिनियों में कुछ फी सदी विवाहित स्त्रिया भी हैं किन्तु ये सब मन दूर स्त्रिया है, जो रोज़ दो तीन घंटे के लिये पढ़ने आती हैं। ज्यों ही कि कोई लड़की अपने पति के घर गई तुरन्त चाहे उसकी सामाजिक स्थिति कुछ भी क्यों न हो अनेक कार्य

उसके सर पर लाद दिये जाते हैं। उदाहरण के लिये उसे अपने पति की सेवा करनी पड़ती है सास की सेवा करनी पड़ती है और घर के देवी देवताओं की सेवा करनी पड़ती है। थोड़े ही दिनों में वह पुत्रवती हो जाती है। फिर दूसरे कामों के लिये न उसमें शक्ति रह जाती है न अवसर मिलता है, इसके अतिरिक्त यदि उसे शिक्षा भी दी जावे तो इसके लिये स्त्री शिक्षकों का मिलना आवश्यक है क्योंकि कोई पुरुष अब उसके पास नहीं जा सकता। इस प्रकार स्त्रियों की उच्च शिक्षा का प्रश्न एक ऐसा सर्प बन गया जिसने अपनीही दुम अपने मुंह में रख ली।

क्योंकि हम अभी देख चुके हैं कि जिस प्रथा के कारण भारतीय स्त्रियों के लिये शिक्षा प्राप्त करना मना है उस प्रथा के कारण ही उन अध्यापिकाओं का तैयार किया जा सकना भी असम्भव है जो कि इस प्रथा को तोड़ सकें। जिन स्त्रियों को अध्यापिका बनने की शिक्षा दी गयी है उनकी शिक्षा और योग्यता दोनों इतनी कम है कि वे आज कल के स्कूलों के लिये भी काफ़ी नहीं है। जनाने में शिक्षा का पहुँच सकना अभी तक सफल नहीं हुआ। यह एक ऐसा दूसरे देश का वृक्ष है जो यहां की मिट्टी में नहीं पनपता।

यह बात कि लोग लड़कियों की शिक्षा पर अधिक धन व्यय करना व्यर्थ समझते हैं केवल कुछ विशेष श्रेणियों तक ही परिमित नहीं हैं। रईस और धनाढ्य लोगों में यह विचार वैसा ही मिलता है जैसा कि उनके गरीब भाइयों में।

इस विषय की एक मिसाल लाहौर का कीन मेरीज कालेज है। यह संस्था वर्षों हुए दो अङ्गरेज स्त्रियों ने क़ायम की थी। उन्होंने यह देखा कि जो वह बहुत थोड़ी सी लड़कियां उस समय

शिक्षा पाती थीं, वे यदि सब नहीं तो अधिकांश छोटी जाति की होती थीं और राजाओं की लडकिया, भावी नरेशों की पत्नियां और माताएँ जिनमें कुछ को शायद अपने पुत्रों के नाबालिग रहने तक स्वयम राजकाज सभालना होगा, वे सर्वथा अज्ञानान्धकार में डूबी रहती थीं। इन दोनों अङ्गरेज स्त्रियों ने जो काय शुरू किया उसको ओर सरकार ने भी सहानुभूति प्रकट की। मलका मेरी उन दिनों भारत आई थीं उस जाश में आकर राजाओं ने कुछ चन्दा भी दिया सरकार ने उससे दुगुना धन दिया अच्छे अच्छे मकान खडे कर दिये गये और सजा दिये गये किन्तु यहाँ पर राजाओं की उदारता एक प्रकार समाप्त हो गयी।

बात बात में यह देखने में आता है कि यदि किसी धनाढ्य हिन्दुस्तानी के नाम पर उसकी यादगार में कोई इमारत बनवादी जावे, चाहे वह स्कूल हो, अस्पताल हो या कुछ भी क्यों न हो, यह बात उसे बहुत पसन्द आती है, किन्तु एक बार जब इमारत खडी हो गयी तो उसके यथोचित उपयोग के लिये उन महाशय से एक पैसा ले सकना भी प्राय असम्भव है। इस संस्था की ओर शुरू में लोग उदासीन थे। इसलिये उस उदासीनता को मिटाने के लिये शुरू में यह जरूरी था कि पढाई की कोई फीस न ली जावे। आज दिन बढते बढते लगभग इस प्रकार फीस ली जाती है—बाहर के विद्यार्थियों से छोटे दर्जों में पाच रुपये महीने; बडे दर्जों में दस रुपये महीने, बोर्डिङ्ग हाउस में रहने वाली लडकियों से बीस रुपये माहवार से लेकर साठ रुपये माहवार तक, इस में पढाई की फीस, खाना, धोबी और दवा सब शामिल हैं।

ये फीस केवल उस समय तक के लिये ली जाती हैं जिनने

समय तक कि लड़कियां कालेज में रहती हैं। इस पर भी किसी किसी लड़की के पिता हिसाब चुकता करने में देर करते हैं और झगड़ा सा करते हैं। इस तरह एक लड़की के पिता ने पत्र लिखा कि आपने कागज़ कलम के लिये दो रुपये का बिल भेजा है मेरी दो लड़कियां केवल दो महीने के अन्दर आपके स्कूल में दो रुपये का केवल कागज़ इत्यादि खर्च कर चुकी हैं, मेरी समझ में यह बहुत ज़्यादे हैं। उन्हें इस तरह की कीमती चीज़ें न खर्चनी चाहियें: यह उचित नहीं है। इस बिल का रुपया नहीं मिलना चाहिये।

एक दूसरी लड़की के संरक्षक ने इस बात के ऊपर कि उसकी छोटी सी लड़की के कपड़े वालों को बांधने के लिये दो गज़ फीता ख़रीद लिया गया था तीन सप्ताह तक पत्र व्यवहार पूछपाछ और एतराज़ जारी रहे।

अभी तक हिन्दोस्तान के प्रायः सभी धनी लोगों को यह विश्वास है कि यदि उनकी लड़कियों को स्कूलों में शिक्षा देना आवश्यक ही है तो सरकार को उनसे फ़ीस नहीं लेनी चाहिये। इसके दो कारण हैं: एक तो यह कि शुरू में सरकार ने लड़कियों को आकर्षित करने के लिये फ़ीस बहुत कम रखी थी। दूसरा कारण यह है कि प्राचीन काल से स्त्रियों और शिक्षा इन दोनों के बीच हिन्दोस्तानियों को कोई सम्बन्ध दिखाई नहीं देता। क्वीन मेरीज़ कालेज एक बड़ी सुन्दर संस्था है, बड़े बड़े पढ़ने के कमरे, सोने के कमरे, बैठक और सुन्दर आकर्षक बागीचे हैं। अध्यापिकायें सब युनिवर्सिटी की शिक्षा पायी हुई अंग्रेज़ स्त्रियां हैं पाठ्यक्रम विद्यार्थियों की आवश्यकताओं के अनुसार नियत किया गया है। कई देशी भाषाओं में भी शिक्षा दी जाती है—जैसे अरबी, हिन्दी,

उर्दू इत्यादि और लडकियों की इच्छा के विरुद्ध इस बात पर जोर दिया जाता है कि सब लडकियां देशी पोशाक ही पहिने इसलिये कि लडकियों के मां बाप को यह भय न हो जावे कि हमारी लडकियों को पाश्चात्य तरीके सिखाये जा रहे हैं। स्कूल में कई तरह की शिक्षा दी जाती है जिनमें इस बात पर बराबर जोर दिया जाता है कि लडकियों मे सफाई की आदत पडे। पढाई के साथ साथ, परिश्रम, सफाई सचाई और खेल कूद में भी नम्बर दिये जाते हैं।

बागीचों के अन्दर जहां तक सम्भव हो सकता है खेल कूद के लिये प्रोत्साहन दिया जाता है। जिस समय इन वास्तव में सुन्दर छोटी छोटी मृग नयनियों में से बीस के लगभग अपनी नीली गुलाबी और रङ्ग बिरङ्गी उडती हुई रेशमी साडियों म इधर उधर खेल कूद करती हुई दिखायी देती हैं तो सचमुच उससे अधिक सुन्दर दृश्य कहीं मिल सकना कठिन है।

उनके एक अध्यापिका ने कहा कि अच्छी तरह टेनिस खेलने के लिये जितना दम चाहिये उतना इन लडकियों में नहीं है, किन्तु ये लडकियां अभी हाल में अपनी बूढी दादियों के पंजों से निकली हैं, इनकी दादियां यह समझती हैं कि लडकियों के लिये तेज चलना भी अनुचित है। उस फडकती हुई छोटी सी लडकी की ओर देखिये जो लाल और सुनहले कपडे पहिने हुये है, दो साल हुये वह स्कूल में भर्ती हुई थी। उस समय वह सब कहा करती थी कि दौडने मे मेरी टांगे चलती ही नहीं। अब वह हमारे स्कूल की सब से अच्छी खिलाडियों में से है। किन्तु यह सोचकर बडा दुःख होता है कि एक ही दो साल के भीतर ये सब लडकियां फिर से एक

मुर्दा अकर्मण्य जीवन व्यतीत करने लगेंगी" ?

मैंने पूछा कि, 'जो कुछ इन्हें यहां पर सिखलाया जा रहा है उसमें से क्या बहुत कुछ इसके बाद में इनके जीवन में काम आयेंगी ?

अध्यापिका ने उत्तर दिया:—

'सोचिये कि कितनी ज़बरदस्त और व्यापक शक्तियां उस समय चारो ओर से इन पर उलटा प्रभाव डालेंगी ! महलके ज़नानख़ाने के अन्दर इस तरह औरतें भरी होंगी जो जन्म से अब तक प्राचीन प्रथा में पली हैं, और वह प्रथा ऐसीही अटल है जैसी मौत। जब वहाँ तक वह प्राचीन सनातन और उत्साह को कुचल देने वाला प्रभाव इनके सर पर रहेगा तो इन कोमल बच्चों में इतने बल कहाँ कि अकेली उसका सामना कर सकें ? हमें अधिक से अधिक आशा यह है कि ये लड़कियाँ मातायें बनने पर अपना थोड़ा बहुत जीवनोत्पादक विचार अपनी सन्तति को दे सकें; ताकि वे भी अपनी लड़कियाँ अपने स्कूल में भेजें और इस प्रकार पीढ़ी दर पीढ़ी उन्नति होते होते अन्त में कुछ काया पलट हो सके और हमारा कार्य सफल हो। समस्त भारत में कीन मेरीज़ स्कूलही एक मात्र ऐसी संस्था है जो विशेष कर उच्च घरानों के लड़कियों के लिये क़ायम की गयी है। स्वभावतः कुछ नये हिन्दोस्तानी अफ़सर भी जिन्हें सिवाय सरकारी पदवियों के और कोई प्राचीन प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं है, यह इच्छा करते हैं कि इनको लड़कियों को कीन मेरीज़ स्कूल में पढ़ने की इज़ाज़त दी जावे। इस तरह की इजाज़त देना या न देना इस समय अंग्रेज़ कमिश्नर के हाथों में है और कमिश्नर लोगों की इस तरह की आकांक्षाओं को पूरा कर देता है। किन्तु इस बात से राजा लोग रुष्ट हैं और

पहिले की अपेक्षा अपनी लड़कियों को कम भेजते हैं।

वे कहते हैं, 'क्या हम अपनी बेटियों को बाबुओं की अथवा नये बंगाली राजनीतिज्ञों की लड़कियों के साथ रहने दे सकते हैं!' इन राजाओं को जरा भी सन्देह नहीं कि उनका इतराज वाजिब है।

संस्था के कुछ लोग संस्था के प्रारम्भिक उद्देश्य को याद रखते हुये चिन्तातुर हो कर पूछते हैं, 'क्या राजकुमारियों को इस प्रकार संस्था से निकाल देना बुद्धिमत्ता है? दूसरी स्त्रियें चाहे कितनी भी कुशाग्र बुद्धि क्यों न हों उनकी अपेक्षा इन राजकुमारियों का प्रभाव भविष्य में बहुत अधिक दूर तक फैलेगा। इसलिये क्या हमें इन राजकुमारियों को संस्था में लाने और कायम रखने के लिये हर तरह का प्रयत्न नहीं करना चाहिये?'

किन्तु जब यह प्रश्न उठाया गया तो कमिश्नर ने जवाब दिया कि —

ब्रिटिश भारत के अन्दर हम लोग प्रजासत्ता क़ायम करने का प्रयत्न कर रहे हैं। निस्सन्देह देशी रियासतों के लिये भावी महारानियों को शिक्षा देना अच्छा होगा, मैं उनके पिताओं अर्थात देशी राजाओं से कहता हूँ कि, "यदि आप यह चाहते हैं कि आपकी लड़कियों के लिये एक ऐसा स्कूल हो जिसमें सिर्फ आपही के श्रेणी की लड़कियाँ पढ़ें तो यह बहुत आसानी से किया जा सकता है—किन्तु सरकार के खर्च पर नहीं। इस तरह के स्कूल का सारा खर्च आपही लोगों को उठाना चाहिये।" यद्यपि इन धन सम्पन्न राजाओं के लिये स्कूल का सारा खर्च चलाना एक बहुत ही छोटा सा काम है फिर भी वे इसके लिये राजी नहीं होते।'

लाहौर में एक दूसरी मनोरञ्जक संस्था विक्टोरिया स्कूल है। पुराने लाहौर शहर के बीच में बाज़ार से मिले हुये सुप्रसिद्ध रणजीत सिंह के महल में यह संस्था क़ायम है। इसकी मुख्य आचार्या एक अत्यन्त योग्य भारतीय स्त्री हैं। उसका नाम के० एम० बोस है। मिस के० एम० बोस के पूर्वज दो पीढ़ी पहिले ईसाई हो गये थे। मिस बोस का चरित्र बलवान और दृढ़ है। उनके विचार उदार हैं। यह बड़ी मिलनसार हैं। उनका मस्तिष्क निर्मल और उनका प्रभाव ज़बरदस्त है। उनसे मालूम होता है कि भारतीय स्त्रियों को यदि पूरा मौक़ा दिया जावे तो वे क्या नहीं कर सकतीं।

विक्टोरिया स्कूल में सौ लड़कियां पढ़ती हैं। मिस बोस ने मुझसे कहा कि, इन में से कुछ धनाढ्य हैं और कुछ ग़रीब हैं, किन्तु सब ऊंची जाति की हैं और सब नगर के प्रतिष्ठित लोगों की लड़कियाँ हैं। और यदि हम इस स्कूल में नीच जति के बच्चों को लेने लगे तो ख़र्च इतना बढ़ जावे जो हमारे लिये असम्भव है। उच्च जाति की लड़कियाँ न उनके साथ बैठेंगी न खायेंगी इस लिये दोनों को अलग अलग क्लासें खोलनी पड़ेंगी, अध्यापिकाओं की संख्या लगभग दूनी कर देनी होगी, और इसी तरह की और अनेक कठिनाइयाँ झेलनी पड़ेंगी।

'आप पूंछती हैं फ़ीस क्या है? केवल नाम मात्र को थोड़ी सी फ़ीस ली जाती है। हम हिन्दोस्तानी अपनी लड़कियों की शिक्षा के लिये ख़र्च नहीं करते। थोड़े ही दिनों पहले धनाढ्य से धनाढ्य हिन्दोस्तानी भी अपनी लड़कियों के लिये किताबों के दाम देने तक से इन्कार करते थे। किताबें, शिक्षा सब शुरू में मुफ़्त देना होता था, अन्यथा एक भी लड़की पढ़ने के लिये न आती। ये स्कूल सरकारी सहायता

के द्वारा और इङ्गलिस्तान के लोगों के वैयक्तिक चन्दों से चलती है।'

पुराने महल के खडहरों में अनेक मंजिलों के ऊपर अनेक कमरे छत्ते की तरह फैले हुये हैं, हर कमरे में लडकियां भरी हुई हैं, किसी में छोटी से छोटी किन्डर गार्डन श्रेणी की चार और पाच साल की छोटी लडकियाँ हैं, और किसी में बढते बढते पद्रह और सोलह वर्ष की बडी बडी मजबूत मुसलमान लडकियां हैं जिनका अभी विवाह नहीं हुआ। क्वीन मेरिज स्कूल की तरह यह स्कूल भी परदा स्कूल है। किसी पुरुष की आख स्कूल के अन्दर नहीं पड सकती। जब कभी किसी विद्वान पण्डित को अपना विशेष विषय पढाने के लिये बुलाना पडता है, तो पण्डित और जिस क्लास को वह पढाता है दोनों के बीच में एक लम्बा गहरा और मोटा परदा डाल दिया जाता है जिसके अन्दर से देख सकना असम्भव है, और पण्डित के नियुक्त करने में केवल एक इसी बात का ख्याल नहीं रखा जाता कि वह विद्वान हो बल्कि इस बात का भी विचार रखा जाता है कि वह जर्जर और बुढा हो।

कमिश्नर ने मुस्करा कर किन्तु एक प्रकार शिकायत करते हुए कहा कि, 'मैं इन स्कूलों के लिये जिम्मेवार हूँ, तथापि पुरुष होने के कारण मैं कभी इन स्कूलों को देखने नहीं जा सकता।

'विक्टोरिया स्कूल के अन्दर छै भाषाओं में कार्य होता है उर्दू, फारसी, हिन्दी, पजाबी और संस्कृत; अगरेजी भी पढाई जाती है किन्तु लाजमी मजमून नहीं है।

मिस याम ने कहा कि, 'जब तक बच्चे वास्तव में पढने

न लगें हम उन्हें किताबें नहीं देते। नहीं तो वे बिना कुछ समझे किताब को घोंट डालते हैं *। लड़कियों की इस शिक्षा प्रणाली का सारा उद्देश्य यही है कि लड़कियों के चित्तों में कुछ इस तरह की बातें जमादी जांय जो उनकी भावी ज़नानखाने की ज़िन्दगी में उपयोगी साबित होसकें और जो अन्धकारमय तथा संकीर्ण जीवन थोड़े ही दिनों बाद लड़कियों को बिताना पड़ेगा उसमें इस शिक्षा का कुछ न कुछ प्रभाव उनके अन्दर क़ायम रह सके।

पढ़ना, लिखना, मामूली घर का हिसाब रखने योग्य अंक गणित; थोड़ासा इतिहास, सीना— भारत की अधिकांश स्त्रियों को सीने का नाम तक नहीं आता; थोड़ी सी चित्रकारी और गाना; सफ़ाई और स्वास्थ्य के नियमों के पालन की आदतें ये दोनों विषय हिन्दोस्तानी लड़कियों के लिये सीखनी इतना कठिन है कि हमें विश्वास नहीं होता; ज़ख्मियों की सहायता; जहां तक होसकता है अपने को और अपने भावी बच्चों को घर के प्राचीन नियमों के अत्याचारों से बचाना यही इस व्यवहारिक संस्था में शिक्षा के मुख्य विषय हैं। इनके अतिरिक्त साधारण भोजन बनाना, विशेष कर बच्चों और रोगियों के लिये भोजन तय्यार करना, इस काम में सदा हिन्दोस्तानी चूल्हे और हिन्दोस्तानी बर्तन उपयोग किये जाते हैं और भोजन को उठाना, धरना और परसना जिसमें इस बात पर विशेष ज़ोर दिया जाता है कि भोजन को साफ़ रखा

---

* हिन्दोस्तानी मुसल्मान लड़के बिना एक शब्द समझे बड़े बड़े हिस्से अरबी कुरान के घोंट डालते हैं। इसी तरह हिन्दू लड़के बिना एक शब्द समझे अपनी धार्मिक पुस्तकों के अध्याय के अध्याय आसानी से घोंट डालते हैं।

जावे और फर्श पर न लगने दिया जावे।

अध्यापिका ने कहा कि 'इसके बाद के जीवन में लड़कियाँ खाना पकाने का काम कभी अपने हाथ से न करेंगी, बल्कि हमेशा यह कार्य सर्वथा गन्दे नौकरों के ऊपर छोड़ देंगी, इसी के कारण रोग फैलते हैं और अकाल मौतें होती हैं, हमारा प्रयत्न इस संस्था में यह है कि लड़कियों को इस बात का विश्वास दिला दिया जावे कि हर बात में सफाई और तरतीब से कितना लाभ है और उसमें कितना सौन्दर्य है।'

ढाका के ईडेन गर्ल्स हाई स्कूल की भारतीय लेडी प्रिन्सपल मिस एल० सोराब जी ने कलकत्ता यूनिवर्सिटी कमीशन रिपोर्ट की जिल्द १२ में पृष्ठ ४५३ पर निम्न लिखित विचार पूर्ण शब्दों में दिखलाया है कि भारत के अन्दर एक अध्यापिका को किस तरह की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है —

'घर के बुरे प्रभाव उन्नति के मार्ग में बहुत बड़ी रुकावट होते हैं। समय का ख्याल न रखना, सुस्ती, अल्हड़पन, स्वास्थ्य और सफाई के नियमों की बेपरवाही, झूठ बोलना, जिम्मेवारी का अनुभव न करना प्रतिष्ठा और सदाचार के नियमों का अभाव, घर पर किसी तरह के अनुशासन का न होना, ये उन कठिनाइयों में से कुछ हैं जिनका हमें अपने स्कूलों में सामना करना पड़ता है। सब से अधिक आवश्यकता जिस बात की है वह चरित्र का बनाना है।'

और इस बात की भी जरूरत है कि धैर्य के साथ धीरे धीरे इस तरह की सार्वजनिक राय निर्माण की जावे जो अन्त में भारतवासियों के अन्दर अपने पैरों पर खड़ा होने के एक सच्चे और व्यावहारिक आन्दोलन को जन्म दे और उसे कायम रखे।

इस समय भारत में एक विचित्र दृश्य देखने में आता है धनाढ्य ज़मींदारों, अभिमानी ब्राह्मण, श्री मन्तों और उन झगड़ालू राष्ट्रीय राजनीतिज्ञों की लड़कियां जो कि अपने गोरे शासकों और उनके समस्त कार्यों की अत्यन्त प्रचण्डता के साथ निन्दा करते हैं, सब अमरीका और इङ्गलिस्तान की प्यारी बूढ़ी औरतों के छोटे छोटे चन्दों से भोजन पाती हैं और रहने का स्थान पाती हैं, और वे कुजात और विधर्मी ईसाई जिनसे घृणा की जाती है, इन सब लड़कियों को उत्तर-दायित्व पूर्ण जीवन के प्रारम्भिक पाठ पढ़ाते हैं।

ब्राह्मण

रेल पर चेंग्लिन से दक्षिण की ओर मद्रास गई। रास्ते में बड़ी बड़ी काले रंग की पहाड़ियाँ मिलीं जो कि काले काले दिग्गजों की भाँति बहुत दूर तक दिखाई पड़ती थीं और मीलों तक फैली हुई थीं।

बराबर चलते चलते थोड़ी देर के बाद कुछ नरम प्रदेश मिला। जहाँ की जमीन का रंग नारंगी था और जहाँ चोटी पर थोड़े से पत्तों वाले ताड़ के पेड़ छोड़ कर और कोई पेड़ न था। वे पेड़ इतने ऊँचे थे कि उन्हें देखकर यही जान पड़ता था मानो कलम से किसी ने लकीरें खेंच दी हैं जिनके ऊपर स्याही छिड़की है।

खेती बारी भी काफी थी। पानी रोकने के लिये मेड़ एक हाथ की ऊँची थीं और उन्हीं से धान के खेत टुकड़ों में बँट गये थे। काले काले आदमी लाल कपड़े पहने थे। उनके बाल लम्बे, कड़े और घुंघरियाले थे। उनमें से कुछ कुएँ से पानी खींच रहे थे और कुछ अनाजों के खलियान में बैलों के पैरों से मड़नी माड़ रहे थे। जैसा कि वे हजारों वर्षों से करते चले आ रहे हैं। लम्बे, चौड़े, ऊँचे ईख के खेत तैयार थे। छोटे छोटे मिट्टी के घर थे। वे ताड़ के पत्तों से छाये थे। नारंगी रंग वाली बकरियों के झुण्ड चर रहे थे। जमीन पर नारंगी धब्बे थे, ताड़ के फल सूखने के लिये फैले थे। लोग इन्हें पान के साथ खाते हैं। नारंगी रंग के बड़े बड़े बाज भी दिखाई पड़े, उनका सिर सफेद था।। सन्ध्या को सूरज भी नारंगी रंग का बन

गया और धान के खेतों में अपनी नारंगी रंग की किरणें छिटका रहा था। संसार नारंगी रंग से भर गया था और बीच बीच में काले काले मनुष्यों के लाल लाल कपड़े धब्बे से दिखाई पड़ते थे।

मद्रास में ब्राह्मणों का ज़ोर अधिक है, साथही साथ वहां आदिम निवासियों के वंशधर काले द्रविड़ लोग भी काफ़ी तादाद में रहते हैं। ब्राह्मणों ने उन्हें बहुत गिरा दिया अपनी समाज से अलग रक्खा और उनकी जो कुछ सम्पत्ति थी उसे नष्ट कर उन्हें पेरिया, अपढ़, नीच, दरिद्र तथा कुजात बनाए रखा। करोड़ों के साथ यही व्यवहार किया। अन्त में अंग्रेज़ आये। जिन्होंने वहां पर शांति, अनुशासन, तथा जहाँ तक सम्भव था प्रजातन्त्र का स्थापन किया।

धीरे धीरे द्राविड़ जाति ने करवट लेना शुरू किया और डरते डरते उन्नति की ओर बढ़ने की कोशिश करने लगी; बहुत सी नीच हिन्दू जातियों ने भी उसका साथ दिया और अब्राह्मण नामक एक दलका संगठन करके बड़ी भारी शक्ति पैदा कर ली। उन्होंने मद्रास प्रान्त की व्यवस्थापिका सभा में ब्राह्मणों से उनका बहुतमत तक छीन लिया जो कि भारतवर्ष के इतिहास में एक विशेष घटना है।

अब वही नीच जात वाले आदमी, धनी, मानी, तथा राजनीति में प्रभावशाली हो गये हैं। मैंने उन्हीं में से एक के साथ मद्रास में बातचीत की। वह एक छोटा सा जोशीला तथा साफ़ बात करने वाला मनुष्य था। मैंने कहा, "क्या आप ब्राह्मणों की पूरी पूरी हालत मुझे सुनायेंगे?" उसने नीचे लिखे शब्दों में उत्तर दिया। ये ठीक उसी के शब्द हैं जो मैंने उसी समय लिख लिये थे'—"एक समय था जब कि

सब आदमी अपनी अपनी इच्छा के मुताबिक काम करते थे, तब सिर्फ ब्राह्मणों ने ही अपने को पढने लिखने के काम में लगाया। फिर पढने लिखने से तथा असल में चालाक होने के कारण उन्हने मजहबी किताबों को छिपाकर अपने हाथ में कर लिये। वे उन किताबों को हाथ में करके ही खुश न हुए उनने छिप कर उन किताबों में ऐसी झूठी झूठी बातें भर दीं जिन्हें पढकर पढने वाले का दिल यही कहेगा कि ब्राह्मण ही सब मनुष्यों के विधाता हैं। धीरे धीरे बहुत वर्ष बीत गये। और उन ब्राह्मणों की लिखी हुई सब किताबें उन्हीं के हाथ में थीं और किसी को पढने का अधिकार भी न था। ब्राह्मणों ने झूठे शास्त्र लोगों को सुनाए, लोगो ने उन्हें पृथ्वी पर अपना देवता मान लिया और उनका कहना करने लगे। इसलिये हिन्दू संसार में वे ही सब के मालिक बन गये और कोई उनसे बहस करने का साहस न किया करता था। उस समय तक जब तक कि अंग्रेज जाति ने आकर सब के लिये पढने लिखने को स्कूल खोल दिये, यही दशा जारी रही।

अब मद्रास प्रान्त में हम लोग ब्राह्मणों से लड रहे हैं। पर अब भी ये लोग बलवान हैं। इसका प्रधान कारण यह है कि ये लोग बहुत दिनों के बली हैं इसलिये धीरे धीरे ही इनका बल नष्ट हो सकता है। ये लोग इतने चतुर हैं मानों दैत्यों के गुरू हैं। अखबार इनके हाथों में है, ये ही जज आदिक हैं और ८० फी सदी सरकारी नौकरियां अपने हाथ में रखते हैं। ये साधारण मनुष्यों को ज्यादातर लियों को डर दिखाया करते हैं इसका प्रधान कारण यह है कि हम सब लोग अन्धविश्वासी तथा अनपढ हैं। ब्राह्मण इसे समझते हैं। ये देवता अँग्रेजों से भी घृणा करते हैं कारण अँग्रेजों ने हमें उन लोगों के हाथ से

बचा लिया। ये अँग्रेज़ देश से निकल जायँ ऐसा कह बहुधा बहुत सा स्वदेश प्रेम दिखलाया करते हैं। लेकिन हम लोग जानते हैं कि अगर अंग्रेज़ देश से चले गये तो ये हमें फिर कुचलना शुरू कर देंगे और भारत की दशा वैसीही हो-जायगी जैसी की पहले थी। यहां पर फिर पुरोहितों का प्रभाव बढ़ जायगा तथा वे मोटे हो जायँगे हम सब फिर उन्हीं के गुलाम बन जायँगे और चारों ओर कड़ाई का ही नज़ारा देखने में आयेगा। कारण हम अभी तक उनसे स्वतन्त्र नहीं हुये है। उन्हें ध्यान से सुनिये।

'इस देश के हिन्दू कहलाने वाले सभी जितनी सरकारी माल गुजारी देते हैं उसका कई गुना ब्राह्मणों को दे डालते हैं। जन्म से लेकर मृत्यु तक वे इन पृथ्वी के देवताओं को देते ही रहते हैं जब लड़का पैदा हुआ तब ब्राह्मण को कुछ देना ज़रूरी है। उन्हें कुछ न देने से बच्चा उन्नति न कर सकेगा, सोलह दिन के बाद सूतिका स्नान में भी उनकी पूजा की जाती है, तथा कुछ दिया जाता है। फिर थोड़े दिन के बाद नाम करण संस्कार में भी थोड़ी बहुत दक्षिणा दी जाती है। तीसरे महीने मूड़न में भी ब्राह्मण ने कुछ पाया। छठे महीने में पसनी के अवसर पर इन्हें फिर कुछ दिया जाता है। जब बच्चा चलने लगता है तो फिर ब्राह्मण को देना आवश्यक है। एक साल पूरा और जन्म दिन का उत्सव होने लगा फिर ब्राह्मण देवता ने कुछ पुजा लिया। सातवें वर्ष में लड़के का विद्यारम्भ हुआ और फिर पृथिवी के देवता ब्राह्मण ने अपनी टेंट गरम की, धनी घरों में सोने की लेखनी लड़के के हाथ में दी जाती है पुरोहित जी उसे भी अपने घर ले जाते हैं।

'अब लडकी की उम्र एक साल, सात साल, या नौ साल की हुई व। लडके की डेढ दो साल से लेकर सोलह के भीतर ही में रहती है तब सगाई होती है और ऐसे अवसरों में ब्राह्मण को फिर बहुत कुछ दिया जाता है। फिर लडकी के जवान होते ही या उसके पेश्तर ही जब विवाह हो जाता है तब ब्राह्मण को काफी तादाद में रुपया पैसा दिया जाता है। ग्रहण के अवसर पर भी इन्हें बहुत कुछ दिया जाता है और इसी प्रकार हम लोग इन्हें देते ही रहते हैं। जब किसी की मृत्यु हुई तब बिना इनके आशीर्वाद से उसकी लाश तक नहीं उठाई जा सकती। और उस समय भी इन्हें कुछ दिया जाता है स्मशान घाट में भी काफी तादाद में रुपये पैसे ब्राह्मणों को दिये जाते हैं। फिर साल भर तक हर एक महीने में मरे हुए आदमी का लडका ब्रह्म भोज किया करता है और उन्हें खिला पिलाकर सीधा कपडा तथा गहना देता है अर्थात् उसका बाप जिन जिन चीजों को चाहता था वही वही चीजें अवस्था के मुवाफिक ब्राह्मण को दी जाती हैं। कारण जो कुछ ब्राह्मणों को खिलाया जाता है अथवा दिया जाता है वह सब मरा हुआ आदमी पाता है इसके बाद साल मे एक बार जब तक बेटा जिये इसीका अनुष्ठान करना जरूरी है और उस समय में भी ब्राह्मण को बहुत कुछ दिया जाता है।'

'इसी प्रकार के सभी कामों में इन्हें रुपया, पैसा, आटा, दाल, कपडे, गहने सभी दिये जाते हैं और ये इसे अपना मौरूसी अधिकार बतलाते हैं। कारण मजहबी कानून की किताबों में यही लिखा है। जो देने में इन्कार करता है वह कोटि कोटि जन्मों तक नरक में पडा रहता है हर एक मजहबी कामों में हम लोग इनके चरण धोते हैं और उसी को चरणामृत कर कर

पी जाते हैं। ये लोग बड़े आलसी होते हैं ये न तो कुछ पैदा ही करते हैं और न सिवाय वकालत या सरकारी नौकरी के कोई काम करते हैं। इस प्रान्त में इनकी तादाद १५ लाख की है और हमारी ४ करोड़ १० लाख की और हमी उनके खाने पीने का इन्तज़ाम करते हैं।'

'जब तक कि हम लोग अपनी रक्षा स्वयम करने के समर्थ नहीं होते तब तक हम सात समुद्र पार के रहने वाले राजा को ही चाहेंगे। कारण वह हमें शांति न्याय और हम उसे जो देते हैं उसके बदले में कुछ देता है। साथ ही साथ हमें स्वतन्त्र बनने का भी अवसर दे रहा है। यहां के लाखों ब्राह्मण मालिक जो कि हमें हजम कर डालना चाहते हैं, छूने पर भी कहते हैं कि हमने उन्हें अपवित्र कर दिया। अब इसीसे उनकी हालत समझ जाइये।

—:o:—

परिच्छेद ग्यारहवां

मनुष्य से भी गिरे हुए।

गौर से देखने पर, हिन्दोस्तान की पहेलियों का एक प्रकार स्वयम उत्तर मिल जाता है।

बहुत दिनों से हम भारतवर्ष के विषय में हर बात के 'रहस्य पूर्ण' कहने के आदी हो गए हैं। इसी में हमें आसानी मालूम होती है। किन्तु कोई भी 'रहस्य' खासकर भौतिक मामलों में केवल उसी समय तक रहस्य रहता है जब तक कि हम साधारण भौतिक घटनाओं के लिये रहस्य पूर्ण कार्य ढूंढ निकालने पर डटे रहते हैं। ज्योंही कि हम इस तरह की घटनाओं के लिये व्यवहारिक कारण ढूंढने लगे त्योंही वह रहस्य धुआं होकर उड़ जाता है। जो देश 'रहस्य गर्भित' समझ कर नहीं छोड़ दिये गये हैं और जिन में लोग भौतिक कल्याण को अपना पहला लक्ष्य समझते हैं उनमें भौतिक घटनाओं के समझने का यही एक तरीका है।

भारतीय राजनीतिज्ञ इस बात को बार बार दुहराता है, 'आखिर, अंगरेजों के इतने साल के शासन के बाद भी हम से ९२ फी सदी लोग अशिक्षित क्यों हैं!' वह इस बात की सारी जिम्मेवारी अपने शासकों के सिर पर डालता है।

यह संख्या बताते हुए वह एक बात पर आपका ध्यान आकर्षित नहीं करता। किन्तु यदि कोई दूसरा आपको न बतावे तो आप स्वयम उसका अनुमान भी नहीं कर सकते। वह

आपको यह नहीं बतायगा कि ब्रिटिश भारत की २४,७० ००,००० जन संख्या का लगभग २५ प्रति शत अर्थात् मनुष्य अनन्त काल से जाति च्युत कर अशिक्षित रखे गए हैं। उनके ही भारतीय भाइयों ने उनके साथ मनुष्य से भी बदतर सलूक किया है। निस्सन्देह यदि भारत में कोई रहस्य है तो वह इसी बात में है कि यदि कोई मनुष्य, या कोई समाज, या कोई क़ौम कहीं पर किसी हालत में भी भारत वासियों को यह याद दिलावे कि तुम्हारे अन्दर छै करोड़ देशबन्धु ऐसे हैं जिनसे तुमने ज़बरदस्ती मनुष्यत्व के साधारण अधिकार तक छीन रखे हैं, तो भारतवासी उलट कर उस मनुष्य, समाज, या क़ौम पर तुरन्त 'जातीय पक्षपात' का दोष लगाने पर तय्यार हो जाते हैं(१)।

कहा जाता है कि प्रारम्भ में जब कि मौजूदा हिन्दुओं के

(१) कुछ दिनों से भारतीय राजनीतिज्ञ इङ्गलिस्तान की सरकार पर लगातार ज़ोरों से आग उगल रहे हैं। वे इसे इस बात का दोष दे रहे हैं कि वह दक्षिण अफ़रीका की यूनियन सरकार से प्रवासी भारतीयों के प्रति यथोचित व्यवहार करने के लिये क्यों नहीं कहती। यह बात ध्यान देने योग्य है कि शुरू में अंगरेज़ी भारत के १,३०,००० मनुष्य जो अफ़रीका गए थे उनमें से एक तिहाई 'अछूत' हैं। अधिकतर मद्रास प्रान्त से गए हैं। भारत में उनकी क्या स्थिति थी, वह इस अध्याय से मालूम हो जावेगी। और यदि वे फिर हिन्दोस्तान लौटें तो उनके साथ फिर वही व्यवहार किया जावेगा। सरकारी ईयर बुक से पता चलता है कि १९२२ में दक्षिण अफ़रीका में ब्रिटिश भारत के हिन्दोस्तानियों की संख्या १,६१,००० से कुछ अधिक थी। इस संख्या में बाद के गए हुए १०,००० व्यापारी और पहले के आए हुए आदमियों में जो स्वाभाविक वृद्धि हुई, वह भी शामिल है।

गोरे रग के पूर्वज भारत में आए तो उन्हें यहा अपने स काले, मोटी शक्लों के अनार्य लोग मिले। उन्हें द्राविड कहा जाता था। इन्ही द्राविडो ने दक्षिण में बडे बडे मन्दिर बनवाए थे। इन नए आए हुए हिन्दुओं के धर्म गुरुओं न यह इच्छा प्रकट की कि उनके रक्त में अनार्यों के रक्त का सम्मिश्रण न होने पाए। वे पवित्र रक्त के बने रहें। इसीलिये उन्होंने द्राविणों को अशुद्ध और 'अछूत' पेलान कर दिया।

इसके बाद धीरे धीरे इन प्राचीन नीतिज्ञों ने जाति भेद की बुनियाद डाली। इसमें उन्हों ने अपने आप को सबके ऊपर रक्खा। अपने आपको ब्राह्मण—'संसारिक देवता' की उपाधि से भूपित किया। अपने बाद उन्हों ने लडने वालों को, अर्थात् क्षत्रियों को रखा, क्षत्रियों के बाद वैश्यों अर्थात् खेती करने वालों को रखा। वेश्य ब्राह्मण और क्षत्री दोनों से निम्न समझे गए। अन्त में, चौथे दरजे पर शूद्र जाति का निर्माण हुआ। जन्मकाल से ही पूर्वोक्त तीनों जातियों की सेवा का कार्य इनके सुपुर्द किया गया। इन्हीं चारों जातियों से हिन्दू समाज का ढाचा कायम किया गया। आजकल इन चारों जातियों में स्वयं अनेक उपजातिया पेदा होगई हैं। इन चारों जातियो के बाहर और इनसे नीचे, एक अछूत जाति हे। य अछूत अपने पूर्व जन्म के पापों के फल स्वरूप हमेशा के लिये दूसरों की घृणा का पात्र बने रहने के लिये बनाए गए।

इन अभागों को जिस नीति के अनुसार अपने किस्मत की सजा मिलती थी उसका एक हवाला, उनकी स्थिति को स्पष्ट कर देने के लिये पर्याप्त होगा भागवत पुराण, ब्राह्मण की हत्या का वर्णन करते हुए यह आज्ञा देती हे.—'जो मनुष्य ब्रह्महत्या के पाप का भागी होता है उसे मृत्यु के

उपरान्त विष्टा का कीडा बनना पड़ता है। बहुत काल तक इस योनि में रहने के बाद वह पैरिया [अछूत] के घर में पैदा होगा और इस अछूत जाति में उसका स्थान होगा। गाय के शरीर पर जितने बाल हैं उससे चौगुने वर्षों तक वह अन्धा रहेगा। जब तक वह चालीस हज़ार ब्राह्मणों को भोजन न कराए उसे इस पाप से मुक्ति नहीं मिल सकती* ।'

इस तरह इस एक ही बात से अछूतों की मौजूदा स्थिति समझ में आ जाती है; उन पर होने वाले सारे अत्याचार न्याय पूर्ण हो जाते हैं; उनकी यह अकथनीय पतित अवस्था नज़रों में चमकने लगती है; और इस तरह इन अत्याचार पीड़ितों की क्रोधाग्नि से, अत्याचारी की रक्षा की जाती है। यह वैसा ही है जैसा कि पत्नी को वैधव्य की भयंकरता का डर दिखाकर उन्मत्त पत्नी के विद्रोह से हिन्दू पति की रक्षा की जाती है।

'वही धर्म शास्त्र कहता है कि, 'यदि कोई ब्राह्मण किसी शूद्र की हत्या कर डाले तो उसे अपना पाप पूरी तरह धोने के लिये केवल गायत्री का सौ मरतबा जाप पर्याप्त होगा' इस प्रकार शूद्र और ब्राह्मण दोनों की स्थिति का अन्तर दर्शाते हुए शास्त्र अपने नियम का ऐलान करता है। यह ख़्याल रहे कि शूद्र हिन्दुओं की चौथी जात है और उसका पद अछूतों से कहीं ऊंचा है।

इन बातों के मूल कारण को छोड़ते हुए हम अब सन् १९२८ की हालत पर आते हैं। इस समय हम अछूतों के साथ सनातनी हिन्दुओं का क़रीब क़रीब यह बर्ताव देखते हैं:—

---

* ऐ० वे० डु० बुआ की पुस्तक 'हिन्दू मैनर्स कस्टम्स ऐंड सेरीमनीज़' पृष्ठ ५५८।

उंह मनुष्य से भी हीन समझा जाता है, केवल गन्दे से गन्दे काम उनसे कराए जाते हैं, उनके नाम के साथ निरादर जुड़ा हुआ है। इनमें से कुछ केवल मेहतरों अथवा विष्टा उठाने वालों का कार्य कर सकते हैं, कुछ की, उस अज्ञानता के कारण जिससे उन्हें निकलने नहीं दिया जाता, आदतें गन्दी पड़ गयी हैं, उन सब को किसी प्रकार की भी शिक्षा प्राप्त करने की कड़ी मनाही है। हिन्दू शास्त्रों को वे न अपने पास रख सकते हैं और न पढ़ सकते हैं। कोई ब्राह्मण पुरोहित उनके यहां कर्म नहीं कराता, और सिवाय एक दो विरले मन्दिरों के वे किसी भी हिन्दू मन्दिर में पूजा वा प्रार्थना करने के लिये प्रवेश नहीं कर सकते। उनके बच्चे सार्वजनिक स्कूलों में नहीं पढ़ सकते। सार्वजनिक कुओं से वे पानी नहीं खींच सकते, और यदि उनके मकान किसी ऐसी जगह हों कि जहां पर पानी की कमी है और दूर से पानी लाना पड़ता है तो उसके कारण दूसरे लोग उनके साथ कोई रियायत नहीं करते बल्कि उन्हीं को अधिक कष्ट भोगना पड़ता है और अधिक परिश्रम करना पड़ता है।

वे किसी न्यायालय के भीतर नहीं जा सकते, वे अपने रोगियों का इलाज कराने के लिये किसी अस्पताल के अन्दर नहीं जा सकते, वे किसी सराय में नहीं ठहर सकते। कुछ प्रान्तों में वे सार्वजनिक सड़कों पर भी नहीं चल सकते। श्रमजीवियों अथवा कृषकों की हैसियत से उन्हें सदा घाटा उठाना पड़ता है, क्योंकि न वे दुकानों के अन्दर जा सकते हैं और न उन बाजारों से होकर जा सकते हैं जिनमें दूकानें होती हैं, उसकी जगह, उन्हें अपना तुच्छ माल बेचने वा खरीदने के लिये अनेक भूखे दलालों पर निर्भर होना पड़ता

है। इनमें से कुछ इतने पतित हो गए हैं कि उनसे कुछ भी काम नहीं लिया जाता। ये लोग कुछ बेच नहीं सकते, मजदूरी तक नहीं कर सकते। उन्हें केवल भिक्षा मांगने की इजाज़त है। और भिक्षा के लिये भी वे सड़क का उपयोग नहीं कर सकते; उन्हें सड़क से दूर ऐसी जगह कि जहां कोई देख न सके खड़ा रहना पड़ता है और वहां से किसी को आते जाते देख कर भिक्षा के लिये चिल्लाना पड़ता है। यदि उन्हें कुछ भिक्षा दी जाती है तो उसे सड़क से दूर जमीन पर फेंक दिया जाता है। वे दूर छिपे हुए देखते रहते हैं और जब दाता नज़र से हट जावे और कोई और भी सड़क पर न हो तब झट से आकर भिक्षा को उठा कर फिर भाग जाते हैं; × × जब तक सड़क न खाली दिखाई दे वे सामने नहीं आ सकते।

इनमें यदि सब नहीं तो कुछ ऐसे अवश्य समझे जाते हैं कि जिनका साया भी यदि किसी भोजन के पदार्थ पर पड़ जावे तो वह पदार्थ फिर किसी जाति वाले हिन्दू के मतलब का नहीं रह जाता। जो भोजन इस तरह अपवित्र हो जाता है उसे फिर नष्ट कर देना पड़ता है।

कुछ ऐसे भी हैं जिनके अभागे जिसमों से 'अपवित्रता निकलकर दूर तक' असर करती है। यदि इनमें कोई किसी सड़क के निकट आजावे और वहां रुक जावे तो उसे अपने शरीर से सड़क तक की दूरी मापनी पड़ती है। यदि वह सड़क से दो सौ गज़ के अन्दर हो तो उसे ध्यान से सड़क के ऊपर एक हरा पत्ता और उसके ऊपर मुट्ठी भर मिट्टी रख देनी पड़ती है, इससे यह मालूम हो जाता है कि वह अपवित्र प्राणी उस पत्ते से इतने फ़ासले के अन्दर है कि जहाँ तक अपवित्रता का प्रभाव पहुंच सके। सड़क से जाता हुआ

ब्राह्मण इस चिन्ह को देख कर रुक जाता है और चिल्लाता है। उस बेचारे को तुरन्त पीछे भागना पड़ता है और जब वह काफी दूर निकलकर उत्तर देता है, 'अब मैं दो सौ गज आगया हूं, कृपया आप दूर चले जाइये' तब ब्राह्मण आगे बढ़ता है।

मलाबार तट पर एक और अछूत जाति है जिसे 'पुलिया' कहते हैं। इन लोगों को अपने लिये झोपड़ी बनाने का अधिकार नहीं है। वे अपने रहने के लिये केवल बड़े बड़े दरख्तों के बीच में बतौर घोसलों के चार बल्लियों पर पत्तों की एक छत डाल सकते हैं। ये लोग किसी दूसरे मनुष्यों के निकट नहीं आ सकते। डुबुआ ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि उन दिनों कोई नैयर (उच्च जाति का हिन्दू) यदि किसी पुलिया को सड़क पर देख लेता था तो उसे पुलिया को उसी स्थान पर मार डालने का अधिकार था। आज कल कोई नयर इसका साहस न करेगा। तथापि आज दिन तक कोई पुलिया किसी जाति के मनुष्य के ६० या ६० फुट से अधिक निकट नहीं आसकता।

अछूतों में कुछ जातियें ऐसी हैं जिन्हों ने इस अनिवार्य यातना के कारण कानूनी जुर्म करने की आदत डाल ली है। ये इनमें से कुछ लोग जेब कतरने का काम सीखते हैं, कुछ चोरी का, कुछ जाल साजी का, कुछ डकैती का, कुछ मनुष्य हत्या का इत्यादि, और प्राय अपने इस विशेष पेशे के साथ साथ अपनी स्त्रियों से वेश्याओं का काम भी कराते हैं। ये लोग समस्त भारतवर्ष में फैले हुए हैं। इन्हें जरायम पेशा कौमें कहा जाता है। उनकी संख्या आज कल लगभग पैंतालिस लाख के है।

हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि हिन्दुओं की प्राय अन्य

समस्त प्रथाओं के समान अछूतों की प्रथा भी उनके धर्म का एक आवश्यक अंग है और हिन्दू लोग अत्यन्त धर्म परायण हैं। प्रसिद्ध भारतवासी सर सुरेन्द्रनाथ बैनरजी ने अपनी पुस्तक 'ए नेशन इन मेकिंग' में पृष्ठ ३६६ पर लिखा है कि:—

'हिन्दू जाति से सम्बन्ध रखने वाले किसी ऐसे सामाजिक प्रश्न का आप अनुमान भी नहीं कर सकते जिसके साथ धर्म जुड़ा हुआ न हो, और जब किसी सामाजिक प्रथा के साथ किसी भी रूप में धर्म की दुहाई दी जाती है तो वह प्रथा जनता के दिलों में पूरी तरह जम जाती है, उसकी जड़ें फिर बुद्धि या तर्क में नहीं बल्कि भावों के अन्दर मज़बूत जम जाती हैं'।

हम लोगों को इस बात का भयंकर तजुरबा हो चुका है कि यदि लोगों के कान में यह भनक भी पड़ जावे कि उनकी जाति छिन जाने का डर है अथवा उनके देवताओं की हतक की जारही है तो वे किस हद तक पागल हो कर रक्तपात में लग जाते हैं। २ दिसम्बर सन् १८५८ के मलका के एेलान में एक स्पष्ट वाक्य आता है जिससे मालूम होता है कि सरकार शुरू से इस बात को समझती थी। उसमें लिखा है कि:—

'हम उन सब लोगों को जिन्हें हमारे मातहत, अधिकार प्राप्त हैं अत्यन्त कड़ी आज्ञा देते हैं कि वे हमारी प्रजा के धार्मिक विश्वास या उनके पूजा पाठ में किसी तरह का दखल न दें, यदि वे इस आज्ञा का उल्लंघन करेंगे तो उन्हें हमारी हद दरजे की नाराज़गी का पात्र बनना पड़ेगा।'

तथापि भारत वर्ष के अन्दर अंगरेज़ों की सब से पहिली प्रवृत्ति यह थी कि सामाजिक अन्याय को रोका जावे। सन् १८५४ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के डाइरेक्टरों ने इस बात की

सिफारिश की कि, 'किसी लडके को किसी जाति में पैदा होने के कारण किसी भी सरकारी स्कूल या कालेज में भरती करने से इन्कार न किया जावे।' जब तक कि कम्पनी की सत्ता इंगलिस्तान के वादशाह की सत्ता में लीन न हो गई तब तक डाइरेक्टर अपनी इस नीति पर बराबर कायम रहे। इसके बाद बार बार इस नीति को दुहराया गया, किन्तु इस पर अमल करने में इस तरह की एहतियात की जाती थी जो उस मनुष्य को जो कि यह नहीं जानता कि यह मामला कितना नाजुक है, निर्बलता प्रतीत होती होगी। उन करोडों लोगों पर जो किसी पाश्चात्य विचार को ग्रहण करने के लिये न तय्यार हैं और न समझ सकते हैं जबरदस्ती इस तरह के विचार लादने का प्रयत्न करने से कोई फायदा नहीं हो सकता।

" हमें यह भी नहीं समझना चाहिये कि जातिभेद के नाम पर जो लोग दूसरों के साथ अत्याचार करते हैं, उनका स्वभाव निष्ठुर वा निर्दय है। मनुष्य की जाति उसकी आत्मा के इतिहास का बाहरी चिन्ह है। जो मनुष्य असंख्य जाति नियमों में से किसी एक को तोडकर भी जाति मर्यादा का उल्लघन करता है उसे सदा के लिये दण्ड भोगना पडता है। यदि कोई हिन्दू इन नियमों का पालन करते हुए दूसरों को कष्ट पहुचाता है, तो इसका कारण केवल यह है कि उस दूसरे मनुष्य की आत्मा के इतिहास ने अर्थात् उसके कर्मों ने उसके लिये कष्ट भोगना निश्चितकर दिया है। कष्ट पहुचाने वाला इसमें कुछ नहीं कर सकता, और यदि दूसरा मनुष्य सच्चा हिन्दू है वह भी अपने तईं कष्ट तो पहुचाने वाले पर कोई दोष नहीं लगाता। क्योंकि वे दोनों अपने अपने दैव निर्मित कर्मों का फल भोग रहे हैं।

इस समय अछूतों के पक्ष में क़ानून जो कुछ कर सकता है वह सब लगभग किया जा चुका है। जहां तक सरकार की शक्ति में है, वहाँ तक उसने हर तरह की शिक्षा सम्बन्धी सुविधाएं और उच्च पदवियां अछूतों के लिये खुली छोड़ दी हैं। सरकार की ओर से भूमि को उन्नति देने की योजनाएं और कोआपरेटिव तजवीज़ें बराबर बढ़ती जाती हैं। इन अनेक योजनाओं और तजवीज़ों ने अछूतों के लिये अनेक सुविधाएं और ज़बरदस्त उन्नति के मार्ग खोल दिये हैं।

किन्तु प्रान्तीय सरकारों के लिये इस प्रकार के क़ानून पास कर देना जिनमें सार्वजनिक सुविधाओं का अधिकार जैसे कि सार्वजनिक स्कूलों में पढ़ने का अधिकार प्रत्येक नागरिक को दिया गया हो, एक बात है; और इन क़ानूनों का असंख्य छोटे छोटे ग्रामों और बड़े बड़े प्रान्तों में अमल कराना बिलकुल दूसरी बात है, विशेषकर जब कि लोग उसके विरुद्ध हों और सहायता देने को तय्यार न हों। मद्रास सरकार की एक आज्ञा तारीख़ १७ मार्च सन् १९१९ में लिखा है:—

'यद्यपि सरकारी क़ानून यह है कि किसी लड़के को उसकी जाति के कारण किसी स्कूल में भरती करने से इन्कार न किया जावे, तथापि इस प्रान्त के कुल ८, १५७ स्कूलों में से केवल ६०९ ऐसे हैं जिनमें पंचमों (अछूतों) के लड़कों को भरती किया जाता है।'

तथापि यदि ठीक पढ़ा जावे तो मद्रास सरकार के इस एेलान से बहुत बड़ी विजय प्रकट होती है। एक अत्यन्त कट्टर सनातनी प्रान्त में ६०९ स्कूल ऐसे होना जो पंचमों के लड़कों को भरती करते हों, कुछ कम नहीं; और उनके विरुद्ध इससे केवल १३ गुने स्कूल ऐसे थे जो पंचमों को लेने से इनकार

करते थे।

अगस्त सन् १६२६ में एक दिन बम्बई की व्यवस्थापिका सभा में इस प्रस्ताव पर बहस हो रही थी कि म्युनिसिपैलिटियों, डिस्ट्रिक्ट बोर्डों और लोकल बोर्डों को मजबूर किया जावे कि वे अछूतों को अपने बच्चे स्कूलों में भेजने की इजाजत दें, उन्हें सार्वजनिक कुओं से पानी खींचने दें, और अन्य सामान्य नागरिक अधिकारों का उन्हें सुख उठाने दें। अधिकांश हिन्दू मेम्बरों ने इस प्रस्ताव के सिद्धान्त को पसन्द किया। किन्तु उनमें से एक ने जिससे और बहुत से भी सहमत थे, कहा कि —
'यदि इस प्रस्ताव पर अमल किया गया तो हमें विरोध के एक तूफान का सामना करना पडेगा। कट्टर लोगों का मत बहुत मजबूत है। प्रस्ताव के साथ मुझे सहानुभूति है, किन्तु मेरा विचार है कि × × × यदि इस पर अमल कराया गया तो परिणाम बहुत भयंकर हो सकता है।' इस मेम्बर ने राय दी कि अछूतों के हित चिन्तकों के लिये बुद्धिमत्ता यह है कि वे अमल के लिये जोर न दें, बल्कि उसकी बजाए उस जैसी जबानी सहानुभूति के प्रदर्शन से ही सन्तुष्ट रहें।

एक दूसरे हिन्दू मेम्बर ने बडी चतुराई से अपने ऊपर से जिम्मेवारी हटा कर ऐसे कन्धों पर रख दी जो हर तरह की जिम्मेवारी का भार सहन करने के लिये तय्यार हैं। उसने कहा कि —

'मेरी सम्मति है कि इस प्रान्त में सरकार ने अत्यन्त कायर नीति का अनुसरण किया है। उन्हों ने समाज सुधार के कानूनों में हिस्सा लेने से इनकार किया है। शायद सरकार को विदेशी होने के कारण यह डर था कि लोग उस पर प्रजा के धर्म में हस्तक्षेप करने का इलजाम लगाएंगे।

यद्यपि मलका विक्टोरिया के ऐलान में यह कहा गया है कि विविध श्रेणियों और जातियों के बीच समता का व्यवहार किया जावेगा, तथापि सरकार ने इसे क्रियात्मक रूप नहीं दिया।'

किन्तु सिन्ध के मुसलमान सदस्य मि० नूर माहम्मद ने एक वास्तव में काम की बात कही कि:—

'मैं समझता हूँ वह दिन दूर नहीं है जब कि वे लोग जिन्हें उच्च जाति के लोगों ने समाज के अन्दर ज़बरदस्ती नीच बना रखा है × × × लाचार होकर दूसरे धर्मों को ग्रहण कर लेंगे। फिर हिन्दू समाज को इस बात की शिकायत करने का कोई हक़ न होगा कि मुसलमान या ईसाई प्रचारक अछूत जातियों के लोगों को धर्म परिवर्तन के लिये उसका रहे हैं। × × × यदि हिन्दू समाज दूसरे मनुष्यों को, जो हमारी तरह ही ईश्वर के बनाए हुए हैं सार्वजनिक स्कूलों में लेने से इनकार करता है, और यदि × × × एक ऐसे लोकल बोर्ड का प्रेसिडेण्ट जो इस सभा में लाखों मनुष्यों का प्रतिनिधि बनकर आया है अपने देशबन्धुओं और भाइयों को कुएं से पानी लेने का अत्यन्त प्रारम्भिक मानव अधिकार देने के लिये भी तय्यार नहीं है, तो उन्हें अंगरेज़ शासकों से अधिक अधिकार मांगने का क्या हक़ है? × × ×

विदेशियों पर दोष लगाने से पहले हमें यह देख लेना चाहिये कि हम स्वयम अपने आदमियों के साथ किस तरह का व्यवहार करते हैं × × × हम अधिक राजनैतिक अधिकार कैसे मांग सकते हैं, जब कि हम स्वयम मनुष्यों के प्रारम्भिक स्वत्व तक से उन्हें वंचित रखते हैं?'

इस बात के लिये क़ानून बनाए जा सकते हैं कि कुजातियों

को स्कूल के दरवाजे तक आने दिया जावे किन्तु उनका आत्मसम्मान सदियों पहले कुचला जा चुका है इसलिये उनमें स्वयम इतना साहस नहीं होता कि वे ड्योढ़ी को पार कर कमरों के अन्दर आ सकें।

परिणाम यह है कि इन लोगों के स्कूल में भरती होने का अधिक से अधिक मतलब यह होता है कि वे बरामदे में बैठ कर दूर से केवल सुन सुन कर कुछ ज्ञान प्राप्त कर लें।

विलेज ऐजूकेशन कमीशन की रिपोर्ट में लिखा है कि —

आमतौर पर अभी तक यह हालत है कि उच्च जातियों के लोग न केवल नीच जातियों की शिक्षा के लिये स्वयम कुछ नहीं करते बल्कि उनकी शिक्षा प्राप्ति के मार्ग में जान बूझ कर रोड़े अटकाते हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि यदि ये लोग शिक्षा पा गए तो फिर इनसे लाभ न उठाया जा सकेगा। नीच जातियों के जो लोग अपने बच्चों को स्कूलों में भेजने का साहस करते उन्हें—यदि स्कूल उन्हीं की बस्ती में भी हो ताकि उच्च जाति के बच्चों के उनके सम्पर्क से अपवित्र होने की कोई शिकायत नहीं की जा सकती—तो भी उच्च जाति के लोग उन्हें इतना दिक करते हैं और डर दिखाते हैं कि उन्हें लाचार होकर अपने बच्चे स्कूल से हटा लेने पड़ते हैं। यदि नीच जाति के लोग साधारण शिक्षा के अतिरिक्त ईसाई धर्म की शिक्षा भी चाहें तो कुछ दिनों तक उन्हें और भी अधिक जोरों के साथ दिक किया जाता है। क्योंकि उच्च जाति वालों को इस बात का डर है कि यदि नीच जाति के लोग ईसाई हो गए तो फिर वे उनकी सेवा करने से इनकार करेंगे, और उन्हें नौकर न मिलेंगे।

नीच जातियों में से फ़ी सदी बहुत ही थोड़े हैं जो इस समय स्कूलों में जाते हैं, किन्तु यदि उनमें से कोई तमाम कठिनाइयों और बाधाओं को पार करते हुए शिक्षा प्राप्त कर लेता है तो वह आम तौर पर अपनी जाति में बहुत ही उपयोगी साबित होता है। यद्यपि अनन्त काल से ये लोग पतित समझे जाते रहे हैं तथापि उन्नति करने की शक्ति अभी तक उनके अन्दर से लोप नहीं हुई, बङ्गाल में नमशूद्रों की संख्या लगभग १९,९७५०० है ये सब लोग अछूत हैं जब इन लोगों को नई रोशनी और प्रोत्साहन दिया गया तो उन्हों ने बड़े धैर्य, वेग और सफलता के साथ अपनी उन्नति के लिये संग्राम किया। इस समय इन लोगों के अपने स्कूल हैं, जिन्हें चलाने का उन्होंने संगठित प्रयत्न कर रखा है। पिछली रिपोर्ट से मालूम होता है कि बङ्गाल में उनके ४९००० से अधिक बच्चे शिक्षा पा रहे हैं जिनमें १,०२५ हाई स्कूल तक पहुँच चुके हैं और १४४ कालेजों तक। जाति भेद के कारण सरकार को उनके लिये लाचार होकर अलग बोर्डिंग हाउस बनाने पड़े हैं। यह जाति शीघ्रता से ऊपर उभरती जा रही है।

पंजाब में, जहाँ पर कि सरकार की आबपाशी की नहरों ने प्रजा के अनेक पुरातन दुःखों का अन्त कर दिया है सार्वजनिक स्कूलों के अन्दर अछूत बच्चों के लिये जाने के विरुद्ध लोगों के भाव दिन प्रति दिन कम होते जा रहे हैं यद्यपि पंजाब की कुछ म्युनिसिपैलिटियों ने बड़ी चतुराई के साथ अपने इन सबसे अधिक गरीब नागरिकों को शिक्षा से वंचित रखने की चालें चली हैं। बम्बई की शिक्षा सम्बन्धी रिपोर्टों से भी पता चलता है कि स्कूलों में शिक्षा पाने वाली अछूतों की संख्या ख़ासी बढ़ती जा रही है। विशेष कर ईसाई पादरियों

के स्कूलों में। इन सब बातों से जो नतीजे निकलते हैं उनसे कुछ खासे मनोरञ्जक अनुमान किये जा सकते हैं।

अछूत जातियों के लोग अपने अधिकारों का प्रतिपादन करने और अपनी शिकायत प्रकट करने के लिये अपने प्रतिनिधियों की वार्षिक सभाएं करने लगे है। इन लोगों के जो विशेष प्रतिनिधि इस समय व्यवस्थापिका सभाओं और म्युनिसिपेल्टी आदिक में बैठते हैं वे दिन प्रति दिन अपने अधिकारों पर उठते जाते हैं। सरकार के लगातार प्रयत्नों द्वारा कतिपय जातियों में उनकी आर्थिक स्थिति बढ़ती जा रही है। इसके साथ ही साथ उनमें अपनी मनुष्यता का भाव जोर पकड़ता जाता है और वे उन अत्याचारों के विरुद्ध क्रोध अनुभव करने लगे हैं जिनके नीचे अभी तक वे चुपचाप दबे पड़े थे। इन लोगों में दो चार योग्य और शक्तिशाली व्यक्तियां भी देश के सामने चमकने लगी हैं।

अन्त में इन लोगों की जो स्त्रियां ईसाई हो जाती हैं उन्हीं में से जातियों की भारतीय लड़कियों के लिये स्कूलों की अधिकतर अध्यापिकाएं ली जाती हैं, उन्हीं में से अस्पतालों के लिये शिक्षित नर्सें मिलती हैं, ये दोनों काम ऐसे हैं जिन्हें उच्च जातियों के हिन्दू घृणा की दृष्टि से देखते हैं और कदापि करने को तय्यार नहीं, दोनों के लिये शिक्षा की आवश्यकता है, और दोनों का प्रभाव समाज के जीवन पर दिन प्रतिदिन पड़ने की सम्भावना है।

मैं एक बार उत्तरीय भारत के एक शहर में एक संस्था को देखने गई जिसका उद्देश्य बच्चों की सेवा करना था। उस समय मुझे पहली बार इस बात का पूरा परिचय मिला कि

भारतीय छुआ छूत का अर्थ क्या है और सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य मनुष्य के साथ कितनी अमानुषिकता दर्शा सकता है।

एक अङ्गरेज़ लेडी डाक्टर काम कर रही थी। अनेक भारतीय स्त्रियाँ वहाँ जमा थीं जो अपने बच्चों को सिखलाने के लिये लाई थीं। उन हिन्दोस्तानी स्त्रियों का व्यवहार उस अङ्गरेज़ लेडी डाक्टर की ओर इस प्रकार का था जिस प्रकार का कि बच्चे अपनी समझदार और प्यारी मां के साथ करते हैं—वे उस पर विश्वास करती थीं; उससे स्नेह करती थीं, और उसे अपनी सब बातें बता रही थीं। और उनकी ज़रूरतें हर तरह की थीं। सुबह से मैं यह बराबर देखती रही कि उस अङ्गरेज़ स्त्री ने बच्चे को नहलाया, वज़न किया, उन्हें देखा, भाला, उनके लिये साधारण दवाइयाँ दीं; सवालों का जवाब दिया, सलाह दी, उन्हें एहतियात रखने के लिये कहा, उत्साहित किया और उनकी प्रशंसा की। इतने में एक उच्च जाति की वृद्ध। 'मां आई, जिसका चेहरा साफ़ था और जो समझदार मालूम होती थी। उसके बदन पर सोने चाँदी के भारी ज़ेवर लदे हुए थे। वह रेशमी दुपट्टा ओढ़े थी। अपना बच्चा दिखाने के लिये वह फ़र्श पर बैठ गई एक पुराने कम्बल के फटे हुए टुकड़े को हटा कर उनमें से अपना नंगा बच्चा बाहर निकाला मालूम हुआ कि उसके बच्चे के बदन में कुछ सूखा और कुछ आधा सूखा पाख़ाना लगा हुआ था।

मैंने यह देख कर उस अंगरेज़ बहन से कहा, 'मालूम होता है यह स्त्री अपने बच्चे की परवाह नहीं करती? बहन ने उत्तर दिया, हम 'इस बात की कोशिश करते हैं कि इस तरह

की स्त्रिया अपने बच्चों के लिये तोलिये का इस्तेमाल किया करें। किन्तु वे तोलिया खरीदने को तय्यार नहीं होतीं। वे स्वय तोलियों को धोने को राजी नहीं होतीं और न किसी दूसरे से मजदूरी देकर धुलवाने को तय्यार होती हैं, यद्यपि उनके पास इस काम के लिये धन की कमी नहीं है। यह स्त्री अच्छे घर में पैदा हुई है। इसका पति सुशिक्षित है—काम करता है—अच्छी तनख्वाह मिलती है। यह स्त्री कभी कभी इस कम्बल के टुकडे को अपने सहन में धूप म लटका देती है, और जब सूख जाता है तो जो कुछ झडता है झाड डालती है। बस ! इसी म पता चलता है कि एक एक जिले के अन्दर घरों में बच्चों को दस्तों की बीमारी इतनी अधिक क्यों होती है और किस तरह फैलती है। ये लोग सफाई रखने की कोई कोशिश करते ही नहीं।'

जिस समय बहिन यह सब कह रही थी, सामने दरवाजा खुला हुआ था। दरवाजे पर एक शक्ल दिखाई दी। यह एक नौजवान स्त्री थी जो इतनी सुन्दर थी और जिसका चेहरा इतना प्यारा था कि उसकी ओर तुरन्त ध्यान जाता था। उसके गोद में एक रोगी बच्चा था। किन्तु वह आगे न बढी। वह दरवाजे के बाहर रुक गई और हसरत के साथ मुस्कराने लगी। अगरेज बहिन भी उसकी तरफ देखकर मुसकरा दी।

मैंने पूछा, 'यहा अन्दर क्यों नहीं आती ?'

बहिन ने उत्तर दिया, 'उसे अन्दर आन का साहस नहीं हो सकता। यदि वह अन्दर आजावे तो ये बाकी की उठकर बाहर चली जावें। यह अछूत है, कुजात है। वह स्वयं यह समझती है कि मेरा इस चौखट पर पर रखना पाप है।'

मैंने कहा, कम से कम यह स्त्री इतनी ही साफ़ दिखाई देती है जितनी दूसरी स्त्रियां।

बहिन ने उत्तर दिया, 'अछूत लोग उतने ही समझदार हो सकते हैं जितना कोई और, सफ़ाई के विषय में तो आप देख ही रही हैं कि अछूत इनसे ज़्यादा गन्दे नहीं हो सकते। किन्तु हिन्दोस्तान का रिवाज ही यह है: और चूंकि हम इस रिवाज को बदल नहीं सकते इसलिये हम भी अपना काम निकालते हैं और जहां तक हो सकता इन सबको मदद देने की कोशिश करते हैं।'

इस प्रकार वह भोली प्रार्थी स्त्री बाहर खड़ी रही। उसी श्रेणी की और बहुत सी स्त्रियां वहां मौजूद थीं। अन्त में अंगरेज़ बहिन उनके पास पहुँची, किसी के बच्चे की आंखों के लिये उसने मलहम दिया, किसी के बच्चे को खांसी की दवा दी और किसी का सब हाल सुना।

किन्तु यह अछूत स्त्रियां अपने बच्चे को गरम स्नान कराने के लिये भीतर नहीं ला सकती, जब कि दूसरी स्त्रियां अपने बच्चों को भीतर स्नान करा रही थीं। वे सोना सिखाने के कमरे में नहीं आ सकती थीं। वे यह देखने के लिये कि जो दूध उनके बच्चों को दिया गया है उससे कहां तक लाभ हुआ है, अपने बच्चों को तराज़ू के ऊपर नहीं रख सकतीं, ऐसा करने से तराज़ू अपवित्र हो जावेगी। कारण यह है कि अत्यन्त प्राचीन जन्मों में उन्होंने भयंकर पाप किये हैं जिनका वे इस समय दण्ड भोग रही हैं और किसी के लिये उनके साथ सहानुभूति प्रकट करना वा उनकी मदद करना उचित नहीं है। वे इसकी अधिकारी नहीं हैं।

बारहवाँ परिच्छेद

देखो कैसी ज्योति है

लोग इस पर बहुत जोर देते हैं कि बहुत दिनों से समाज मे रहने के कारण पतित अछूतों का चरित्र गिर गया है। किन्तु इस बात की शहादत काफी मौजूद है कि युग युगान्तरों के अत्याचारों के बावजूद भी इन लोगों में उनका नैतिक गुण मौजूद है।

उदाहरण स्वरूप महारों को ही ले लीजिये। ये लोग समाज से पृथक कुत्ता समझे जाते हैं। गाँव के सभी बडी जाति के लोग मद्रास के पालरों के समान इनसे भी नीच से नीच काम लेते हैं। बिल्कुल गुलामों की तरह उनका उपयोग करते हैं। अब सरकार इन से हरकारों का काम लेती है अब इस काम मे ये लोग सर्वथा विश्वास योग्य बनाए जाते हैं। वे सैकड़ों रुपये बिना चोरी के इधर से उधर लाते ले जाते हैं। बम्बई प्रान्त में ढेड नामक एक जाति रहती है। वे भी अछूत हैं अंग्रेज लोग अकसर इन्हीं में से अपने नौकर रखते हैं। कोई उच्च जाति का हिन्दू भारतवासी इन्हें अपने पास नहीं आने देता, तथापि वे आम तौर पर ईमानदार परहेजगार सच्चे और वफादार होते हैं।

इनमें से जो ईसाई मजहब में आ गये हैं उनकी तादाद लगभग ५० ०,००, ००० की है। इसमें मतभेद है किन्तु जो कुछ हो, इनमें जो ईसाई हो गए हैं वे कम से कम जात पाँति के बन्धन से स्वतन्त्र हो गए हैं वे जितना चाहें उतना इस

स्वतंत्रता का सुख उठा सकते हैं। निस्सन्देह हिन्दू लोग उनसे घृणा करते हैं लेकिन तीसरी पीढ़ी के ईसाइयों के विषय में अनेक लोग कहते हैं कि वे भारत वर्ष की भावी आशाएं हैं।

अभी तक अङ्गरेज़ क़ौम ने ईसाई मिशनरियों की ज़बरदस्त सहायता से धैर्य और कठिन परिश्रम द्वारा अछूतों के लिये यह सब किया है। उन्हें सिखाया पढ़ाया है समझाया है और प्रोत्साहित किया है। पिछले कुछ वर्षों में भारतीय स्थिति के अन्दर कुछ नए शुभसूचक चिन्ह दिखाई दिये हैं।

इनमें से एक शुभ चिन्ह यह है कि नैशनल सामाजिक कानफ़रेन्सों में तथा हिन्दू राजनैतिक सभा में यह प्रस्ताव खुले पास किया जाता है कि अछूतों का उद्धार किया जाय लेकिन ये सब बातें यद्यपि जोशीले शब्दों में कही जाती हैं पर इनका असर बहुत कम होता है। साथ ही भारतीय स्वय सेवकों के भी ऐसे दल बन गए हैं जो एक दर्जे तक छूआ छूत को मिटाने के लिये प्रतिज्ञा बद्ध हैं। यह बातें सर्वेण्टस आफ़ इण्डिया सोसायटी की रिपोर्ट में दी हुई हैं जो कि ज़ाहिरा एक राजनैतिक संस्था है ब्रह्म समाज, बङ्गाल और आसाम के अछूतों के लिये लार्ड सिंह की सभा और इसी प्रकार की बहुत सी संस्थायें अछूतोद्धार के काम में लगी हुई हैं जितना काम ये करती हैं अच्छा करती हैं किन्तु इनका काम ज़रूरत के हिसाब से तिनका भी नहीं है परन्तु नहीं बहुत कुछ है। कारण यह है कि हिन्दोस्तानियों के दिमाग़ में स्वभाव से यह बात है ही नहीं।

मुझसे भारतीय ब्रह्म समाज के एक अत्यन्त प्रसिद्ध नेता से बातचीत हुई, उन्होंने मुझसे कहा "हम लोग भारतवर्ष में

जो कुछ सामाजिक काम कर रहे हैं वह सब अङ्गरेजों की ही नकल कर रहे हैं। यह सब इस देश में अङ्गरेजों ही के प्रभाव का फल है।" और और स्थानों में भी मैंने बार बार सुना है कि विचार शील भारतीय साफ साफ स्वीकार करते हैं कि भारत में परिवर्तन के मूल कारण अङ्गरेज ही हैं।

सर नारायण चन्द्रावरकर कहते हैं कि भारतवर्ष में छुआ छूत का रोग अभी तक मौजूद है।

अंग्रेज सरकार की संस्थाओं का जो उदार प्रभाव लोगों पर पड़ता है उसके कारण यह प्रश्न अब लोगों के सामने चमकता जाता है। सरकार ही के प्रताप से अछूतोद्धार का प्रश्न अब समस्त भारत का प्रश्न बन गया है।

किंतु मि० गान्धी इस विषय में सरकार के उपकार को स्वीकार करने के लिये इतने तैयार नहीं हैं उन्हों ने भारत की समस्त शासन पद्धति को ही इतना नीच कि जो वर्णन नहीं की जा सकती, बतलाया है। किन्तु पिछले पांच वर्ष से वह छुआ छूत के विरुद्ध युद्ध करते रहे हैं और यद्यपि इस काम में उनकी एक मात्र सच्ची सहायक अंग्रेज सरकार रही है, और इन दोनों को सबसे अधिक सहायता मुक्ति फौज से मिली है। इस प्रसङ्ग में मि० गांधी ने एक विद्वान ब्राह्मण को हाल का कथन किसी देशी अखबार से लेकर अपने २६ जुलाई १९२६ के 'यङ्ग इण्डिया" में प्रकाशित किया है। उसमें लिखा है कि—

"छुआछूत का विचार मानव समाज की उन्नति के लिये अनावश्यक है"

"मनुष्य के चारों ओर आकर्षणी शक्तियां मौजूद हैं और ये शक्तियां दूध की तरह "उनके बीच में यदि कोई अयोग्य

व्यक्ति पड़ता है तो वह उन शक्तियों को नष्ट कर डाल सकता है। जो आदमी कस्तूरी तथा पियाज को एक साथ रख सकता है वही ब्राह्मणों को और इन अछूतों को एक साथ मिला सकता है।

"इन अछूतों के लिये यही पर्य्याप्त है कि वे पारलौकिक सुखों से वंचित नहीं किये जाते।"

पंडित जी की इन बातों की आलोचना करते हुये मि० गान्धी कहते हैं, अगर यह बात मान ली जाय कि वे पार-लौकिक सुखों से वंचित किये जा सकते हैं तो सम्भव हो सकता है कि इस अत्याचारी का समर्थन करने वाले उन्हें परलोक में भी अछूत बना कर रखें।"

प्रोफ़ेसर रसब्रुक वीलियम कहते हैं कि "वर्तमान भारतवर्ष में सब से अधिक मि० गान्धी ने अपने देशवासियों के हृदय में यह भाव पैदा कर दिया है कि अछूतों का उद्धार करना आवश्यक है। × × × जब उनका नाम हर एक भारतीय बच्चों तक के मुँह से सुना जाता था कि अधिक कट्टर लोगों को उनकी बातों के विरोध करने का साहस न हो सका।"

लेकिन आज कल अछूतोद्धार के विरोधी भी सैकड़ों मौजूद हैं यद्यपि मि० गान्धी अपने विश्वास के अनुसार कार्य भी करते हैं तथापि उनका समर्थन करने वाले कदाचित ही उनके अनुसार अमल करते है।'

सन् १९२६ ई० ५ जनवरी को बम्बई में हिन्दुओं की एक बड़ी भारी सभा हुई थी उसका उद्देश्य यही था कि महात्मा गान्धी ने जो बात छूआछूत के विरुद्ध कही उन्होंने विरोध किया, क्योंकि वह, धर्म पर हमला था। उस सभा के

सभापति मनमोहन दास रामजी थे उन्होंने छुआछूत के विषय में कहते हुये कहा अछूतों को दूर रखना उतना ही आवश्यक है जितना संक्राम रोग वालों को, उनसे पहिले एक महाशय ने कहा था कि इस तरह के अर्थात् महात्मा गान्धी के से जो लोग नास्तिकता फैलाते हैं और हिन्दू समाज को नष्ट करना चाहते उन्हें मार डाला जावे। सभापति महोदय ने समर्थन तो नहीं किया, किन्तु इतना अवश्य कहा कि उनका हिन्दू लोग "हिन्दू धर्म की प्राचीन, पवित्रता को बचाये रखने के लिये अपने प्राण देने को तैयार हैं।"

इसके बाद उस सभा ने एक कमेटी कायम की और उसका उद्देश्य यह रक्खा कि महात्मा गान्धी के अछूतोद्धार विषयक उपदेश के प्रतिकूल कार्रवाई की जाय और इसके बाद सभा का काम बन्द किया गया।

इस सम्बन्ध में यह स्वीकार करना आवश्यक है कि हिन्दू महासभाओं के अन्दर बार बार अछूतोद्धार के प्रश्न को लाने पर जो तर्क वितर्क होता है और उसमें छुआछूत के पक्षपाती जो जोश दिखाते हैं उसी से मालूम होता है कि छुआछूत का भाव घट रहा है।

मि० गान्धी ने मुझसे कहा कि इसके विषय में जो विरोध हिन्दू महासभा में उठा था वह तो आपही जाता रहा है किन्तु तिस पर भी हर प्रकार के विघ्न होने पर भी छुआछूत का विचार तेजी से मिटता जा रहा है। इसने भारतवासियों की मनुष्यता को नष्ट कर डाला है। यहाँ अछूतों के साथ पशुओं से भी नीच बर्ताव किया जाता है। धर्म के नाम पर यह कहा जाता है कि उनकी छाया भी अपवित्र है। जिस प्रकार मैं अङ्गरेजों की भारतीय शासन प्रणाली की निन्दा करता हूँ उसी

प्रकार या उससे भी अधिक छुआछूत के विचारों को भी अङ्गरेज़ों के राज्य से भी छुआछूत का रोग मेरे लिये अधिक असहनीय है अगर हिन्दू लोग छुआछूत को चिपटाये रहते हैं तो मैं समझता हूं कि हिन्दू धर्म मर चुका।'

इसी समय में अछूतों की सहायता करने वाली एक और कौतूहल मयी घटना उपस्थित हो गई। वह यह है कि सरकारी नौकरियों में हिन्दोस्तानियों की संख्या जिस प्रकार तेज़ी से बढ़ती जाती है और जिस प्रकार महायुद्ध के समय से अङ्गरेज़ सरकार हिन्दोस्तानियों को तेज़ी के साथ स्वराज के अधिकाधिक अधिकार देती जाती है उतना उतना ही तीन चौथाई हिन्दुओं और एक चौथाई मुसलमानों में परस्पर ईर्षा बेहद बढ़ती जाती है।

इस विषय का उल्लेख किसी दूसरी जगह में किया जायगा। यहां पर यही बतला देना काफ़ी होगा क्योंकि अछूतों की ओर ध्यान दिया जारहा है? इसके उत्तर में यही कहना पड़ता है कि कारण यह है कि अछूतोद्धार करने से हिंदुओं की संख्या बढ़ जायगी और संख्या बढ़ाने के लिये हिन्दू संसार उत्सुक है। सन् १९२० में सर टी० डबल्यू होलडरनेस ने अपनी पुस्तक "पीपलस एण्ड प्राब्लम्स आफ़ इंडिया में पृष्ठ १०१-२ पर लिखा है कि भारतवर्ष की जनता में" अछूतों ही की संख्या अधिक है × × × वर्तमान हिन्दू समाज में यह भी एक प्रश्न उठ रहा है कि इन अछूतों को हिन्दू कहना चाहिये या नहीं? दस वर्ष पहले यही कहा जाता था कि इन्हें हिन्दू न कहना चाहिये। आज कल भी पक्के हिन्दू यही कहते हैं, किन्तु अधिक उन्नत तथा पढ़े लिखे हिन्दू अब इन बातों पर कुछ कुछ ध्यान देने लगे हैं। जिस समय हिन्दुओं

के प्रतिस्पर्धी मुसलमान नेता उन्हें यह याद दिलाते हैं कि जो लोग हिन्दू समझे जाते हैं उनमें से एक तिहाई से अधिक ऐसे हैं जिन्हें स्वयं हिन्दू, हिन्दू स्वीकार नहीं करते, जिनके यहां ब्राह्मण पुरोहित नहीं जाते, जिन्हें हिन्दू मन्दिरों में जाने नहीं दिया जाता, इससे हिन्दुओं को शर्माना पड़ता है। इस तरह की दलील के सामने यही उचित मालूम होता है कि अछूत जातियों को अपनाया जावे और उन्हें हिन्दू स्वीकार किया जावे। किन्तु यदि उन्हें हिन्दू मान लिया जावे तो तर्क में यह आवश्यक हो जाता है कि उनके साथ वर्तमान की अपेक्षा कुछ अच्छा बर्ताव किया जाय। पढ़े लिखे हिन्दू इसे समझते हैं, और भारतीय सामाजिक सुधार सभाओं में अछूतोद्धार पर खूब जोर दिया जाता है। किन्तु बड़े से बड़े सुधारक भी यह स्वीकार करते हैं कि भारत में जात पाँत का प्रभाव लोगों पर इतना अधिक है कि अछूतों के अमली सुधार के मार्ग में बहुत बड़ी रुकावटें हैं।

किन्तु यहां पर और एक नई चीज आगई—ब्रिटिश के परिवर्तनशील हस्तक्षेप का एक और फल जो यहाँ की स्थिति में विघ्न डाल रहा है वह यह कि सम्भव है कि विदेशियों की विचित्र सहानुभूति से प्रोत्साहित हो कर अछूत लोग अब बहुत दिनों तक इसे गवारा न करें कि उनकी धार्मिक स्थिति का निर्णय करना उच्च जाति के हिन्दुओं की इच्छा और स्वच्छन्दता पर निर्भर रहे।

इस्लाम धर्म जो सब की समानता का विश्वासी है उन्हें आदर के साथ अपने में बुला रहा है। ईसाई मजहब भी उन्हें केवल बुलाही नहीं रहा है वरन उन्हें शिक्षा और सहायता देने को भी तैयार है। जिस समय कोई अछूत इस्लाम या

ईसाई मज़हब में चला आता है उसी समय से वह घृणा से छुटकारा पा जाता है। इसलिये प्रश्न मुख्य कर यह है कि जिन लोगों पर युगों से अत्याचार होता चला आया है वे इतनी देर में इतना साहस, इतनी वीरता और इतना बल अपने में पैदा कर सकते हैं कि अपने पैरों पर खड़े होकर अत्याचार की धूल को झाड़ डालें।

सन् १९१७ ई० की शरद् ऋतु में तत्कालीन भारत-सचिव मि० ई० एस० मान्टेगु ने जो कि भारत का शासन जल्दी से भारतवासियों को सौंप देने के मुख्य पक्षपाती थे, दिल्ली में बैठ कर उन सब भारतीय समूहों के बयान उन्हीं के निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा सुने जिन्हें इस कार्य के लिये निमंत्रित किया गया था। तरह तरह के आदमी बयान देने आए। तरह तरह की दरख़ास्त दी गई। सब विचारों और सब श्रेणियों के हितों को पेश किया गया। इनमें एक ख़ासा अच्छा प्रतिनिधि समूह ऐसे लोगों का था, जो भारत के राजनैतिक आकाश में पहली बार सामने आए थे—ये अछूत थे, जो कई संगठित समूहों में सैक्रेटरी के सामने हाज़िर हुए, ये लोग हाल के जागे हुए थे और अपने अधिकारों पर ज़ोर दे रहे थे। उन सब लोगों ने एक स्वर से भारत के लिये स्वराज का विरोध किया उनकी बातों का लम्बा उल्लेख करना पुनरुक्ति करना होगा। उन लोगों का मतलब नीचे के दो उदाहरणों से काफ़ी अच्छी तरह समझा जा सकता है:—

मद्रास प्रान्त के अछूतों की एक संस्था—"पंचम कल्वी अभिवृद्धि अभिमान संघ" ने लिखा कि, 'हम लोग राजनैतिक परिवर्त्तन नहीं चाहते। हम चाहते हैं कि हमें ब्राह्मणों से बचाया जावे, जिनका उद्देश्य शासन के अधिकार प्राप्त

करने में ठीक वैसा ही है जैसा कि मेढक के बच्चों के ऊपर काला नाग अधिकार चाहता है।"

मद्रास की आदि द्राविड जन सभा, जो मद्रास के आदिम निवासी ६०,००,००० द्राविडों के विचार प्रकट करती थी, कहती है कि —

"हिन्दुओं का जाति विभाग हम लोगों को अछूत के नाम से कलंकित कर रहा है। × × × किन्तु उच्च जातियों के हिन्दू बिना हम लोगों की सहायता के नहीं जी सकते। हम लोग मेहनत करते हैं और वे घर बैठे उनसे आराम करते हैं और इसके बदले में जो कुछ हम देते हैं वह नड़ा के बराबर है। हम लोगों की सामाजिक तथा आर्थिक उन्नति ब्रिटिश सरकार के आने से हुई और उन्हीं के कारण जारी है।

भारत के अङ्गरेज चाहे वे सरकारी अफसर हों चाहे रोजगारी हों, और खास कर ईसाई चाहे पादरी हों सब हम लोगों को प्यार करते हैं और हम लोग भी बदले में उन्हें प्यार करते हैं। यद्यपि हमारी सामाजिक अवस्था अभी तक बहुत नीची है तथापि हम लोगों में कुछ शिक्षित व्यक्ति भी हैं।

किन्तु उच्च हिन्दुओं ने हम सब को अछूत नाम से कलंकित कर रक्खा है इसलिये हम में से शिक्षित लोग भी समाज में उन्नति नहीं कर पाते हैं। वे लोग जिन शब्दों का हमारे लिये उपयोग करते हैं उन्हीं से घृणा प्रकट होती है।

"हम लोगों को यह कहने की जरूरत नहीं है कि हम भारत को स्वराज दिये जाने के कट्टर विरोधी हैं।

यदि भारत का शासन अंगरेजों के हाथोंसे लेकर उन लोगों के हाथों में दिया गया। जो उच्च जाति के हिन्दू कहलाते हैं, जो भूतकाल में हमारे ऊपर अत्याचार कर चुके हैं और यदि-

अंगरेज़ी क़ानून हमारी रक्षा न करे तो भविष्य में भी करते रहेंगे यदि इन लोगों के हाथों में शासन देने का प्रयत्न किया गया तो हम अपने रक्त का अन्तिम विन्दु बहाकर इस प्रयत्न के विरुद्ध लड़ेंगे। वर्तमान स्थिति में भी हिन्दू लोग न केवल हमारे अधिकारों की ही अवहेलना करते हैं बल्कि हमारे अस्तित्व तक से इनकार करते हैं,—यदि इनके हाथों में भारत का शासन भार सौंप दिया गया तो वे हमारे हितों को किस प्रकार उन्नति देसकते हैं ?'

अछूतों के इन प्रतिनिधियों ने कहा कि हम लोग उन्हें प्यार करते हैं,—अर्थात् अङ्गरेज़ों को—किन्तु इस बात को सुनकर थोड़ा दुःख होता है, तथापि हमें यह याद रखना पड़ता है कि भारतीय इतिहास की पिछली समस्त अन्धकारमय शताब्दियों में अङ्गरेज़ों के आने के पहिले आज तक किसी ने भी इन अछूत कहलाने वाले दलित लोगों के दुःखों की ओर ध्यान न दिया था और न उनकी सहायता के लिये हाथ बढ़ाया था। नीचे एक घटना दी जाती है जो मुझसे कही गई थी जिससे मालूम होता है कि सदियों का अत्याचार भी मनुष्य के अन्दर से अपने सच्चे मित्र की ओर कृतज्ञता के भाव को नष्ट नहीं कर सकता।

यह घटना महायुद्ध के समय की है जब कि अंगरेज़ी सेना कुत पर कब्ज़ा करने जा रही थी। मद्रासी सिपाहियों का एक दल था जो सब बंगलोर जंगलों के आस पास के कोयले की तरह काले द्राविड़ लोग थे। ये लोग लगभग सब अछूत थे। वे सब सफ़रमैना के सिपाही थे। बयान करने वाले अंगरेज़ ने मुझ से कहा कि, 'नदी उस जगह पर ३०० गज़ चौड़ी थी और धारा तेज़ थी। हमारा

काम यह था कि तुर्कों के जागने से पहिले पहिले सुबह के धुंधले प्रकाश में ही डोंगियों में बैठकर नदी पार कर जाये। मद्रासी सफरमेना का काम केवल यह था कि एक रात पहिले से अंधेरे में किश्तियां किनारे पर ले आवें और उन्हें तैयार रखें, फिर जब अंगरेज सिपाही किश्ता में बैठकर डाँड चलाने लगें तो स्वयम पीछे हट जावें।

सफरमेना ने अपना काम कर दिया। किन्तु ज्योंही अंगरेज किश्ती में बैठने लगे तुर्क जाग पड़े और उन्हों ने हमारी किश्तियों पर गोली बरसानी शुरू कर दी। हमारी हिम्मतें छूटने लगो किन्तु हमने अपना काम जारी रखा।

योद्धा सिपाही किश्तियों की तली में लेट सकते थे किन्तु जो लोग डाँड चलाने वाले थे उनके लिये ऊपर बैठकर किश्ती का खेना आवश्यक था—३०० गज, तिरछे, और ऊपर से गोलियों की लगातार बौछार। डाड चलाने वालों के बचने की कोई आशा न थी!

'इसके बाद क्या हुआ? यह कि उन छोटे छोटे मद्रासियों ने बड़े चाव से आगे बढकर हमसे कहा "साहब, आप लोगों के पास बदूकें हैं आपकी वहाँ जरूरत होगी हम लोग केवल सफरमेना हैं। आप लेट जाइये, डाँड हम चलायेंगे।"

'इस प्रकार अंगरेज सिपाही दौड़कर किश्तियों में घुसे और चित्त लेट गये। सफरमेना के सिपाही ऊपर डटे गये और किश्ती खेने लगे। तुर्कों की मशीनगनें गोलें बरसाती रहीं।

'जिस समय किश्तियां हमें पहुचा कर लौट आयीं सत्तर खेने वालों में से शायद एक भी न बचा था जो घायल न हो गया हो। उन में से बहुत से मर चुके थे। किन्तु जो सफरमेना

वाले किनारे पर थे, वे फ़ौरन लपक कर आये, अपने मुर्दों व
उन्हों ने निकाल लिया नये आदमी फ़ौरन उनकी जगह कू
कर किश्ती पर आ बैठे और ज्योंही कि नये अंगरेज़ सिपा
किश्तियों में लेट गये इन लोगों ने खेना शुरू कर दिया।
लोग भी अपने से पहिलेवालों की तरह धड़ाधड़ गोलियों
मरते रहे। इस प्रकार हम लोग कुत पहुँचे। और वे लो
कोयले की तरह काले ब्राह्मण थे—"अछूत" सिवाय उनके
जो ईसाई हो गये थे— और उनमें से बहुत से ईसाई ह
चुके थे।"

सन् १९२१ के अन्त में जिस समय प्रिन्स आफ़ वेल्स
भारत आये, मि० गांधी का प्रभाव बड़े ज़ोरों पर था। उन्हों
सब हिन्दुओ से कहा कि प्रिन्स का आगमन भारत के घाव प
निमक छिड़कना है इसलिये सब लोग प्रिन्स का बायकाट करें

राजनैतिक काम करने वालों ने वफ़ादारी के साथ गांधी क
आज्ञा चारों ओर फैला दी, राजनैतिक संस्थाओं का इसके
लिये उपयोग किया गया परिणाम यह हुआ कि प्रिन्स के
बम्बई पधारते ही ख़ूब रक्तपात हुआ और प्रजा की
भयंकर हानि हुई। नगर के ज़िम्मेवार लोगों में को
उपद्रव नहीं हुआ और न उस रास्ते पर कोई उपद्र
हुआ जिस रास्ते से प्रिन्स आफ़ वेल्स गये, कारण यह
कि उस रास्ते पर सेना का ज़बरदस्त पहरा था किन्तु शहर
के दूर दूर के भागों में कई दिन तक लूटमार रही। घ
जले और माल लूटे गये, हिन्दोस्तानियों ने हिन्दोस्तानियों
पर हमले किये, लगभग ५० आदमी मरे और ४०० घायल
हुये

शहज़ादा अपने जीवन के इस पहिले अपमान की पर्वाह न

करते हुये, शहर में तथा उसके आस पास अपना, निश्चित कार्य-क्रम पूरा करता रहा। बाइस नवम्बर की शाम को यह निश्चित था कि शहजादा उत्तर की ओर चला जावेगा।

गवर्नमेंट हाउस से बम्बई रेलवे स्टेशन तीन या चार मील था। जिस समय शहजादा गवर्नमेंट हाउस से निकला उसकी मोटर के साथ सिवाय एक पुलिस के मोटर के जो बहुत आगे निकल चुकी थी और कोई पहरा न था। प्रिन्स की मोटर जब शहर में आई तो सड़क के दोनों ओर पुलिस का जञ्जीरा था। इन पुलिसवालों के पीछे लोग धक्का धक्का कर रहे थे। ये लोग सहस्रों और लाखों की संख्या में गरीब दिहाती थे। धक्का धक्का होता रहा यहां तक कि स्टेशन अभी आध मील था कि पुलिसवालों का जंजीरा टूट गया।

तुरन्त पीछे की जनता ने आगे बढ़कर प्रिन्स की मोटर को घेर लिया, वे सब चिल्लाते रहे और मोटर के अधिक समीप आने के लिये एक दूसरे से लड़ते रहे। वे क्या करने वाले थे? उनके दिल में क्या था? परमात्मा ही जाने! गांधीके जोशीले शब्द उन लोगों में पहुंच चुके थे केवल परमात्मा ही अब रक्षा कर सकता था। उनमें से कुछ लोग मोटर के पायदान तक आकर गिर गये। दूसरों ने उन्हें हटा कर उनकी जगह ली, इत्यादि। वे क्या चिल्ला रहे थे! पहिले कुछ सुनायी न दिया, जो लोग प्रिन्स के रक्षा के लिये जिम्मेवार थे उन्हों ने कान फाड़ फाड़ कर सुना। तब सुनायी दिया कि ये लोग बारबार चिल्ला रहे थे "युवराज महाराज की जय! मरने से पहिले एक बार हमें अपने युवराज के दर्शन कर लेने दीजिये!"

पुलिसवालों ने फिर मोटर के चारो तरफ आ जाने का

प्रयत्न किया, किन्तु व्यर्थ। बिना पहरे के अब मोटर धीरे धीरे रेंग कर उन चिल्लाते हुये सहस्रों आदमियों में से अन्त में स्टेशन पहुँची।

प्लेटफ़ार्म पर कटघरे के अन्दर शाही स्पेशल ट्रेन, के सामने नगर और प्रान्त के बड़े बड़े लोग आख़िरी सलाम के लिये खड़े थे शहज़ादे ने उनकी बातें सुनकर उनकी सलामों का जवाब दिया, इसके बाद बात काट कर शहज़ादा यकायक अपने पास के संरक्षक सिपाही की ओर मुड़ा। प्रिन्स ने पूछा :—

'और कितना समय है?'

उत्तर मिला "तीन मिनट"

शहज़ादे ने बाहर की जनता की ओर इशारा करके कहा 'तो अब उस कटघरे को गिरा दो और लोगों को अन्दर आने दो।'

जिन लोगों ने मुझे घटना सुनाई वे कहते थे कि इस पर हम लोगों के दिल दहल गये किन्तु कटघरा गिरा दिया गया।

नदी की बाढ़ की तरह अगणित जनता उमड़ पड़ी, ये लोग रोते थे, हंसते थे, प्रिन्स की पूजा करते थे और चिल्लाते थे जिस समय गाड़ी चली। ये लोग शाही ट्रेन के बराबर बराबर दौड़ते रहे जब तक थक न गये।

इनके बाद एक दो अपने तई अत्यन्त ज़िम्मेदार समझने वाले अफ़सर सीधे घर पर जाकर सो गये।

इस प्रकार प्रिन्स उत्तर की ओर बढ़ा उसके बढ़ते ही भारत के राजनैतिक नेताओं के द्वेष के कारण लोगों पर से प्रिन्स का उत्तम प्रभाव बहुत कुछ मिट गया।

किन्तु जिस तरह गांधी के अपील फैलते रहे उसी तरह

शहजादे के सुन्दर स्वभाव के समाचार भी वेग के साथ दूर दूर फैलता गया। प्रारम्भिक असभ्य लोगों में इस तरह की सब खबरें जल्दी फैलती है।

जिस समय प्रिन्स भारत के उत्तरीय फाटक खैबर के दर्रे में लौटा, उस समय एक विचित्र घटना हुई। शहजादे के स्वभाव की खबर सुन कर हिम्मत करके अछूतों का एक समूह शहजादे की ओर आदर दिखलाने के लिये सड़क के किनारे आकर खड़ा हो गया।

ये लोग चिल्लाने लगे "गवर्नमेंट की जय।" और तालियां पीटने लगे। इनकी तालियों की आवाजें निर्वृक्ष चट्टानों से गूंजने लगीं।

जिस समय प्रिन्स ने उनकी सलाम का जवाब देने के लिये अपनी मोटर को धीमा किया। ये लोग खुशी के मारे कूदने और नाचने लगे।

कारण यह था कि जहां तक इन लोगों की स्मरण शक्ति काम कर सकती थी वो जो कुछ जो कहानियां उन्होंने सुन रखी थी उनमें आज तक कभी भी ऐसा न सुना गया था कि, कोई भारतीय नरेश किसी अछूत की ओर सिवाय घृणा के और कोई भाव दर्शाया हो। और अब उनके सामने एक इतना बड़ा नरेश था, जिस के तुल्य भारत में कोई भी न था—स्वयम सम्राट का पुत्र उनकी दृष्टि में वह ईश्वर तुल्य था और वह शहजादा न केवल उनकी ओर ध्यान ही दे रहा था। वरन उनके इस राजभक्ति प्रदर्शन के लिये धन्यवाद दे रहा था कोई आश्चर्य नहीं कि इन लोगों के दिल वासों उछलने लगे, उनकी आंखों के सामने अलौकिक दृश्य दिखाई देने लगे, और उनकी जिह्वा पर रहस्य पूर्ण शब्द सुनायी देने लगे।

पता न र्गी कि प्रिन्स ने अपने ार्य के महत्व को पूरी तरह समझ लिया अथवा केवल समस्त ससार की ओर अपने स्वाभाविक प्रेम और सौजन्य से प्रेरित होकर कार्य किया—इसमें सन्देह नहीं प्रिन्स ने इस समय जो कुछ किया वह पहले कभी सुनने में भी न आया था। युवराज उन अछूतों के लिये जो कुत्तों से भी बदतर समझे जाते हैं खडा हो गया, उसने उनसे कुछ प्रेम के शब्द कहे, उन सब को धीरे से देखा। और फिर चमकती हुई मुस्कराहट के साथ उन्हें सलाम किया।

हिन्दोस्तान में कभी किसी काल में भी इस तरह का दृश्य देखने में न आया था। जिस समय मोटर आगे बढी वे लोग करीब करीब पागल हो गये और इस डर से कि कहा उनमें से कोई कुचल न जाय मोटर धीरे धीरे चली। फिर उन्होंने अपने पूर्वीय भाव इस प्रकार प्रगट किया,— भाई, हमारे भाईयों ने जो बात कही थी वह सत्य है। देखो कैसी ज्योति है। वास्तव में युवराज के चेहरे पर कैसी ज्योति है।"

— o —

तेरहवां परिच्छेद

नौकरी दो या मौत

कुछ भारतीय राजनीतिज्ञों का मत है कि जनता के लिए शिक्षा अनिवार्य्य करके उसे शिक्षित बनाना चाहिए। उनका कहना है कि इंग्लैण्ड ने अपने यहां बहुत समय पहले से ऐसा कर रक्खा है, फिर भारतवर्ष में भी वह यही क्यों नहीं करता? इसका कारण स्पष्ट है—जनता को अशिक्षित रखने में उसका स्वार्थ है।

इसका मुँहतोड़ उत्तर पनागाल के राजा ने दिया, जिसे मैंने लिख लिया। वे उस समय मद्रास प्रान्त के ब्राह्मण विरोध दल के नेता थे।

उन्होंने कहा—ब्रिटेन के आने के पहले ५००० वर्षों में ब्राह्मणों ने ही हमारी शिक्षा के लिए क्या किया? मैं आप को याद दिलाता हूँ—कि ब्राह्मणों ने पुस्तकें पढ़ने का साहस करने वाले अछूत के कानों में गरम सीसा पिलवाया, वे कहते थे कि सम्पूर्ण विद्या के अधिकारी हमीं हैं। जब मुसलमान भारतवर्ष में आये और उन्होंने हमें अपनाया तो सच बात यह है कि हम हिन्दू राज्य की अपेक्षा अच्छे ही रहे। परन्तु, ब्रिटेन के शासन-काल में सब को शिक्षा पाने का अधिकार मिला है और सरकार ने स्कूलों, कालेजों, और विश्वविद्यालयों में सभी जाति के लोगों को समान स्थान दिया है।

डु०बुआ का कहना है—*ब्राह्मणों ने यह अच्छी तरह समझ

*हिन्दू मैनर्स, कस्टम्स ऐण्ड सेरीमनीज़ नामक पुस्तक का पृ० ३७६

लिया था कि ज्ञान के द्वारा वे नेतिक दृष्टि से अन्य जातिया की अपेक्षा अधिक ऊँचे हो जायंगे और इस कारण उन्हाने और लोगों को विद्या प्राप्त करने से रोकने के लिए उचित उपाय करके इस विषय को एक रहस्य पूर्ण रूप दे दिया है।

लेकिन, बहुत पूर्वकाल में, ज्ञान के क्षेत्र में ब्राह्मणा ने भले ही वडे बडे कमाल के काम किये हों, लेकिन आगे चल कर तो वे पहले की ही प्रशसाओं पर सन्तुष्ट पडे रहे।

औरों को प्रकाश देने से विरत रहे, स्वयम दिन दिन उन्होंने कोई तरक्की न की। धुँधले पडने वाले भूतकाल की निरन्तर क्षय शील बुद्धि से ही उन्होंने सन्तोष कर लिया। उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में लिखित अपनी पुस्तक के ३७८७ पृष्ठ पर डु० बुआ कहता है—

म यह बात नहीं मान सकता कि वर्त्तमान समय के ब्राह्मण लीकरगस और पाइथागोरस के समय के अपने पूर्व्वजों की अपेक्षा किसी अश में अधिक विद्वान हैं। इस लम्बे समय के भीतर अनेक जगली जातिया अज्ञान के अन्धकार से निकल कर सभ्यता के शिखर पर पहुँची हैं तथा उन्होंने ज्ञान के क्षेत्र में अपने अनुसन्धानों का विस्तार किया है। परन्तु, इस बीच हिन्दुओं ने बिलकुल ही प्रगति नहीं की है। हम उनमें मानसिक शक्ति अथवा नेतिक उन्नति का कोई चिन्ह नहीं पाते, कला अथवा विज्ञान के क्षेत्र में उनकी प्रगति का कोई लक्षण हम दिखायी नहीं पडता। प्रत्येक पक्षपात-शून्य निरीक्षक को यह स्वीकार करना पडेगा कि अब वे उन लोगों से कहीं पीछे पड गये हैं, जिन्होंने बहुत बाद को सभ्य जातियों की श्रेणी में अपना नाम लिखाया था।

ब्रिटिश राजसत्ता के हाथ म भारतवर्ष का शासन जाने के

५० वर्ष पहले यह लिखा गया था।

उन पचास वर्षों में शिक्षा-सम्बन्धी एक नया आन्दोलन देश में खड़ा हो गया था। ब्रिटिश पार्लियामेंन्ट की प्रेरणा से, वारेन हेस्टिंग्स का, और बाद को ईस्ट इण्डिया कम्पनी की यह इच्छा थी कि भारतीय संस्कृत को उन्नति और विकसित होने में सहायता दी जाय। परन्तु भारत वर्ष में आकर बसे हुए डैविड हेयर नामक एक अंगरेज़ व्यापारी ने गाड़ी के पहिये को दूसरी ही ओर ठेल दिया।

*डैविड हेयर मिशनरी नहीं बल्कि एक नास्तिक था। किन्तु वह अपने विचार का पक्का था। अपने दृढ़ निश्चय की प्रेरणा से उसने सर्वस्व समेत स्वयं को बंगाल वासियों की नैतिक और शिक्षा सम्बन्धी उन्नति के लिए समर्पित कर दिया। राजा राम मोहन राय उस समय अपने देश वासियों की सामाजिक, बौद्धिक, और नैतिक उन्नति के लिए अकेले काम कर रहे थे। उनका और डैविड हेयर का एक ही उद्देश्य था, अतएव दोनों ने सहयोग कर के हिन्दू कालेज की स्थापना की। प्रतिष्ठित हिन्दुओं के लड़कों को अंगरेज़ी और भारतीय भाषाओं तथा योरप और एशिया के साहित्य और विज्ञान की शिक्षा देना इसका लक्ष्य घोषित किया गया।

परन्तु, इस कार्य्य से सनातन धर्म्मियों का क्रोध और अविश्वास ही बढ़ा। यह बात सन् १८१७ ई० में हुई।

एक वर्ष बाद केरी, मार्शमन, और वार्ड नामक तीन मिशनरियों ने कलकत्ते के निकट एक स्कूल की स्थापना की जो अब तक क़ायम है। सन् १८२० में एँग्लिकन चर्च ने एक

* डैविड हेयर का जीवन चरित्र, प्यारीचन्द्र मित्र, कलकत्ता १८७७
राजा राम मोहन राय का लार्ड ऐमहर्स्ट के नाम पत्र।

कालेज खोला। सन् १८३० में राम मोहन राय की सहायता से भारतवर्ष में पाश्चात्य विज्ञान के प्रचारार्थ चौथा कालेज खोला। बंगाल में उस समय देशी भाषाओं के अनेक स्कूल थे, लेकिन राजा राम मोहन राय स्वयं ब्रिटिश अधिकारियों का ध्यान अंगरेजी भाषा के माध्यम द्वारा पाश्चात्य विज्ञान की शिक्षा देने की ओर खींचा करते थे। वे प्राचीन पद्धति के विरोधी थे और उनका विश्वास था कि उनके मतानुसार कार्य होने से ही देश की उन्नति होगी।

ब्रिटिश अधिकारियों का दृष्टिकोण भारतीयों को भारतीय पद्धति पर ही शिक्षा देने के पक्ष में था। इधर उन पर ये प्रभाव डाले जा रहे थे, उधर सार्वजनिक शिक्षा समिति के सभापति की हैसियत से टामस बैबिंग्टन मकाले नामक एक महोदय पधारे। इस क्षेत्र में इनके पदार्पण करने से पाश्चात्य शिक्षा-वादियों का बल बढ़ा। लार्ड मैकाले ने आडम्बरता-पूर्वक मनुष्यता और मर्यादा के नाम पर भारतवर्ष में पाश्चात्य विज्ञान का प्रकाश फैलाने का अनुरोध किया।

उन्होंने बड़े जोश से कहा कि*—

"हमें कौन सा हक है कि हम उदात्त दर्शनशास्त्र और सही इतिहास का एक तरफ रख कर जनता का धन ऐसे चिकित्सा-शास्त्र पर व्यय करें जिसे पढ़ने को विलायत का एक नालबन्द भी अपनी जिल्लत समझे, ऐसे ज्योतिष शास्त्र पर कि जिस पर एक अंगरेजी स्कूल की लौंडिया को भी हंसी आवे एक ऐसे इतिहास पर कि जिसमें तीस तीस फुट लम्बे राजा भरे पड़े हैं और जो तीस तीस हजार वर्ष राज्य करते हैं—एक ऐसे भूगोल पर कि जिस में खीर और मक्खन के समुद्रों या

*मिनिट आन एजुकेशन। टी० बी० मैकाले २ फरवरी सन १८३५ई०

वर्णन है × × × ऐसी अवस्था में म ह अरबी और संस्कृत कालेजों पर जो कुछ व्यय करेंगे वह बिलकुल ज़ाया ही न जायगा बल्कि मिथ्या का प्रचारक होगा।

इन लार्ड मेकाले का उन नवीन विचार वाले हिन्दुओं ने बड़ा स्वागत किया जो इस समय अपने मत के कारण जाति की निन्दा के पात्र हो रहे थे। इस प्रकार मेकाले महोदय ने सार्व-जनिक धन के उपयोग की धारा को पाश्चात्य शिक्षा की ओर मोड़ दिया। प्रत्येक प्रान्त में शिक्षा विभाग खुलवा दिये गये और स्कूलों तथा कालेजों की स्थापना के लिये व्यक्तिगत उद्योग को प्रोत्साहित करने के उपाय किये जाने लगे।

यह सब एक निश्चित उद्योग की सिद्धि के लिये किया गया। वह था—जनता के हाथों में स्वास्थ्य समृद्धि और सामाजिक उन्नति की कुञ्जी देना, जिसमें वे देश के भांति भांति के उद्योगों और पैदावार को उन्नति दें। × × × और धीरे धीरे परन्तु निश्चित रूप से वे समस्त लाभ उठाने और सुखी जीवन व्यतीत करने के सारे अवसर उन्हें दे दें, जो स्वास्थ्य धन और व्यापार की वृद्धि से प्राप्त होते हैं।*

परन्तु यह न समझना चाहिये कि सरकार ने पूर्वी साहित्य अथवा देशी भाषाओं के अध्ययन को हतोत्साह किया। इसके विपरीत सब स्कूलों में देशी भाषाओं के ठीक ठीक पढ़ाये जाने का इसने बड़ा ध्यान रक्खा और उस दिन के आने की बाट ज़ोहा किया जब आधुनिक विज्ञान के विचारों को व्यक्त करने की शक्ति उनमें आ जाय इस बीच में सरकार ने अरबी और संस्कृत के माध्यम द्वारा शिक्षा न देकर अङ्गरेज़ी द्वारा ही शिक्षा देना निश्चित किया। इसके दो कारणों में से एक तो

*सर चार्ल्स वुड का खरीता

यह था कि इन भाषाओं में आवश्यक पुस्तकें विद्यमान नहीं थीं और दूसरा यह कि अङ्गरेजी अरबी और संस्कृत तीनों में से किसी एक को पढ़ना विशेष योग्यता के विद्यार्थियों को छोड़कर शेष सब के लिए प्राय एक सा कठिन था।

धीरे धीरे शिक्षालयों की संख्या बढ़ने लगी*। सन् १८५७ई० के बाद के तीस वर्षों के भीतर कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, लाहौर, और इलाहाबाद में विश्वविद्यालय खुल गये। लिखने पढ़ने के विषयों के अतिरिक्त अन्य व्यवहारिक विषयों में दक्षता प्राप्त करने की ओर भी विद्यार्थियों का ध्यान आकर्षित किया गया।

लेकिन तब, जैसी अब भी है, कठिनाई यह थी कि व्यापार, वैज्ञानिक कृषि, जंगलों के विभाग का काम, अध्यापन—इनमें से किसी विभाग में काम स्वीकार करना भारतीयों की उच्चाकांक्षा के विरुद्ध था। भारतीयों की धारणा ही में यह बात नहीं आती कि भारतवर्ष का कोई राष्ट्रीय अस्तित्व है। भारतीय नैतिक आचार में देश प्रेम की भावनाओं का प्राय कोई स्थान ही नहीं है। यों कि हम लोगों की दृष्टि में देश प्रेम का अभाव दूषित समझा जाता है लेकिन भारत के लिये हम इसके अभाव को एक साधारण घटना समझना चाहिये।

भारत के भाग्य और आवागमन सम्बन्धी विचारों का स्वाभाविक परिणाम यह है कि व व्यक्तित्व भाव का इस प्रकार उत्पन्न करती हैं कि जातीयता के भाव का विकास ही नहीं होने पाता। अब भारतीय शिक्षा-सम्बन्धी विकास के इतिहास की चर्चा छोड़ कर वर्तमान समय के अङ्कों पर दृष्टिपात कीजिए।

* देखो कलकत्ता यूनिवर्सिटी कमीशन रिपोर्ट भाग १ अध्याय ३ भाग २ अध्याय १८ और सन् १८५४ का शिक्षा सम्बन्धी खरीता।

सन् १९२३-४ ब्रिटिश भारत के १३ विश्व-विद्यालयों से १२,२२२ ग्रेजुएट निकले। इनमें से ७,८२२ ने कलाओं और विज्ञानों में, २०४६ ने क़ानून में, ४४६ ने औषधि-शास्त्र में, १४० ने इंजिनियरी में, ५४६ ने शिक्षा में, १३६ ने व्यापार में, और ८६ ने कृषि में दक्षता प्राप्त की।

उस समय विश्वविद्यालयों में ६८०३० *अंडर ग्रेजुएट भी शिक्षा पा रहे थे और ये भी प्रायः इसी प्रकार भिन्न भिन्न विषयों के अध्ययन में विभक्त थे। थोड़ा ध्यान देकर देखने से ज्ञात होगा कि अधिकतर विद्यार्थियों ने कला और क़ानून के विषय लिए और कृषि, स्वास्थ्य-विज्ञान, शस्त्रोपचार, प्रसूति-शास्त्र, पशु-उपचार-विज्ञान, और व्यापार जैसे महत्त्व-पूर्ण विषयों की उपेक्षा की, यद्यपि गवर्मेण्ट ही ने इन्हें भी प्रचलित किया था।

उदाहरण के लिए इलाहाबाद में प्रेसबिटेरियन चर्च मिशन द्वारा कृषि-विज्ञान के स्कूल में २०० छात्रों के लिए स्थान था और सन् १९२६ में उसमें केवल ५०% छात्र थे;

अधिकतर छात्र यह देख कर कि कृषि-विज्ञान का अध्ययन करने के लिए मिट्टी और खेतो का संसर्ग होगा, कहा करते हैं—हम कुली नहीं बनना चाहते।

डाइरेक्टर का कहना है कि यदि हम अपने ग्रेजुएटों को सरकारी नौकरी प्राप्त होने का पूरा आश्वासन दे दें तो अभी सारी जगहें भर जायँ।

मैंने भारतवर्ष में उद्योग-धन्धो आदि की शिक्षा देने वाला कोई ऐसा स्कूल नहीं देखा जिसमें बहुत अधिक भीड़ हो।

---

* स्टैटिस्टिकल ऐब्स्ट्रेक्ट फ़ार ब्रिटिश इण्डिया, १९१४-१५ से १९२३-२४ पृष्ठ २७९

श्रीमन दर्जे का भारतीय कला सम्बन्धी विषयों की उपाधि चाहता है, परन्तु ज्ञान के लिये नहीं, नौकरी के लिए। इसके लिए वह परिश्रम करेगा और अपनी तथा अपने परिवार वालों की उच्चाकांक्षा की परितृप्ति के लिए अपने दुर्बल शरीर को भी नष्ट कर डालेगा जिसे उसने और उसके पूर्वजों ने पहिले ही से अपने अनाचार द्वारा जर्जर कर डाला है।

पिछले परिच्छेदों में हम अनाचार के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा जा चुका है।

इसके परिणाम स्वरूप यह देखा जाता है कि विश्व-विद्यालय से पढ़ लिख कर निकलने के बाद ज्वलन्त भारतीय विद्यार्थी का मस्तिष्क अकस्मात ही शक्ति शून्य होने लगता है।

इसी बीच जब वह हाथ में उपाधि पत्र लेकर काँपता हुआ सारहीन स्वरूप में खड़ा होता है तब यदि उसके परिश्रम के पुरस्कार स्वरूप कोई सरकारी नौकरी नहीं मिली तब सम्पूर्ण परिवार के लोगों की निराशा का वारापार नहीं रहता और वे समझते हैं कि हमारी बड़ी हानि हुई और बहुत बड़ा अन्याय हमारे साथ किया गया।

उस समय उपाधिधारी युवक को दूसरा कोई मार्ग नहीं सूझ पड़ता। उसकी और साथ ही साथ भारतमाता की समझ में तब यह बात अच्छी तरह आ जाती है। जिस देश में सेवा के इतने अधिक सुअवसर हों, जो देश अपने युवकों के मस्तिष्क और हाथ से काम लेने के लिए अधीर है, उसकी पुकार को वे तिरस्कार और भय के भाव के कारण सुनने की परवाह नहीं करते।

* देखो मैसूर की जन संख्या गणना के निरीक्षक श्रीयुत [illegible] इन सेन्सस आफ इंडिया भाग १ पृ० १८२ "बुद्धि विकास के साधन मात्र के रूप में शिक्षा का सम्पादन करो।

सर गुरुदास वनर्जी का कहना है* !—वर्ण पद्धति ने उच्च वर्ण वालों को कृषि, उद्योग, विज्ञान और व्यापार सम्बन्धी पेशों से विरत कर दिया है।

आज कल के समय में अनेक ऐसे लोग भी विश्वविद्यालय की उपाधियां प्राप्त करते हैं जो उच्च वर्ण के नहीं हैं। लेकिन वे उच्च वर्ण वालों की प्रथाओं को ग्रहण करने के लिए उत्कण्ठित रहते हैं, क्योंकि शिक्षा का सब से मूल्यवान फल तो यही है कि उससे उनकी हैसियत बढ़े। किसी भी जाति के क्यों न हो, सरकारी नौकरी से निराश होने पर वे अपनी शक्तियों का प्रयोग इस तरह पर नहीं करते कि जिसमें उनकी सेवाएं उनके अभागे भाइयों को उपयोगी सिद्ध हो सकें।

इस प्रकार का कोई काम करना अपनी हैसियत के नीचे समझते हैं और बेहया हो जाते हैं।

एक युवक से मैंने ये शब्द सुने—मैं बी. ए पास कर चुका हूँ, परन्तु दो वर्ष हो गये मुझे अभी नौकरी नहीं मिली है। इस दशा में मेरे भाई मेरा व्यय चलाते हैं वे जितना वेतन पाने की आशा मैं कर सकता हूँ उसका एक तिहाई पाकर भी वे बी. ए पास न होने के कारण काम कर सकते हैं।

मज़े की बात यह कि ऐसा कहते हुए भी कहने वाले सज्जन को किसी प्रकार का संकोच नहीं मालूम हुआ। उपाधि प्राप्त करने का उद्योग भी प्रशंसा और उच्च पद प्रदान करने वाला समझा जाता है। प्रायः लोग अपने नाम के आगे बी. ए फ़ेल(1) लिखते हैं और फिर किसी को कोई

*कलकत्ता यूनिवर्सिटी कमीशन रिपोर्ट भाग ३,१०-१६१

(1) ये शब्द एफ. ए अथवा बी. ए. डी. आदि पदवियों को तरह

कौतूहल नहीं होता।

सरकारी नौकरी न मिलने पर विश्वविद्यालय के एक ग्रेजुएट ने एक अमरीकन संस्था के पास सहायतार्थ अर्जी भेजी थी। अमरीकन ने स्पष्ट उत्तर दिया—

जहां आप की कोई आवश्यकता नहीं वहीं आप लोग क्यों टूटे पड़ते हैं और बाद को अपमानित होते हैं। यह कैसे सम्भव हो सकता है कि आप सब के सब सरकारी क्लर्क हो जायें। भला आप लोग अपने गावों में जाकर वहां शिक्षा, कृषि, आदि का कार्य्य क्यों नहीं करते ग्राम-वासियों की स्वस्थता के उपाय क्यों नहीं करते? वहां कुछ काम करते हुए क्या आप अपनी जीविका का प्रबन्ध नहीं कर सकते?

युवक ने उत्तर दिया—'आप का कहना यथार्थ है परन्तु यह सब करना हमारी हैसियत के नीचे है। मैं बी० ए० हूं। अतएव यदि आप मेरी सहायता नहीं करेंगे तो मैं आत्म हत्या कर लूंगा।' और मुझे मालूम है, उसने ऐसा ही किया।

१० वर्ष से ऊपर हुआ। सरकारी व्यय से शिक्षा प्राप्त भारतीयों की प्रवृत्ति में यही बात लार्ड मेकाले ने भी देखी थी। संस्कृत कालेज के कुछ पासशुदा विद्यार्थियों ने उनकी समिति के सामने जो प्रार्थना पत्र दिया था उसके सम्बन्ध में उनका कहना है*।

'अर्जी देने वालों ने अपनी अर्जी में यह लिखा कि हमने

वास्तव में प्रयुक्त किये गये हैं, जैसे, यह स्कूल इस समय एक बी० ए० अनुत्तीर्ण अध्यापक की अधीनता में है निम्नश्रेणियों की उन्नति के लिए स्थापित समाज की १५ वीं वार्षिक रिपोर्ट, बंगाल, आसाम कलकत्ता, १९२५ ६१२

* मिनिट आन एजूकेशन २ फरवरी, १८३५

दस बारह वर्ष हिन्दू साहित्य और विज्ञान का अध्ययन किया और इन विषयों में पास हो जाने का प्रमाण पत्र प्राप्त किया। परन्तु यह सब किस काम का........हमें अपनी स्थिति के सुधरने की कोई आशा नहीं है। हमारे ही भाई हमें उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं और उनसे हमें किसी प्रकार की सहायता या प्रोत्साहन की आशा नहीं है। इसलिये हम आप से प्रार्थना करते हैं कि हमारी सिफ़ारिश करके हमें ऐसी नौकरियां दिलवा दीजिए जो बहुत अधिक महत्त्व-पूर्ण अथवा बहुत बड़ी तनख्वाहों की भले ही न हो, किन्तु, साधारण जीवन-निर्वाह के लिए तो काफी हो। सरकार ने हमें शिक्षा दी है और बाल्यकाल ही से हमारा पोषण किया है। अब सरकार के सिवाय हमारा दूसरा कोई सहायक नहीं है। इसलिए, हमें उचित जीविका और उन्नति के साधन प्राप्त होने चाहिए। हमें आशा है कि जिस सरकार ने हमारे शिक्षा-काल में हमारे प्रति इतनी उदारता दिखाई है वह इस समय हमें निस्सहाय न छोड़ देगी।'

यह प्रार्थना-पत्र क्या है मानो सरकार से इस बात की शिकायत है कि उसने इन्हें इतनी ऊंची शिक्षा देने की मुसीबत में क्यों फँसाया इस पर मेकाले महोदय इस प्रकार टीका टिप्पणी करते हैं:—

इसमें सन्देह नहीं कि इनका कहना सही है, क्योंकि इन लोगों को शिक्षा देकर जितना व्यय किया गया, वह तो कम से कम बचाया जा सकता था, क्योंकि जब इनकी सारी शिक्षा का यही परिणाम निकला कि ये देश को भार स्वरूप सिद्ध हों तो यह स्पष्ट है कि इन पर जितना व्यय किया गया वह आवश्यकता से अधिक था

सौ वर्ष पहले के संस्कृत के पंडित हों अथवा आज कल के पास या फेल बी० ए० दोनों के लिए वही बात कही जा सकती है। हां, इतना अन्तर अवश्य है कि जहां पहले केवल शिकायत थी अब उसमें जहरीलापन भी है।

हिन्दोस्तान के कुल विश्वविद्यालयों से जितने लड़के प्रति वर्ष पास हो कर निकलते हैं उन सब को नौकरी न दे सकने के कारण सरकार पर राजनीतिज्ञों और शिक्षित जनता दोनों के खूब हमले हो रहे हैं।

हिन्दोस्तान के भद्र लोग जिनमें ऊंचे से ऊंचे राजनीतिज्ञ नेता भी शामिल हैं बड़े जोर और गहरे नफरत के साथ यही इलज़ाम सरकार पर लगाते हैं।

उनका कहना है कि सरकार विश्वविद्यालयों का खर्चा बरदाश्त करती है और वही उनके रखनेकी की जिम्मेवार है फिर इसके मानी क्या कि वह फीस तो हमसे ले लेती है और वही चीज हमको नहीं देती जिसके लिये हम शिक्षा प्राप्त करते हैं। इस गवर्मेण्ट का सत्यानाश हो। आओ हम सब मिल कर इस गवर्नमेण्ट को निकाल दें और इसके निकलने से जो जगहें खाली हों उन्हें अपने लिये या अपने दोस्तों के लिये रखल।

अगर अमरिका की येल या हार्वर्ड या लीलेंड स्टैंडफोर्ड युनिवर्सिटियों की चमकते हुये चमड़े पर छपी हुई सनदों को वहां के विद्यार्थी हुंडी की तरह ले जाकर सरकारी खजाने में पेश करें और यदि खजाने वाले उनको न भुनावें तो वे इस पर हर किस्म के काम करने से इनकार करके गवर्नमेण्ट के विरुद्ध आन्दोलन करने को ही अपना पेशा बनाले—तो इन

पर अमेरिका की तमाम जनता इस ज़ोर कह क़हा लगावे कि सारा वायुमंडल गूंज उठे । हिन्दोस्तान की जनता में अभी यह भाव उत्पन्न ही नहीं हुआ ।

—:o:—

चौदहवां परिच्छेद

अमरीका और इंगलैंड दोनों की नेक नीयती

सन् १९१८-२० के बीच में अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा के लिये भारत वर्ष के सात मुख्य प्रान्तों में कानून बन गये थे। इसका कारण यह था कि कुछ भारतवासियों की यह राय थी कि भावी प्रतिनिधि शासन प्रणाली की सफलता के लिये निर्वाचकों का शिक्षित होना आवश्यक है।

लेकिन अभी तक इन कानूनों पर आम तौर से अमल नहीं हो रहा है, इसका एक कारण शायद यह भी है कि जिस समय यह कानून पास हुए उसी समय शासन सुधारों का भी सूत्रपात हो गया। इन सुधारों के फलस्वरूप सरकार ने शासन के कुछ विभाग भारतवासियों के हाथों में सौंप दिये। विशेष कर शिक्षा का कार्य भारतीय मन्त्रियों के हाथों में आ गया और ये मन्त्री नई व्यवस्थापिका सभाओं के सामने उत्तर दायी ठहराए गए। शिक्षा को अनिवार्य करने के लिये व्यय की आवश्यकता थी, व्यय के लिये कर बढ़ाना जरूरी था। साथ ही माता पिता को भी उनकी इच्छा के विरुद्ध विवश करना था कि वे अपने बच्चों को स्कूल भेजें। इस तरह के लोकमत विरुद्ध कार्य पहले सरकार करती थी। अब यह जिम्मेदारी सरकार के ऊपर से हट कर भारतीय मन्त्रियों के ऊपर आ गई। भारतीय मन्त्री और भारतीय म्युनिसिपल

बोर्ड अब तक जिन कार्यों के लिये सरकार की आलोचना किया करते थे उन कार्यों के भार को स्वयं उठाने के अब वे अयोग्य साबित हुए। कोई भी निर्वाचित पदाधिकारी इस बात के लिये तय्यार न हुआ कि अनिवार्य शिक्षा के लिये व्यय का प्रबन्ध करे और माता पिता के साथ इस विषय में ज़बरदस्ती कर के उन के क्रोध का पात्र बने।

उदाहरण के लिये बंगाल की व्यवस्थापिका सभा ने मई सन् १९१९ में अनिवार्य शिक्षा का क़ानून पास किया लेकिन अभी तक प्रान्त के किसी हिस्से में भी इस पर अमल नहीं हुआ। बड़ोदा के नायब दीवान मि० गोविन्द भाई एच० देसाई ने अपनी हाल की एक रिपोर्ट में लिखा है कि यद्यपि बड़ोदा में बीस साल से अनिवार्य शिक्षा है तथापि वहां प्रति सैकड़ा उतने भी शिक्षित नहीं हैं जितने पास के अंगरेज़ी ज़िलों में जहां शिक्षा पहले प्रारम्भ हुई थी किन्तु जहां अनिवार्य शिक्षा अभी तक नहीं है।

एक बात और भी है। शिक्षा को अनिवार्य्य करने के लिये उसे मुफ़्त कर देना ज़रूरी है। इस पर स्कूलों के लिए मकान बनवाने और देश भर के समस्त बालकों के लिए अध्यापकों की यथेष्ट संख्या नियुक्त करने के लिए प्रचुर धन की आवश्यकता है। और यह धन बिना नया कर लगाए नहीं आ सकता।

पंजाब की व्यवस्थापिका सभा के हिन्दू सदस्यों ने यह चाहा था कि अनिवार्य्य-शिक्षा के क़ानून में थोड़ा सा संशोधन करा लें अर्थात् यह कि अछूत बालकों को इसके प्रभाव से अलग करा लें। उनका विचार था कि ऐसा कराने से हमारी कुछ कठिनाई हल हो जायगी। यह विचार अधि-

काश प्रतिष्ठित सज्जनों की मनोवृत्ति के अनुकूल था, परन्तु इस सम्बन्ध में ब्रिटिश अधिकारियों की सहानुभूति उन्हें प्राप्त न हो सकी क्योंकि अङ्गरेज किसी भी श्रेणी को शिक्षा के सम्बन्ध में एकाधिपत्य देने को तैयार नहीं हैं।

गवर्मेण्ट की ओर से यह हुआ लेकिन, भारतीयों का सब से बड़ा अस्त्र है काम न करने देना। पंजाब के दो शहरों में जिस ढंग से काम हुआ उसका हाल सुनिए (२) —

'जब से मुलतान में अनिवार्य्य शिक्षा का कानून जारी किया गया है तब से विद्यार्थियों की संख्या में वृद्धि हुई है, यह संख्या २७ प्रति सैकड़े से अब ७४ प्रति सैकड़ा हो गई है। लाहोर में यह संख्या ५० फी सदी से बढ़कर ६२ फी सदी होगई है। लेकिन न तो अछूत लड़कों की शिक्षा के लिए इन स्थानों में प्रबन्ध किया गया और न किसी भी दोषी पिता माता के विरुद्ध जो अपने लड़के को स्कूल न भेजता हो, कोई कार्य्यवाही की गई। इस दशा में यह आशा करना व्यर्थ है कि निकट भविष्य में विद्यार्थियों की अधिक वृद्धि हो सकेगी।'

सरकारी रिपोर्ट के अनुसार सम्पूर्ण ब्रिटिश भारत में लड़कों लड़कियों के लिए कुल १,६८,०१३ स्कूल हैं। इनमें लगभग ७०,००,००० विद्यार्थी पढ़ते हैं। परन्तु प्राइमरी स्कूल में जाने लायक उमर के लड़कों की संख्या ३ करोड़ ६५ लाख है, जिनमें से ६० प्रति १० सैकड़ा इस तरह के देहातों में छिटके हुए हैं जिनमें प्रति समूह पीछे ४० बच्चे स्कूल में उपस्थित होते हैं। कठिनाइयों से भरे हुए अन्य देशों में बेढंगे लोगों को पढ़ाने में जो कठिनाइयां होती हैं वे सब इनकी

२ भारत में शिक्षा की प्रगति आठवीं पंचवर्षीय रिपोर्ट। जिल्द पहला पृष्ठ १०८।

शिक्षा के प्रयत्न में सामने आते हैं। सुविधाओं का सर्वथा अभाव है। और अनेक कठिनाइयां ऐसी हैं जो हिन्दोस्तान से बाहर नहीं मिलती।

हम अमरीकनों ने फ़िलिपाइन्स के लोगों को शिक्षित करने के लिए जो प्रयत्न किये हैं उस पर हमें गर्व है और प्रायः वहां का उदाहरण भारत में आदर के साथ दिया जाता है। इसलिये यहां दोनों की तुलना करना मनोरञ्जक होगा।

फ़िलिपाइन्स द्वीप-निवासी ८७ प्रकार की भाषा बोलते हैं। उनमें ऐसी कोई भाषा नहीं है जो सब समझते हों। किन्तु भारतवर्ष की दशा और भी विचित्र है। यहां के लोग २२२ प्रकार की भाषाएं बोलते हैं और कोई भी एक भाषा ऐसी नहीं है जिसे सब लोग काम में ला सकें इसके शिक्षा में बड़ी कठिनाई होती है।

फ़िलिपाइन्स में अमरीकन लिपि का व्यवहार होता है। और कोई पृथक लिपि देश वासियों की नहीं है। इधर हिन्दोस्तान में २० लिपियों का प्रचार है और उनमें हर एक में २०० से लेकर ५०० तक अक्षर हैं। और इन लिपियों में इतना अन्तर है कि उस के कारण भाषाओं अथवा बोलियों को समझने में बड़ी कठिनाई होती है।

फ़िलिपाइन्स की तरह हिन्दोस्तान में भी ऐसे रोचक सामयिक साहित्य का अभाव है जिसे जन-समूह पसन्द करे और दोनों देशों में बहुत सी ऐसी बोलियां हैं जिनमें कोई साहित्य है ही नहीं। इस दशा में फिलिपाइन्स और हिन्दुस्थान में जो कुछ शिक्षा स्कूल में दी जाती है उसका घर में कोई उपयोग नहीं होता जिससे अधिकांश शिक्षा

पर व्यय और परिश्रम तो व्यर्थ सा हो जाता है। फिलिपाइन्स में कोई जाति-भेद नहीं है यदि कुछ है तो केवल गरीब और अमीर का, इसके विपरीत हिन्दोस्तान में लगभग ३,०००[1] जातियां हैं जिनके कारण हिन्दुओं में पारस्परिक वैर विरोध मचा रहता है और समूची भारतीय जन संख्या का ¾ हिन्दू ही हैं।

फिलिपाइन्स में देशी अध्यापकों की योग्यता के सम्बन्ध में कुछ भी कहा जावे विशेष कर 'अङ्गरेजी पढ़ाने वाले देशी अध्यापकों की' परन्तु शिक्षण कार्य में दक्ष होने पर वे स्त्री और पुरुष सभी छोटे छोटे दूर के गाँवों में दो या तीन वर्ष तो काम करते ही हैं। यह बात भारतवर्ष में नहीं है। यहां तो कोई शिक्षित व्यक्ति गावों में नौकरी करना नहीं चाहता। इस कारण गाँवों के लिए अध्यापक नहीं मिलते।

फिलिपाइन्स के रहने वाले शिक्षा के बड़े प्रेमी हैं। वे कष्ट सहकर भी शिक्षा प्राप्त करने के लिए तयार रहते हैं। वे प्राय अपने स्थानों में स्कूल खोलने के लिए उदारता-पूर्वक दान भी देते हैं। भारत वर्ष की परिस्थिति ठीक इसके विपरीत है। लड़कों की शिक्षा के प्रतिलोग उदासीन हैं और लड़कियों की शिक्षा के प्रति तो अधिकांश भारतीय विरोध-भाव रखते हैं। शिक्षा पर व्यय करने के लिए जन समूह तथा उच्च वर्ग के लोग दोनों में से कोई तय्यार नहीं होता।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि शिक्षा सम्बन्धी नीति निर्धारित करने में भारतवर्ष में ब्रिटिश सरकार ने गहरी गलतियां की हैं। ये गलतियां क्या हैं, यदि इसे जानना हो तो फिलि

[1] आक्सफर्ड हिस्ट्री आफ इण्डिया पृष्ठ ३७

पाइन द्वीप में शिक्षा पर मनरो सरवे बोर्ड की रिपोर्ट पढ़िए। जो नीतियां ब्रिटिश गलतियों के नाम से प्रसिद्ध हैं वे वही हैं जिनका अवलम्बन हम अमरीकनों ने अपनी फ़िलिपाइन प्रजा को सुशिक्षित करने के लिए किया था। यदि किसी-कार्य्य का अपेक्षित फल न हुआ तो समालोचना करना तो बहुत सरल काम है। किन्तु एक ही तरह की बातों से भिन्न भिन्न नतीजे निकाले जा सकते हैं।

सन् १८५८ ई० में महारानी विक्टोरिया ने भारत वर्ष का शासन अपनी अधीनता में लेते हुए घोषणा की थी,—'जहां तक सम्भव हो हमारी समस्त जातियों और धर्मों की प्रजा को योग्यतानुसार नौकरियां दी जावे इस विषय में कोई पक्षपात न किया जावे।'

इसी प्रकार अमरीका के प्रेसिडेन्ट मैक-फिनले ने फ़िलि-पाइन्स के प्रथम कमिशन अध्यक्ष माननीय विलियम. एच. टैफ्ट को हिदायत की थी[२] कि

'फ़िलिपाइन्स द्वीप-वासी अपने स्थानीय मामलों का प्रबन्ध करने के लिए योग्यता के अनुसार पूरा अवसर पाएंगे। अबतक के अधिकारों का उन्होंने जिस प्रकार उपयोग किया है और अपनी क्षमता का जैसा परिचय दिया है उसी के अनुसार तथा क़ानून, शान्ति और राज-भक्ति की रक्षा का ध्यान रखते हुए, उन्हें उक्त अवसर प्रदान किये जायेंगे।'

दोनों जगहों के लोगों पर इन घोषणाओं का समान प्रभाव पड़ा। नौकरी चाहने वाले अल्प-संख्यक शिक्षित जन-समुदाय-ने उसी तरह की शिक्षा प्राप्त करना चाहा, जिससे उन्हें नौकरियां मिल सके।

---

२ युद्ध सचिव का पत्र, वाशिंगटन, ७ अप्रेल १९००

किन्तु ब्रिटेन की इच्छा यह थी कि भारतीय ढंग पर-भारतीय शिक्षा का विकाश हो। लेकिन भारतीयों ही का रूख देखकर उसने अपनी उस पहली नीति को त्याग दिया, क्योंकि उसका विश्वास था कि जो लोग पहले से ही सुशिक्षित हैं उन्हें आगे बढाने से धीरे धीरे उनकी सहानभूति के द्वारा जनता को भी शिक्षा का लाभ प्राप्त हुए बिना न रहेगा। किन्तु इंगलिस्तान को उच्च श्रेणी के हिन्दोस्तानियों की स्वाथ परायणता का पता न था अंगरजो की यह आशा झूठी साबित हुई, इसी लिये उन्हें अपनी नीति बदलनी पडी।

उधर अमरीका ने फिलिपाइन के युवकों को प्रेसिडेंट फिनले की इच्छानुसार कार्य्यों को सँभालने के लिए शिक्षित करना शुरू कर दिया। साथ ही हम लागोंने इन युवक एशियाइयों को अपना साहित्य और इतिहास पढाना भी प्रारम्भ कर दिया और इनको लाभ कराने की धुन में यह ध्यान नहीं रक्खा कि इससे उनके दिमागों में कितनी गडबडी होगी।

फिलिपाइन के लोग जो अपनी चलती हुई जबानों से स्वतन्त्रता के अनेक नए शब्दों का उचारण सीख गए थे किन्तु जो उन शब्दों के पूरे अर्थ को समझने के नाकाबिल थे नए विचारों के नशे में यह भूल गए कि इंगलिस्तान की पार्लिमेण्ट के प्रारम्भिक मूल रूप 'विटना जमाट' के समय से लेकर अमीरीका की स्वतन्त्रता के समय तक एक स्वतन्त्र राष्ट्र के निर्माण करने में एंगलो सैक्सन कौम के लोगों को पूरे एक हजार वर्ष कठिन परिश्रम करना पडा था। इसके विरुद्ध अमरीका के नए शागिर्दों फिलिपाइन वालो ने एक दिन के अन्दर छलाँग मार कर स्वतन्त्र राष्ट्र बनाना चाहा और अमरीका से कहा 'हमें या तो स्वतंत्र करदो या मार डालो।'

इस पर अमरीका के प्रेसिडेण्ट विल्सन ने जवाब दिया, 'स्वराज्य ऐसी चीज़ नहीं है जो किसी क़ौम को दी जा सके, किसी जाति को कोई दूसरा वह आत्मसंयम प्रदान नहीं कर सकता जो केवल प्रौढ़ होने पर ही प्राप्त होता है।'

परन्तु, जिन लोगों के मस्तिष्क में जातीय अनुभवों का अभाव था उनकी समझ में ये बातें कैसे आतीं? शब्द तो जातियों के जीवन इतिहास से बनते हैं।

जिस तरह फिलिपाइन वासियों का पिछला कोई इतिहास नहीं है, प्रायः वैसा ही हिन्दुओं का भी समझिए। क्योंकि आधुनिक हिन्दू के लिए प्राचीन हिन्दुओं का रचनात्मक ऐतिहासिक युग वैसा ही है जैसा प्राचीन यूनानी विद्वान पेरिक्लीज़ का समय आज कल के यूनानी के लिए है अर्थात् दोनों में कोई सम्बन्ध नहीं है। अतएव प्रजा तंत्र शासन प्रणाली के भावों को समझ सकना फ़िलिपाइन निवासियों और भारतवासियों दोनों के लिये एक समान असम्भव है।

फ़िलिपाइन्स टापू और भारतवर्ष दोनों जगह के स्कूलों और विश्वविद्यालयों में पाश्चात्य राज नैतिक और सामाजिक इतिहास के शब्द के एशियाई मस्तिष्कों में भरे जाते हैं। इन लोगों ने शब्दों को तो कंठ कर लिया है, परन्तु अपनी विभिन्न परम्परा की सहायता से उनके विचित्र अर्थ लगा लिये हैं। दोनों दशाओं में इसका परिणाम भी एक सा हुआ है। मि० गांधी ने मुझसे कहा था कि—'हमें जो शिक्षा मिली है उससे, हम या तो क्लर्क बने या व्याख्यान दाता।'

लेकिन गांधी जी की राय थोड़ी और सुनिये। वह अपनी पुस्तक "इण्डियन होमरूल" में लिखते हैं कि :—

शिक्षा का साधारण अर्थ अक्षर-ज्ञान है। लड़कों को

पढाना, लिखाना और हिसाब सिखा देना प्रारम्भिक शिक्षा कहलाती है। किसान ईमानदारी के साथ अपनी रोटी कमाता है। उसे ससार का साधारण ज्ञान है। वह माता पिता, स्त्री, बच्चों, और अपने ग्राम बन्धुओं के साथ व्यवहार करना जानता है वह नीति और सदाचार के नियमों को समझना और उनका पालन करना जानता है लेकिन वह अपना नाम नहीं लिख सकता। अक्षरज्ञान कराके अब आप उससे क्या कराना चाहते हैं। क्या उसके सुख में आप कुछ वृद्धि कर सकेंगे!

"इससे यह स्पष्ट है कि इस शिक्षा को अनिवार्य्य करने की कोई आवश्यकता नहीं। हमारी प्राचीन पाठशाला पद्धति ही यथेष्ट है। हम तुम्हारे (आधुनिक) स्कूलों का व्यय समझते हैं।"

इस पर स्वराजिस्ट नेता लाला लाजपतराय की व्यङ्ग पूर्ण टीका टिप्पणी* इस प्रकार है।

'भारतवर्ष में कुछ ऐसे भले आदमी हैं जो कहा करते हैं कि यह देश औरों से अलग, शान्त, और एकान्त जीवन व्यतीत करता रहे, इसी में कल्याण है। वे प्राचीन काल के लिए आह भरते हैं और चाहते हैं कि वे दिन फिर आ जाय। वे निबल भावुकता से भरी हुई कविताएँ और गीत लिखते हैं, वा इस तरह के बेहूदा विचारों से भरी हुई किताबें बेचते हैं। मेरी समझ में यह नहीं आता कि वे मूर्ख हैं या देश द्रोही। ऐसे लोगों से तथा इस प्रकार के साहित्य से सावधान रहने के लिए मैं अपने देशवासियों को सचेत किये देता हूँ

* प्राब्लम आफ नैशनल एजुकेशन इन इण्डिया जोर्ज एलेन और अनविन, लन्दन, १९२० पृष्ठ ७१—८०

विचार और जीवन में अन्य आधुनिक देशों के समान ही इस देश को भी उन्नत बनाना आवश्यक है।'

लेकिन ब्रिटिश भारत के २२,२०,००,००० ग्रामवासियों की साक्षरता के लिए जो इस देश में ६२ प्रति शत की संख्या में रहते हैं, भगीरथ प्रयत्न करने का उत्तर दायित्व कौन लेने को तय्यार है? जिस भारतीय निर्वाचक संघ पर उत्तर दायित्व-पूर्ण शासन पद्धति अवलम्बित होगी उसकी रचना का श्री गणेश कौन करेगा?

कुछ समय हुआ एक अमरीकन मिशन समिति ने, ज़िसे अमरीका से काफ़ी आर्थिक सहायता मिली थी और जो भारतवर्ष में कुछ कार्य करना चाहती थी, कुछ ऐसे भारतीय सज्जनों की एक सभा की, जो नागरिकता के विचारों में प्रौढ़ थे, और भविष्य के कार्य के सम्बन्ध में उनकी सम्मति माँगी। भारतीय सज्जनों ने आपस में राय कर के कहा कि समस्त उच्च- शिक्षा (जो नगर का कार्य्य है) और धन के ऊपर सम्पूर्ण अधिकार हमें दे दी जाए।

मिशन समिति वालों ने पूछा 'तो क्या आप लोगों की राय है कि हम अमरीकनों की यहाँ कोई आवश्यकता नहीं है?'

भारतीय सज्जनों ने कहा, 'बिलकुल नहीं, आप लोग गांवों की देख भाल करिए।'

जब मैंने अपने इस सम्बन्ध के संयोगों को एक तीस वर्ष के अनुभवी सिविल सर्विस के अंगरेज़ सदस्य से कहा तो उसने उत्तर दिया,—'आप को यह बात सन्देह-पूर्ण जान पड़ती है, परन्तु, यहां के कार्य में अपना जीवन बिता देने के बाद हम लोग जानते हैं कि इसका उत्तर क्या है। हमें बस, जितनी तेज़ी के साथ हो सके अधिकाधिक शिक्षा देते चले

चलना चाहिए। जब शिक्षा का खूब विस्तार हो जायगा तब आप ही उसे प्राप्त करने वालों को केवल चरित्र और योग्यता के कारण महत्व दिया जाने लगेगा, और आज कल जो लोग बिना चरित्र और योग्यता के केवल अपनी शिक्षा के बल अधिकार मांगते हैं उनके मुँह बन्द होजायँगे।'

पन्द्रहवां परिच्छेद

हमें ज्ञान के प्रकाश से वञ्चित क्यों रखा जाता है

भारत की निरक्षरता का कारण कभी कभी उसकी निर्धनता बतलाया जाता है। परन्तु, यह वैसे ही है जैसे यह कि पहले मुर्गी पैदा हुई या अंडा। लेकिन भारतीय राजनैनिक आलोचकों का कहना है कि इस देश की निरक्षरता का कारण न केवल शासकों की अयोग्यता है, बल्कि इस निरक्षरता को बनाये रखने में शासकों का विशेष हाथ है। स्वराज्य दल के नेता लाला लाजपतराय कहते हैं कि वाइसराय की सरकार ने जनता[1] को प्रारम्भिक शिक्षा तक नहीं दी। और श्रीयुत मुहम्मद अली, जिन्ना दोषारोपण के ढंग से पूछते हैं, 'हमें ज्ञान के प्रकाश से वंचित क्यों रखा जाता है?' परन्तु उक्त दोनों नेताओं की बात को मानने के पहले जनता के अज्ञानान्धकार का कारण ब्रिटिश लोभ-परायणता अथवा जनसमूह की दरिद्रता दोनों में से कोई है या नहीं उन दोनों बातों को

---

१ प्राब्लेम आफ़ नैशनल एजुकेशन इन इंडिया १०६७ सन् १९२३-२४ में म्यूनिसिपैलिटी प्रान्तीय और भारत सरकार आदि का सम्पूर्ण शिक्षा सम्बन्धी व्यय १९,९०,००,००० रुपया था कार्य को देखते हुए यह बहुत थोड़ा है। फिर भी भारत के सम्पूर्ण कर के हिसाब से अन्य देशों के शिक्षा व्यय का खयाल करते हुए यह कम नहीं है देखो 'इण्डिया सन १९२४-२५ पृ० २७८ और "स्टैटिस्टिकल एब्स्ट्रैक्ट फ़ार ब्रिटिश इंडिया" पृ०२६२

स्मरण रखिए जो ऊपर कही जा चुकी है और अब एक तीसरी बात सुनिए।

सब से पहिली बात यह है कि ब्रिटिश भारत की २४,७०,००,००० जन संख्या में से लगभग ५० प्रतिशत स्त्रिया हैं। यह दिखाया जा चुका है कि भारतवासी स्त्री शिक्षा के सदा से कितने विरोधी रहे हैं, और शिक्षा जो दो प्रतिशत से भी कम स्त्रियों को दी जा सकी है वह सरकार, थोडे से उत्साही भारतीयों और ईसाई मिशनों के सहयोग से दी गई है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भारतवर्ष में १२,१०,००,००० अशिक्षित स्त्रिया हैं।

दूसरी बात यह है कि ब्रिटिश भारत म सन् १९२१ की मर्दुमशुमारी के अनुसार ६ करोड अछूत हैं। इन लोगों के पढने का विरोध हिन्दुओं ने सदैव किया है और अब भी जोरों के साथ करते हैं। इस संख्या का आधा निकाल दीजिए, क्योंकि स्त्रियों की चर्चा पहले कर दी गयी है, और यह भी मान लीजिये कि ५ प्रतिशत अछूत पुरुष शिक्षित हैं, तो प्राय २,८५,००,००० अछूत पुरुष ऐसे निकलते हैं जो बहुसख्यक जनता के प्रकट विरोध के कारण सदैव अशिक्षित रहेंगे।

यह तो स्पष्ट है कि स्त्री,शिक्षा और अछूतोद्धार से निर्धनता का कोई सम्बन्ध नहीं है। रहा सरकार का प्रयत्न सो उसने सदा से स्त्रियों और अछूतों को पढाने का ध्यान रक्खा है और यथाशक्ति विरोधियों की परवाह नहीं की है। नीचे के अङ्कों से यह बात स्पष्ट हो जायगी

भारत के अशिक्षित

स्त्री समुदाय	१२,१०,००,०००

अशिक्षित अछूत पुरुष	२,८५,००,०००
	३४,६५,००,०००
ब्रिटिश भारत की सम्पूर्ण जन-संख्या	२४,७०,००,०००
हिन्दुओं की कट्टरता के कारण अशिक्षित रहने वाला जन समुदाय	६०.३ प्रति शत

इन दोनों बातों के अतिरिक्त एक महत्वपूर्ण कारण और है. भारत वर्ष का ९० प्रति शत जन समुदाय गांवों में रहता है। जब तक गांवों में शिक्षा का प्रचार नहीं होता भारतवर्ष में शिक्षितों की संख्या नहीं बढ़ेगी और वह इस विषय में संसार में सब से पिछड़ा रहेगा।

लेकिन ५,००,००० छोटे छोटे गांवों में १०,९४,३०० वर्ग मीलों के क्षेत्रफल पर छिटके हुए सम्पूर्ण मानव जाति के आठवें भाग को प्रारम्भिक शिक्षा देने के लिए अध्यापकों की एक पूरी सेना ही चाहिए। अब इस सेना में भरती होने के लिए रंगरूट कहां से आवें? पढ़ाने के लिये देशी स्त्रियां मिल नहीं सकतीं, क्योंकि वर्त्तमान भारत में उनका अस्तित्व ही असम्भव है। यदि पढ़ाने के कार्य में स्त्रियां और लड़कियों की सहायता हमें न मिले तो सोचिए कि समस्त अमरीका के गावों के बच्चों को शिक्षा देने के कार्य्य पर कितना बुरा प्रभाव पड़े।

किसी पाश्चात्य देश ने ऐसी कमर तोड़ परिस्थिति में अपने जन-समूह को शिक्षा देने के कार्य का प्रयत्न नहीं किया है। संसार का सब से धनी देश भी इसके विचार मात्र से घबड़ा जायगा। रही यह बात कि भारतवर्ष में स्त्रियां बच्चों को क्यों नहीं पढ़ा सकतीं सो थोड़े से शब्दों में पुनः कही जा सकती है। यदि विशेष रक्षा का प्रबन्ध न हो तो भारतीय स्त्रियां

भारतीय पुरुषों के निकट जा कर सुरक्षित नहीं रह सकती।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि यदि कल स्वराज्य दे दिया जाय और जनता की निर्धनता मिट जाय तो जब तक अछूतों और स्त्रियों के सम्बन्ध में उनके विचार नहीं बदलते तब तक भारत वर्ष अशिक्षित देशों की अगली श्रेणी में ही रहेगा।

ग्राम पाठशालाओं में पढ़ाने के लिए स्त्रियों के न मिल सकने के सम्बन्ध में मैंने जो लिखा है, उसे संयुक्त प्रान्त, पंजाब, बंगाल, बम्बई, मद्रास आदि प्रान्तों में हिन्दू और मुसलमान पदाधिकारियों, ईसाई पादरियों और शिक्षकों तथा शिक्षा, डाक्टरी, और पुलीस विभागों के उत्तर दायित्व पूर्ण शासकों की बातों के ही आधार पर लिखा है। जहाँ तक मुझे मालूम है, ये बातें सरकारी कागज़ों में कहीं नहीं हैं और न इन के सम्बन्ध में व्यवस्थापिका सभाओं में ही कभी कोई चर्चा की गई है। ये बातें ऐसी हैं जिन्हें भारतवासी स्वाभाविक सा मानते हैं। और ब्रिटिश शासकों ने भी इन विषयों में बिलकुल मौन धारण किये रहने का ही विचार कर रक्खा है। साथ ही प्रकट रूप से विरोध जनक बातें न कर के वे कुप्रथाओं की जड़ें काटने का प्रयत्न कर रहे हैं।

एक ऊँची स्थिति के, राष्ट्रवादी, आजीवन समाज सुधारक भारतीय सज्जन ने मुझ से कहा,—'मैं आप से इस सम्बन्ध में चर्चा करना नहीं चाहता था। हम हिन्दोस्तानी इस विषय में विशेष ध्यान नहीं देते। स्त्रियों के प्रति हमारी जैसी धारणा है उसके कारण युवती और सदाचारिणी स्त्री अपने परिवार को छोड़ कर कहीं नहीं जा सकती। जिन स्त्रियों ने जो प्रायः ईसाई हैं गाँवों में पढ़ाने के लिए जाने का साहस किया है उनके सामने बड़ी कठिनाइयाँ आयी हैं, उन्हें प्रायः उच्च

पदाधिकारी पुरुषों की पापमय इच्छाओं का सामना करना पड़ा है और उनकी सफलता तथा असफलता और उनकी रोज़ी बहुधा इसी बात पर अवलम्बित रहती है कि वे उन पापमय इच्छाओं का क्या जवाब देती हैं। यही बात अस्पताल की नर्सों के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। यदि महकमे के अफ़सरों के यहाँ स्त्रियों की ओर से अपील भी की जाय तो कोई लाभ नहीं, ये अफ़सर भी सब हिन्दोस्तानी ही होते हैं। वे आमतौर पर इस तरह की शिकायत करने वाली स्त्रियों की तबदीली कर देते हैं। जिससे उनके कष्टों का केवल स्थान परिवर्त्तन हो जाता है। सच बात यह है कि हम भारतीय, स्वतन्त्र और सदाचार युक्त स्त्री के अस्तित्व की कल्पना ही नहीं कर सकते। स्वतन्त्रता और सदाचार दोनों में विरोध है।'

कलकत्ता युनिवर्सिटी कमिशन ने, जिसमें अंगरेज़ हिन्दू, और मुसलमान जातियों के प्रतिष्ठित प्रतिनिधि थे, इस बात के विषय में इस प्रकार लिखा थाः—

'यह बात माननी पड़ेगी कि जब तक बंगाली पुरुषों में ज़नाने से बाहर रहने वाली स्त्रियों के प्रति आदर और सहाय्य प्रदान की प्रवृत्ति न उत्पन्न होगी तब तक महिला अध्यापकों का मिलना असम्भव है।'(१)

उक्त वाक्य में से केवल बंगाली शब्द को निकाल दीजिए और तब यही बात सम्पूर्ण भारत के लिए लागू हो जायगी। मेसन ओलकाट ने, पूरे भारत को ध्यान में रख कर कहा है: 'सामाजिक बन्धनों और कठिनाइयों के कारण गांवों

(१) कलकत्ता यूनिवर्सिटी रिपोर्ट भाग २, खण्ड १, पृ० ९

में स्त्रियों को पढाना तब तक असम्भव है जब तक उनके साथ उनके पति न मौजूद[२] हो।[१]'

यह मध्य प्रान्त के डाइरेक्टर आफ पब्लिक इन्स्ट्रक्शन ने अध्यापिकाओं के अभाव के कारण ग्रामों में शिक्षा के शोचनीय अवस्था के सम्बन्ध में लिखते हुए कहा है —

'ग्राम्य जीवन की परिस्थितियाही ऐसी हैं और किसी पेशे को स्वीकार करने वाली अविवाहिता स्त्रियों के प्रति भारतीय मनोवृत्ति इस ढंग की है जो ऐसी स्त्रियाँ मिलती हैं उनके लिए जीवन आमतौर पर असह्य हो जाता है[३]।'

उत्तरी भारत में एक बड़े अमरीकन मिशन कालेज की अध्यक्षाने मुझसे कहा कि, 'कोई भारतीय स्त्री देहातों में पढ़ाने नहीं जा सकती। यदि वह ऐसा करे तो उसका जीवन नष्ट हो जाय।' इस बात को कहने वाली एक बहुत अनुभवी महिला थीं जिनके कथन में पक्षपात अथवा जानकारी के अभाव की आशंका नहीं की जासकती। इसके बाद उन्होंने कहा— 'इस समय यहां एक कमरे से दूसरे कमरे में दौड़ती हुई जितनी लड़कियां दिखाई पड़ रही हैं उनमें से किसी का भी उपयोग अध्यापिका के तौर पर नहीं किया जा सकता। देश की गहरी आवश्यकता की पूर्ति के निमित्त गावों में पढाने के लिए उनमें से कोई भी नहीं तैयार होंगी। इसका कारण यही है कि वहां इनका सर्वनाश असंदिग्ध है। और फिर भी भारतवासी स्वराज्य[१] के लिए चिल्लाते हैं।

(२) बिलेज स्कूल इन इंडिया पृ० १९६

(३) दी एजुकेशन आफ इंडिया।

थायर सेयू। १९२६ पृ० २६०

(१) ऐलिस से कहा गया, फरवरी, १९२६

पूरी तहक़ीक़ात के बाद कलकत्ता यूनिवर्सिटी कमिशन(२) का कहना है कि :—'जब तक गावों में सुरक्षित मकानों में अपने निकट और बड़े-बूढ़े सम्बन्धियों के साथ अध्यापिकाओं के रहने का प्रबन्ध न हो तब तक उन्हें अध्यापिका होने के लिये प्रोत्साहित करना निरर्थक ही नहीं वरन निर्दयता भी है।'

ब्रिटिश भारत भर में जांच करने वाली एक कमेटी ने जिसमें वाई० एम० सी० ए० के भारतीय प्रधान मी० कानकरयन(३) टी० पाल भी शामिल थे लिखा है कि :—

जिन सामाजिक कठिनाईयों के कारण अध्यापिकाएं नहीं मिलती वे स्पष्ट हैं। देश के कल्याण की दृष्टि से बहुत गम्भीर हैं। ग्रामों में प्राइमरी स्कूल का जितना काम है वह वास्तव में स्त्रियों का है और फिर भी समाज की ऐसी अवस्था है कि कोई स्त्री यह कार्य अपने ऊपर नहीं ले सकती०००० जब तक कोई महान सामाजिक परिवर्तन न होगा तब तक अध्यापिकाओं के अभाव की समस्या का हल होना असम्भव है।'

ऐसी परिस्थिती में अध्यापिका बनने वाली स्त्री को यदि अपमान की दृष्टि से देखा जावे तो कोई आश्चर्य नहीं। भारतीय परिस्थिती के एक जान कार की राय है(४):—

'कहा जाता है कि सुशील स्त्रियां पढ़ाने का काम नहीं करें सकतीं। समझ में नहीं आता कि लोगों में यह भाव किस तरह उत्पन्न हुआ। परन्तु, संभवतः भारतीय लोग यह कहेंगे कि "स्त्री के जीवन का उद्देश विवाह है, यदि उसका विवाह

(२) कलकत्ता यूनिवर्सिटी रीपोर्ट, भाग २ खण्ड १ पृ०९

(३) विलेज एजुकेशन इन इंडियां, दी रिपोर्ट आव ए कमीशन आफ इन क्वायरी, आकसफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस १९२२, पृ० ९८। (४) सेन्सस आव इंडिया १९११ भाग १५ पृ० २६०-१

हो जायगा तो उसे पढाने के लिए समय कहाँ मिलेगा। यदि वह पढाती है तो संभवत घर पर उसे कुछ काम नहीं है या वह वहा के काम की वेपरवाही करती है। यदि उसे घर पर काम नहीं है तो वह अविवाहिता होगी और अविवाहिता स्त्रिया[1] वैसी ही होंगी जैसी कि होती हैं (अर्थात् वेश्या) यदि वह घर के काम की वेपरवाही करती है ता भी वह वैसी ही बुरी है।"

इस दलील म २,६८,००,००० विधवाओं में से अध्यापिकाए तैयार करने की गुजाइश है। उनके द्वारा रचनात्मक कार्य्य बहुत कुछ हो सकता है। इसकी ओर लोगो का ध्यान जा भी रहा है, इस दिशा म कुछ प्रयत्नो का श्री गणेश हो गया है और कुछ विधवाओं को पढाने का काम भी सिखलाया गया है। लेकिन कट्टर हिन्दुओं का यह धार्मिक विश्वास है कि विधवाओं की दृष्टि अशुभ है और अभाग्य उनके पल्ले पडा है। इसलिये विधवाओं के स्कूलों म लडकिया भेजने से लोग और भी एतराज करेंगे। इस कारण वे इन अध्यापिकाओं की उपयोगिता को नष्ट कर देते हैं। एक महा-

---

१ सेंसस आफ इण्डिया, १९११ भाग १५ पृ० २२९ यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि सत्रह या अठारह वर्ष की अवस्था के बाद ऐसी कोई स्त्रिया अविवाहित नहीं रह जाती जो वेश्याए नहीं हैं अथवा जिनमें कोढ या नेत्र हीनता आदि कोई दोष नहीं है। भारतवर्ष में बीस साल से ऊपर की कुमारियों की सख्या बहुत ही कम है और वृद्धा कुमारी का तो वहाँ मिलना ही कठिन है। आयु सम्बन्धी अङ्कों में ईसाई, पारसी और मुसलमान स्त्रियाँ जो अधिकाश हिन्दुओं की अपेक्षा अधिक अवस्था में विवाह करती है सम्मिलित हैं।

शय जिनका मत पहिले उद्धृत किया जा चुका है, कहते हैं[1]:—

'अपने परिवार के बाहर काम स्वीकार करने वाली इन स्त्रियों की रक्षा करना बड़ा कठिन हो जाता है, और यह एक बहुत बड़ी आपत्ति है। वे केवल मिशन स्कूलों और संस्थाओं में जहाँ उनकी खूब निगरानी होती है सुरक्षित रूप से काम कर सकती हैं। इस प्रकार विधवाओं से पूरी सहायता नहीं मिल सकती।'

इस कथन का आशय यह है कि अकेली कुमारी के लिए गांवों में जो प्रलोभन दबाव और जबरदस्ती सामने आ सकती है वही युवती विधवाओं के सामने भी आवेगी।

इन बातों से यह प्रकट होता है कि क्यों स्त्रियों के अध्यापिका बनाने को भारतीय समाज अपमान की दृष्टि से देखता है? और एक भारतीय (१) लेखक के शब्दों में इसी विचार ने स्त्रियों को आर्थिक रूप से पुरुषों पर निर्भर कर दिया है और घर में पत्नी बन कर रहने के अतिरिक्त और कोई काम कर सकना उनके लिये असंभव हो गया है।

फिर भी इस नियम के अपवाद हैं। सन् १९२२ में ब्रिटिश भारत की १२,३५,००,००० स्त्रियों में से ४,३९२ स्त्रियां अध्यापकाओं के ट्रेनिङ्ग स्कूलों में पढ़ रही थीं लेकिन कुल ४,३९१ में से प्रायः आधी २,०५० तो (२)ईसाई थीं जिनकी जन-संख्या भारत की सम्पूर्ण जन संख्या की केवल १.५ प्रति शत है। इनमें भी वे स्त्रियां अत्यन्त कम होती हैं जो देश की इस सबसे बड़ी आवश्यकता की पूर्त्ति करती हैं अर्थात् जो ट्रेनिङ्ग

रिकान्स्ट्रक्टिङ्ग इण्डिया पर एम० विश्वेश्वर का लंदन पी० एस० किङ्ग एण्ड सन्स १९२० पृ० २४३ (१) (२) प्राग्रेस आफ एजुकेशन इन इण्डिया १९१७-२२ भाग २ पृ० १४-१५।

स्कूल से निकलकर अध्यापिका का कार्य करती हैं। शिक्षा सम्बन्धी एक विशेषज्ञ(१) का कहना है ब्राम्हो और ईसाई स्त्रियों को छोड कर अन्य प्रतिष्ठित भारतीय स्त्रियो को शिक्षण कार्य सीखने में लगाना अत्यन्त कठिन है और जो काम सीख भी लेती है उनमें से अधिकांश आवश्यकता पडने पर अध्यापिका वन कर कहीं जाने को तैयार नहीं होती।

सयाग से भारतीय ग्रामों में बहुत कुछ देख चुकने के बाद मुझे स्त्रियों के ट्रेनिङ्ग स्कूलो में जाने का मौका मिला उस समय मेरे दिमाग में यह बात बैठ गई थी कि भारत की वास्तविक उन्नति के लिए ग्रामों की ओर ध्यान देना बहुत आवश्यक है।

मैंने पढने वाली स्त्रियो से पूछा 'आप किस लिए शिक्षा पा रही है ?'

उनमें से प्राय सबने उत्तर दिया, 'अध्ययन काम करने के लिए।'

मैं,— क्या आप गावो म पढाए गी ?

स्त्रिया—'नहीं ? नहीं ?' (मानो यह प्रश्न ही मूर्खता का था),

मैं—'तो गावों में बच्चों का कौन पढावेगा ?'

स्त्रिया—'गवर्मेण्ट उसका प्रवन्ध करेगी।'

मैं—'क्या गवर्मेण्ट अध्यापिकाओं के विना ही पढावेगी ?'

स्त्रिया—'हमें नहीं मालूम। यह काम गवर्मेण्ट का है।'

उन स्त्रियों में अपने देश के लोगों में काम करने की प्रेरणा

---

(१) कन्ग्रेनियल रिव्यू आफ एजुकेशन इन ईस्टन आसाम एण्ड बेंगाल।

करने वाला न तो कर्त्तव्य भाव था और न उत्साह था। निस्सन्देह इस तरह भाव न उनके प्राचीन इतिहास में पाए जाते हैं और न उनके माता पिता ने उन्हें सिखाए हैं। उसके अतिरिक्त आत्मरक्षा का भाव मनुष्यमात्र में स्वाभाविक है और ये भाव उन्हें विवश करता होगा कि वे स्वतंत्र जीवन का विचार तक अपने मन में न लावें।

इस प्रकार सब बातों पर ध्यान देने से जान पड़ेगा कि मिस्टर जिन्ना और लाला लाजपतराय के कथन वृक्ष के मूल की ओर लक्ष्य नहीं करते, बल्कि केवल शाखाओं और पत्तों की ओर।

अब गांव में रहने वाले किसान की बात लीजिए। गाँव के स्कूल से उसका बहुत ही कम सम्बन्ध होता है। जब कभी उसे आवश्यकता पड़ती है वह बिना कुछ सोचे विचारे स्कूल से अपने लड़के को हटा कर गाय आदि चराने भेज देता है। कभी कभी किसान ग़रीबी के कारण अपने लड़के से मज़दूरी कराता है। इन कारणों से लड़के स्कूलों में नहीं पहुँच पाते। फिर मलेरिया, पुश्तैनी निर्बलता आदि अनेक रोग भी उसे घेरे रहते हैं। कभी कभी गाँव के ज्योतिषी जी कह देते हैं—अमुक काल तक लड़के को पढ़ने न जाना चाहिए, कुण्डली में अशुभ फल निकलते हैं। इन सब बातों के सिवाय अन्य देशों के किसानों की तरह भारतीय किसान भी नवीनताओं के विरोधी है। उसके बाप दादे पढ़ना लिखना नहीं जानते थे। वह स्वयं नहीं जानता। ऐसी अवस्था में उसे कौन समझावे कि पढ़ने से लाभ होता है। वह स्वभावतः पूछता है, 'क्या पढ़, लिख कर लड़का अधिक अच्छा व्यपारी बनेगा? क्या खेती के काम में वह अधिक दक्ष होगा?

बहुत से अंग्रेजों का कहना है कि —'स्कूल की पढ़ाई में व्यवहारिक शिक्षा का अभाव है।' वे कहते हैं—यदि किसान को समझ में यह बात बैठा दी जाय कि पढ़ने के बाद लड़का उसी के काम में अधिक अच्छा सहायक होगा तो वह किसी, न किसी प्रकार उसे स्कूल में भेजेगा।' सर एम विश्वेशरय्या जैसे हिन्दू लेखक सरकार पर यह दोषारोपण करने में नहीं झिझकते कि सरकार जान बूझ कर भारतवर्ष को परा धीन बनाये रखने के लिये औद्योगिक शिक्षा को आकर्षण रहित बनाए रखती है। (१) किन्तु, जिस समिति के सदस्य मि० के० टी० पाल थे उसने भारत भर में जाँच कर के इसके विरुद्ध राय दी है।। उनका कहना है —

'अक्सर लोग यह कहते हैं कि गाँवों में जो शिक्षा दी जाती है वह अव्यवहारिक होती है। इसी कारण लोग उसे तिरस्कार की दृष्टि से देखते हैं। परन्तु, अनेक माता पिताओं की शिकायत इसके ठीक विपरीत होती है। वह अपने लड़के को कृषि विद्या पढ़ाना नहीं पसन्द करते, क्योंकि एक तो वे समझते हैं कि अध्यापक की अपेक्षा वे स्वयं इस विषय को अधिक अच्छा पढ़ा सकते हैं, दूसरे वह अपने लड़के को अध्यापक अथवा क्लर्क बनाने की आकांक्षा रखते हैं। जब वे देखते हैं कि इन पदों पर पहुँचना असम्भव है तब उनका शिक्षा सम्बन्धी उत्साह लुप्त हो जाता है। वे शिक्षा के मानसिक और आध्यात्मिक महत्व को समझने में असमर्थ हो जाते हैं।'

प्रारम्भिक कक्षाओं में पाठ्य विषय बदलने से स्कूल की उपयोगिता नहीं बढ़ेगी और न उस में अधिक लड़के पढ़ने

(१) रीकन्सट्रक्टिङ्ग इण्डिया प०२५८

आएंगे, वल्कि अच्छे, और सुयोग्य अध्यापकों के रखने से ही ऐसा होना सम्भव है।' (२)

—:o:—

(२) विलेज एजुकेशन इन इण्डिया पृ ०२०

बम्बई की भंगिन गू की टोकरी लिये हुए

सोलहवां परिच्छेद

नक्कारखाने में तूती की आवाज़

एक अत्यन्त प्रतिष्ठित भारतीय सज्जन ने मुझसे एक उच्च वंश के हिन्दू जमींदार का चर्चा किया और बतलाया कि अपने जन्म-स्थान के प्रति उनके क्या भाव थे।

अपने शहर के मकान के पुस्तकालय में बैठे हुए जिसमें कि दीवार के बराबर बराबर कानून की किताबों की कतारें लगी हुई थीं, उक्त जमींदार महोदय ने विशुद्ध अंगरेज़ी भाषा में बोलते हुए कहा 'रोग, गन्दगी, और अज्ञान मेरे देश की विशेषताएं हैं। मेरे ही गाँव का उदाहरण लीजिए सैकड़ों वर्षों से मेरे घर के बड़े इस गांव के मुखिया होते चले आए हैं। अब मैं उस गाँव का मुखिया हूं। १७ वर्ष हुए, जब गांव छोटा था। उसमें उस समय १,८०० मनुष्य रहते थे। इतने दिनों के बाद, कुछ ही सप्ताह हुए मैं फिर वहां गया तो देखा कि अब उसमें कुल ६०० आदमी रह गये हैं। मैं देख कर दंग रह गया।

'स्कूल में ७० ८० लड़के थे, जिनकी अवस्था पाँच या छः वर्ष की जान पड़ती थी। मैंने मास्टर से पूछा,—"इतने छोटे बच्चों को इतने गम्भीर विषय क्यों पढ़ा रहे हो?"

'मास्टर ने उत्तर दिया,—"लेकिन ये उतने छोटे नहीं हैं जितना आप समझ रहे हैं।"

'ये लड़के उचित भोजन के अभाव, मलेरिया के प्रभाव और किसी के देख भाल न करने के कारण बढ़ने ही नहीं

पाये । आप चाहे मच्छरों को मलेरिया का कारण बताएं किन्तु असली कारण लोगों को भोजन न मिलना है । ऐसे बच्चे, पुरुष, और स्त्रियां आप को सम्पूर्ण पश्चिमी बंगाल में मिलें जिनमें न जीवन है, न शक्ति ।

'अतएव, मैं यह पूछता हूँ कि ब्रिटिश सरकार गत सौ वर्षों से क्या कर रही है जो मेरा गांव इस दशा को प्राप्त हुआ ? यह सच है कि इसने पंजाब को रेगिस्तान से बदल कर बाग बना दिया और वहां के लाखों आदमियों को पर्याप्त भोजन पहुंचाया है । परन्तु इससे मुझे क्या सन्तोष हो सकता है जब मेरे गांव के लोग कोने में बैठ कर भूखों मरते हैं ? अँगरेज़ कहते हैं—"हमें देश में शान्ति स्थापित करनी थी और इस कारण हम दूसरा कोई काम हाथ में नहीं ले सके, और फिर यह बहुत बड़ा देश भी तो है, हमें पुल, सड़कें, नहरें बनानी पड़ती हैं ।" यह सब ठीक है । परन्तु वे और बहुत कुछ कर सकते थे । मेरे गांव के लोगों को उन्हों ने भूखों मार डाला ।'

अब सोचने की बात है कि जिस नगर में वे महाशय रहते हैं वहां से चार घंटे रेल में बैठ कर बड़े आराम से वे अपने गांव जा सकते हैं । वे धनी हैं उन्हों ने मुझे खुद बतलाया कि वकालत में उनकी मासिक आमदनी अमरीका के अच्छे से अच्छे वकीलों के मुक़ाबले की है । अपने गांव के इतने समर्थ पुरुष हो कर उन्होंने उसकी कुछ भी सहायता नहीं की और १७ वर्ष तक उसे देखने भी एक बार नहीं गये । और जब गये भी तो केवल उस गवर्मेण्ट को दोषी ठहरा कर सन्तुष्ट हो गये जिसे उनके ऐसे ५,००,००० गाँवों की चिन्ता करनी पड़ती है, और जो अन्त में मानवी हाथों और दिमाग़ों की सहायता से ही तो काम करेगी ।

और, यह कहने की तो उन्होंने आवश्यकता ही नहीं समझी कि उनके गाव के पास ही एक बडा कारखाना खुल जाने के कारण बहुत से गाव वाले अपने लाभ के लिये वहा से चले गये थे।

यहा उन सज्जन का नाम लेना तो मेरे लिये उचित न होगा, परन्तु एक दूसरे महाशय का नाम तो यहा मजे मे लिया जा सकता है--सरदार मुहम्मद नवाजखा जो उत्तरी पजाब के अटक जिले मे २६ गावों के जमीदार हैं।

उक्त मुसलमान महोदय ने लाहौर के चीफ्स कालेज में शिक्षा पाई है। वहा की पढाई समाप्त करने पर वे भारतीय सेना मे भरती होने के लिए रायल मिलिटरी कालेज, सैंढर्स्ट में गये थे।

इग्लैण्ड मे रहते हुए उन्हें कभी कभी अँगरेज जमींदारों के ग्राम भवनों में रहने का अवसर भी मिला। उन्होंने देखा कि अंगरेज जमींदार अपने किसानों के प्रति कैसा व्यवहार करते हैं।

लाहौर के कालेज मे उनके अगरेज हेड मास्टर ने जमींदारों के जो कर्त्तव्य बतलाये थे जब उन्होंने उन्हें इग्लैण्ड में उदाहरण रूप मे देखा तो वे कर्तव्य पूर्ण रूप से उनके हृदय में जम गये। हुस्सर के रिसाले मे १८ महीने नौकरी करने के बाद वे एक अच्छे युवक सिपाही निकले। उन्हें उनके अफसर और सिपाही दोनो चाहते थे लेकिन उन्होंने नौकरी छोड दी और अपनी जमींदारी मे चले आये, क्योंकि उन्होंने समझ लिया था कि मेरा कर्त्तव्य-क्षेत्र कहा है।

अपनी रियासत में वे एक गाव से दूसरे गाव को घूमा करते हैं। वे किसानो को खेती के अधिक अच्छे ढग समझाते

हैं, स्वास्थ्य की ओर ध्यान देने की ताकीद करते हैं और उनके सुधार के लिए जो कुछ सम्भव होता है उसे उठा नहीं रखते। उनकी २७ वर्ष की अवस्था है, और लगभग ४ लाख रुपए की वार्षिक आय है। उनका उत्साह अपूर्व है वहां के अंगरेज़ डिप्टी कमिश्नर को उनसे ज़बरदस्त सहायता मिलती है। विचित्र बात यह है कि वे ऊंची ऊंची नौकरियों में हिन्दुस्तानियों को अधिक और शीघ्रता-पूर्वक भरती किया जाना पसन्द नहीं करते। उन्हें स्वराज्य-सम्बन्धी राजनीति में कोई दिलचस्पी नहीं है, यद्यपि सफ़ाई, शिक्षा, जनता की आर्थिक समृद्धि के सम्बन्ध में सरकार की आलोचना करने में वे किसी से कम नहीं हैं। वे अपना समय सरकार के देशोन्नति के कार्यों में ज़ोरों के साथ मदद देने में और स्वयं इसी तरह के प्रयत्न करने में ख़र्च करते हैं।

यदि गवर्मेण्ट का उद्देश्य प्रजा की भलाई है तो केवल बातें करने से कुछ नहीं होगा। इसके लिए तो सरदार मोहम्मद नवाज़ खां ऐसे लोगों की संख्या बढ़नी चाहिए। तभी यह कहना भी उचित जान पड़ेगा कि उत्तरदायित्व के काम शीघ्रता के साथ भारतीयों के हाथ में दे दिये जायँ।

ओलकाट का कहना है कि छोटे कस्बों में रहने वाले ऊँची जातियों और श्रेणियों के लोग अपने कम सम्पन्न ग्रामीण भाइयों की शिक्षा के प्रति न केवल उदासीन हैं बल्कि उसके प्रबल विरोधी हैं क्योंकि वे सोचते हैं कि पढ़ लिख जाने पर नीच जातियों के लोग हमारी जैसी सेवा करते आये हैं वैसी फिर न करेंगे। (१)

जाँच कमीशन का कथन है कि जन साधारण की शिक्षा

(१) विलेज स्कूल इन इण्डिया, पृष्ठ ९३

के प्रति गाँवों में लोगों की अनुकूल सम्मति नहीं है। अभी धनी जमींदार अथवा सम्पन्न किसान यह नहीं समझ सके हैं कि मजदूरों को शिक्षा देने से उन्हें लाभ है। (२)

गाँव के स्कूल के अध्यापक चाहे जवान हों या बूढ़े प्राय: रूखे और अयोग्य होते हैं—और शक्ति हीन छोटी छोटी भुजाओं तथा पैरों वाले जन्म से स्फूर्ति शून्य खाली दिमाग के बच्चों पर वे केवल एक बोझ होते हैं, उनका प्रभाव किसी प्रकार स्फूर्ति दायक नहीं पड़ता। जिसका फल यह होता है कि भारतीय ग्रामीण स्कूल की अपेक्षा अधिक निर्जीव और अरोचक वस्तु शायद ही संसार में कोई मिल सके।

परन्तु, मुझे तो ऐसी कोई बात नहीं मिली जिससे यह साबित हो सके कि भारतीय स्वभाव में हिन्दू-धर्म के कारण उत्पन्न एक दृष्टि कोण को छोड़ कर कोई विशेष नहूसत है। छोटे और बड़े सब में प्रसन्नता के तत्व विद्यमान हैं। मुसकराइये तो वे भी तुरन्त मुसकरा देंगे, हँसी मजाक के जवाब में वे भी हँसते हैं और मजाक करते हैं। कोई नवीन वस्तु देखते हैं तो सभी कौतूहल में रत हो जाते हैं। यह सब देखना हो तो आप किसी भी गाँव में जहाँ ग्राम-वासी एकत्र हों जाकर देख लीजिए। कोई दार्शनिक प्रसङ्ग उठाइये तो उनमें नवीन विचारों का उदय होगा। ग्राम वासी आदरणीय, रोचक तथा सरकार के सहानुभूति और प्रेम के पात्र हैं। सरकार के आदमियों ने पिछले साठ वर्षों से ऊपर तक उनकी अच्छी से अच्छी सेवाएँ की हैं उनके वे सर्वथा योग्य हैं। जब तक उनका बुद्धि सगत और क्रिया शील सहयोग न प्राप्त होगी तब तक भारतवर्ष में कोई शासन पद्धति, जो स्वेच्छाचारी

(२) विन्त्र ०डुकेशन इन इण्डिया पृष्ठ२६

शासन से अच्छी हो, नहीं स्थापित हो सकती।

लेकिन वर्त्तमान भारतीय कृषक अपनी उन्नत आवश्यकताओं की पूर्त्ति के लिये अंगरेज़ों की ही सच्ची, लगातार और अमली सहानुभूति और सहायता की आशा कर सकते हैं। अँगरेज़ डिप्टी-कमिश्नर ही उन के लिए 'माँ-बाप' हैं और उसी का दिमाग़ आठों पहर उनके दुख-सुख की बात सोंचता रहता है।

मेरा ही निजी अनुभव है कि जिन बीसों गाँवों में मैं गई सब ने मेरा बड़ा स्वागत किया। मिट्टी की दीवालों पर बादशाह जार्ज और बालकृष्ण के चित्र दिखाई पड़ते थे।

मेरा अपने तईं अमरीकन बतलाना व्यर्थ था, क्योंकि सफ़ेद चेहरे से वे अँगरेज़ ही समझते हैं। अन्त में मैं ने कुछ कहना छोड़ दिया और उस स्वागत को स्वीकार कर लिया जो अनेक पीढ़ियों के काम के बाद अब स्वभावतः मिल रहा था।

फिर भी, सोंचिए कि जहाँ ब्रिटिश भारत में ५, ००, ००० गाँव हैं, वहाँ स्त्रियाँ, पुरुष और बच्चों सब को मिला कर कुल केवल २,००,००० से भी कम अंगरेज़ हैं।

मैंने एक बार मि० गांधी से कहा—'आप के शिक्षित नवयुवक राजनैतिक अधिकारों, और समाजिक प्रतिष्ठा तथा ख्याति आदि के लिए आन्दोलन करने के स्थान पर यदि त्याग पूर्वक गाँवों में जा कर काम करें, तो क्या यह अधिक अच्छा न होगा ? मि० गांधी ने कहा—'बेशक, लेकिन यह नक्कार ख़ाने में तूती की आवाज़ है।'

कलकत्ता के चार प्रतिष्ठित तरुण राजनैतिक नेताओं से भी मैंने यही प्रश्न किया—'क्या आप और आप जैसे अन्य

भारतवासी ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि अनेक अंगरेज स्त्री पुरुष आज कर रहे हैं अपने व्यक्तिगत और राजनैतिक आकांक्षाओं का बलिदान करके भाइयों की सेवा में सर्वस्व समर्पण द्वारा अपनी प्यारी भारत-माता की कहीं अधिक सेवा नहीं कर सकते? बीस वर्ष के बाद क्या इस प्रकार आप की योग्यता ऐसी न हो जायगी कि जिन राजनैतिक अधिकारों को अभी आप व्यर्थ ही मांग रहे हैं, वे आप के हाथ में आप ही आप इस कारण चले आएंगे कि अपने अपने को उन अधिकारों के योग्य साबित कर दिया है?' तीन ने कहा—'सम्भव है। लेकिन चर्चा करना भी तो काम ही है। इस समय केवल यही काम है। जब तक हम विदेशी को भारत से न निकाल दें तब तक और कुछ नहीं हो सकता।'

एक बड़े अमरीकन कारखाने के प्रधान ने जो भारतवर्ष में बहुत दिन रह चुके थे और भारतीयों से बहुत दिलचस्पी रखते थे। कहा—यदि मेरे हाथ में इस देश का शासन हो तो मैं कल ही सब विश्वविद्यालयों को बन्द कर दूं। भारतीयों को क्लर्क, वकील, और राजनीतिज्ञ होने की शिक्षा देना तब तक पाप है जब तक वे अपने लिए भोजन न पैदा कर सकें।'

एक बड़े भारतीय कालेज के अमरीकन अध्यक्ष ने कहा—'२० वर्ष के अनुभव के बाद मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि यहाँ शिक्षा का सारा ढंग ही गलत है। यहाँ के लोगों को अंगरेजी व्याकरण की शिक्षा देने के पहले दो पीढ़ियों तक केवल प्रारम्भिक शिक्षा देनी चाहिए थी, और हाई स्कूल के पहले दो पीढ़ियों तक केवल अंगरेजी व्याकरण ही पढ़ना चाहिए था।

इसी प्रकार पहली भारतीय युनिवर्सिटी तब खोली जाती जब हाई स्कूल का काम सात आठ पीढ़ियों तक हो चुकता।'

—:o:—

चौथा भाग

मिस्टर गान्धी

एक छोटे पत्थर के बने हुए मकान में जिसके बगल में एक खुला हुआ बाग था जिसकी ओर अमरीका के किसी भी छोटे कसबे में कोई ध्यान नहीं देगा, एक कमरे में दीवाल का सहारा लिए हुए फर्श की गद्दी पर गान्धी बैठे थे। उनकी दाहिनी ओर दो युवक लगभग १८ इंच ऊँचे उनके सामने बैठे थे और बाईं ओर पश्चिमी दर्शकों के बैठने के लिए एक लकड़ी की बेंच पड़ी थी। जिसके पीछे कोई सहारा न था, कमरे में और भी चीजें होंगी परन्तु जो मनुष्य दीवार से कमर लगाए बैठा हुआ था उसे छोड़ कर दर्शक का ध्यान किसी और ओर जाता ही न था।

मि० गान्धी का सिर मुड़ा हुआ है और उस पर जो कुछ बाल हैं वे भी पक रहे हैं। उनकी छोटी और काली आँखों से शान्ति टपकती है उनमें एक ऐसे मनुष्य का त्याग भाव भी भरा सा दीखता है जिसने निरर्थक परिश्रम करने के बाद कार्य्य क्षेत्र से हाथ खींच लिया हो किन्तु जो अपनी गलती का कायल न हुआ हो। फिर भी यदा कदा बात करते करते उनकी आँखों में एक बिजली की सी ज्योति निकलती है। उनके कान बड़े हैं और आगे की ओर उभड़े हुए, वे केवल एक छोटी सी धोती पहनते हैं जिनसे उनके पतले हाथ और पतली नंगी टांगें जिन पर वे बुद्ध की तरह पलौथी मारे तलने ऊपर को किये हुए बैठते हैं, दिखाई पड़ते हैं। उनके

तमाम बदन पर बाल हैं वे एक लकड़ी का चरखा चलाते रहते हैं जो उनके सामने ज़मीन पर रखा रहता है दाहने हाथ से चरखा चलाते हैं और बाएं से सूत निकालते हैं।

गान्धी जी ने मेरे जवाब में कहा,—'अमरीका के लि मैं क्या सन्देश दूँ ? मेरा सन्देश इसी चरखे की ध्वनि है उनकी आवाज़ हलकी शान्त और एक सी थी।

इसके बाद थोड़ा ठहर ठहर कर वे धीरे धीरे बोलने लं और उनके दोनों युवक मंत्री जो डेस्क के निकट बैठे थे, प्रत्ये शब्द को लिखने लगे।

चरखा भन भन करता हुआ चलता रहता है और उसरं अमरीका के लिये जो सूत काता जाता है वह इस पुस्तक वे पृष्ठों में पुनः पुनः दिखाई पड़ता है।

——o——

सत्रहवां परिच्छेद

मुक्ति फौज का पाप

भारतीय आन्दोलन कर्ता पूछते है---'इतने दिनों तक अगरेजी राज्य रहने, पर भी भारतवर्ष क्यों निर्धन बना हुआ है ?'

यदि वह सुदूर क्षितिज से अपनी दृष्टि हटा कर अपने घरके अन्दर डाले तो उसे अपने चारों ओर से उक्त प्रश्न का उत्तर मिलेगा। देश की चारों ओर की स्थिति उसकी ओर से सच्ची चिता और परिश्रम की पुकार कर रही है।

उदाहरण के लिए, पशुओं का प्रश्न लीजिए। केवल इसीसे भारतीय दरिद्रता का पता लग जायगा।

भारतवर्ष के पशु ही भारतवर्ष को खाये जा रहे हैं। और फिर भी, पशु भूखों मर रहे हैं।

सन् १९१९-२० में समस्त ब्रिटिश भारत के अन्दर १४,६०,५५,८०१ गाय बैल थे। उनमें से कम से कम ५० प्रति शत उनकी अनुपयोगिता के कारण देश को ११,७६,००,००० पाउ ड का सालाना घाटा पडता है। यह रकम ब्रिटिश भारत की मालगुजारी की चौगुनी (१) है। इतनी सालाना रकम का चारा ये निकम्मे पशु खा जाते हैं।

प्राचीन काल के हिन्दू नेताओं ने गाय को देश के

(१) देखो, प्रोसीडिंग्स आव ऐग्रिकल्चर आव इडिया ऐ ड बगलोर। राउण्ड टेबुल न० ५९, जून, १९२५ भी देखो।

लिए आवश्यक समझ कर उसकी रक्षार्थ उसे देव-स्वरूप दे दिया। तदनुसार हिन्दू भारत वर्त्तमान काल में गाय को पवित्र मानता है और पूजता है। सन १९२१ की व्यवस्थापिका सभामें एक विद्वान् हिन्दू सदस्य (२) ने इसी बात को इस प्रकार कहा—

'चाहे आप इसे धर्मान्धता कहें, चाहे, पक्षपात कहें, या अधार्मिकता, परन्तु यह सत्य बात है कि हिन्दू के हृदय में किसी चीज़ के प्रति इतनी भक्ति नहीं है जितनी गाय के प्रति।'

गाय मारना एक महान पाप है— देव हत्या के तुल्य है। ग्वालियर के स्वर्गीय महाराजा से एक बार यह अधर्म्म होगया था। वे एक नए रेल-पथ पर पहले पहल लोकोमोटिव एंजिन चला रहे थे। एक गाय रास्तेमें कूद पड़ी और कट गई। महाराजा डर गए किन्तु उसे न बचा सके। कई वर्षों के बाद उन्होंने एक मित्र से इसके सम्बन्ध में चर्चा करते हुए कहा— 'उस दुर्घटना के प्रायश्चित्त-स्वरूप ब्राह्मणों को दान देने और तप आदिक करने से शायद मेरा जीवन भर पीछा न छूटेगा।'

राजा हो या किसान, गाय सब के लिए माता है। मनुष्य की मृत्यु के समय गाय का होना ज़रूरी है। ताकि मरते समय मनुष्य उसकी पूंछ पकड़ सके। सम्भव है, इसी कारण गाय घर में हमेशा तय्यार रक्खी जाती है। जब काश्मीर के पिछले महाराजा का स्वर्ग-वास होने लगा तो गाय उनके कमरे तक

---

(२) सन् १९२१ में व्यवस्थापिका सभा में बहस। रायबहादुर जे० एल० भार्गव भाग १, खण्ड १, पृष्ठ ५३०। और भी देखो कमेण्टरीज़ अविदी ग्रेट अफ़ोन्सो दालबोक़र्क़ वाल्टर डी ग्रे, का अनुवाद लन्दन, हकलूट सोसाइटी, १८७७ भाग २ पृ० ७८

चढ कर जाने को किसी प्रकार तैयार नहीं हुई। अन्ततोगत्वा स्वयं महाराजा को बहुत शीघ्रता के साथ, जो उनकी आत्मा के लिए आवश्यक था, गाय के पास लाना पड़ा, जिसमें उनके शरीर को काफी कष्ट हुआ।

दूध, घी, दही, गोबर, और गोमूत्र ये पाचो पदार्थ पाँच छोटे २ वर्तनों म एक श्रेणी में रख कर पच गव्य तैयार किया जाता है फिर ईश्वर प्रार्थना के साथ इन पाँचों को मिला कर खाया जाता है। कहा जाता है कि आत्मा और शरीर दोनों की शुद्धि के लिए इससे बढकर कोई पदार्थ होही नही सकता। इससे जान बूझकर किये हुए पाप भी धुल जाते हैं।

७— ए० वे० दुवौय(१) का कहना है —

'किसी भी प्रकार की अपवित्रता को दूर करने के लिए गोमूत्र बहुत उपयुक्त समझा जाता है। मैंने प्राय हिन्दुओं को चराह के स्थानों में जाने और उस अमूल्य पदार्थ को पाने की प्रतीक्षा में बैठे रहते तथा पीतल के वर्तन में गरम गरम अपने घर ले जाते देखा है। मने कभी कभी लोगों को उसे चुल्लू में लेकर पीने और शेष से अपने मुख और सिर को धोते भी देखा है। इस प्रक्षालन से सब शारीरिक और पीने से आत्मिक अशुचिता दूर हो जाती है।'

'ए० वे० दुबौय का कहना है कि विशेष धार्मिक पुरुष तो इनका नित्य पान करते हैं। और कट्टर हिन्दुओं के ये विचार अब भी वैसे ही हैं जैसे ए वे दुबौय के समय में थे।

ऐसी स्थिति में भी हम गो मास भोजी पाश्चात्य देश वासी अपने कट्टर हिन्दू मित्रों से मिलने के समय हाथ मिलाने

१ हिन्दू मैनर्स कस्टम्स ऐण्ड सेरीमनीज पृ० ४३, और भी देखो पृ० १५२ १०५, ५२९

का आदर करते हैं। यह कैसी सुन्दरता है! परन्तु कम से कम एक कट्टर महाराजा यूरोपियन समाज में मिलते समय इस बात का ध्यान रखते हैं और दस्ताना पहने रहते हैं। लेकिन एक बार वे भी चूक गये। कहा जाता है कि लन्दन के किसी भोज में जब उन्होंने अपने दस्ताने उतारे तो उनके बगल में बैठी हुई एक यूरोपियन महिला ने उनके हाथ में अँगूठी देख कर कहा,—'महाराज! अँगूठी की मणि कैसी सुन्दर है? क्या मैं देख सकती हूँ।'

उन्होंने 'अवश्य' कह कर अंगूठी उँगली में से निकाली और महिला के रकाबी के पास रख दी।

महिला ने अँगूठी अच्छी तरह रोशनी के सामने देखने के बाद उसकी बड़ी प्रशंसा की और धन्यवाद दे कर उसे महाराजा की रकाबी के पास रख दिया। तत्पश्चात, महाराज ने कनखियों से संकेत करके अपने नौकर को, जो कुर्सी के पीछे खड़ा था, इशारा किया कि अगूठी उठा लो।

उन्होंने आज्ञा दी—'इसे धो डालो।' इसके बाद बिना खेद के फिर बात करने लगे। यह बात अप्रासंगिक मालूम होगी किन्तु मैंने इसे इसलिए कहा है कि हिन्दूओं पर गाय का कितना प्रभाव है, यह स्पष्ट हो जाय। और जब गाएं बड़े तड़के सैकड़ों की संख्या में नगरों और गांवों से चराई के स्थान की ओर जाती हैं तब, जान पड़ता है, मानो वे यह सब जानती हैं और जान कर प्रसन्न हैं कि लोग हमारी ओर कितनी भक्ति रखते हैं। नीली, लाल आदि रंगों की कौड़ियों और मूंगों की मालाएं उनके गले में शोभा देती हैं। और उनकी तथा उनके पुत्र बैलों की आँखों में मस्ती झलकती है।

उनकी आँखों की उस शान्ति को देख कर राही यह सम

भता है कि गायें अपने आस पास प्यार की प्रचुरता का अनुभव कर रही हैं। हालैण्ड और इंगलैण्ड में भी केवल चर कर रहने वाले बैलों में अपूर्व शान्ति, सन्तोष और प्रेम देखने को मिल सकता है लेकिन उसका कारण यह है कि उन्हें अच्छा भोजन दिया जाता है, उनकी अच्छी सेवा की जाती है और उन्हें खूब स्वतन्त्रता रहती है। इसके विपरीत, भारतवर्ष में गायों की इस अवस्था का कारण जाँच करने पर, यह जान पड़ता है, कि वे कमज़ोर होती हैं, मनुष्यों के बहुत निकट रहती हैं, और उनकी पलक का ऊपरी कोना एक विचित्र रूप से बना होता है इसलिये उनकी शान्ति वास्तविक प्रसन्नता की शान्ति नहीं होती। भारतीय राजनीतिज्ञों का कहना है कि पचास वर्ष पहले भारतवर्ष में पशुओं के लिए चराई का यथेष्ट स्थान था। 'यथेष्ट' शब्द की पाश्चात्य ढंग से परिभाषा करने पर जो भी समझ पड़े, आज सच्चाई इसके विपरीत है। मि० गान्धी के एक लेखक श्रीयुत देसाई (१) लिखते हैं —

'प्राचीन काल में तथा मुसलमानों के समय में भी पशुओं के लिए चरागाहों और जंगलों में चरने की खूब स्वतन्त्रता थी। जो लोग पशु रखते थे उनका व्यय प्राय नहीं के बराबर था। लेकिन ब्रिटिश सरकार के हृदय में लोभ समाया। उसने या तो भूमि कर बढ़ाने अथवा अपने मिशनरी मित्रों को प्रसन्न करने के लिए पशुओं की इस चिरकालीन सम्पत्ति अर्थात् चरागाहों को छीन लिया वे पशु तो न स्वयं बोल सकते हैं। और न जिनकी ओर से कोई बोलने वाला था।'

(१) यंग इंडिया जून ३, १०२६ वा० जी० देसाई पृ० २००

इसके बाद मि० देसाई ने अपने कथन के समर्थन में यह कहा है कि गवर्मेण्ट ने एक बार ईसाई मुक्ति फ़ौज को गुजरात में कृषि के काम के लिए '५६० एकड़ चराई की भूमि दी। उनका आगे कहना हैः—

'इस अन्याय का यह परिणाम हुआ है कि अन्य देशों की अपेक्षा सम्पूर्ण क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत में जितनी चराई की भूमि है वह सब से कम है। 'इस दशा में यह कोई अचरज की बात नहीं कि ब्रिटिश राज्य में हमारे पशुओं का बहुत ह्रास हुआ है।' और, उन्होंने अङ्क उद्धृत करके अमरीका के लोगों को, जिनके यहाँ चराई की भूमि सब से अधिक है, सुखी जातियों में सब से आगे बनाया है।

लेकिन, दुर्भाग्य से अमरीकन अङ्क उद्धृत करते हुए मि० देसाई उन्हीं को छोड़ देते हैं जो भारत की आवश्यकता की दृष्टि से बहुत मूल्यवान् हैं। निस्सन्देह, हमारे यहाँ चराई की विस्तृत भूमि है परन्तु हम उसे बीच बीच में ख़ाली छोड़कर अर्थात् जिस भूमि में एक साल पशुओं को चराते हैं उसे दूसरे साल ख़ाली छोड़कर उसके उपजाऊ पन को बढ़ाते रहते हैं, जिस की ओर भारतीयों का ध्यान नहीं जाता और जिस भूखंड में चराई की भूमि सब से अधिक है अर्थात पश्चिम अमरीका की भूमि, उसमें भी हम कुल जोती जाने वाली भूमि का ३ भाग पशुओं के लिए चारा पैदा करने के काम में लाते हैं। जिस प्रदेश में रुई की उपज होती है उसमें भी केवल १० प्रति शत के हिसाब से मनुष्य के लिये अन्न उत्पन्न किया जाता है, शेष में से ५३ प्रति शत का उपयोग पशुओं के चारे के लिए ही होता है। गेहूं तथा अन्न

अन्न की उपज के प्रदेश म भी ७० प्रति शत भूमि पशुओं के लिए चारा पैदा करने के काम म आती है। भिन्न भिन्न प्रकार के नाज की उपज के प्रदेश म ८५ प्रति शत और उत्तर पूर्व म ७० प्रति शत जोती जाने वाली भूमि का ही उपयोग होता है। कुल मिला कर २५,७०,००,००० एकड भूमि पशुओं के चारे के काम मे आती है और केवल ७,६०,००,००० एकड मनुष्यों के लिए अन्न उपजाने के काम मे आती है। अर्थात कुल भूमि का ७० प्रति पशुओं के काम म आता है। पाँच मनुष्यों के एक परिवार के पीछे एक दूध देने वाली गाय का औसत पडता है(१)।

जो लोग कृषि प्रधान भारतवर्ष के सच्चे हितैषी हैं उनका ध्यान इन अङ्कों की ओर जाना चाहिए। इन अकों को मैंने इसी आशा से दिया है।

मि० गाधी ने इसी प्रश्न के सम्बन्ध में एक इटेलियन विशेषज्ञ से जो भारत में बस गया है, सम्मति मागी। उन्हों ने तुरन्त व्यवहारिक बातें लिख भेजीं। यदि भारतीय दया शून्य न हों, और अपने पशुओं की आवश्यकता को समझें, यदि वे अपने खेतों को बारी बारी खाली छोडकर उपयोग करें और इटली वालों की तरह चारा पैदा करने के लिए विवश किये जायँ तो पशुओं के कष्टों का अन्त हो जाय। इसी लेखक का आगे कथन है(२) —

'खेतों म बदल बदल कर उपज करते रहने से कुछ अधिक

[१] एग्रिकल्चरल बुलेटिन न० ८९५ (का यू० एस० विभाग, धजर पारेज रिसोर्सेज, गवर्नमेन्ट प्रिंटिंग आफिस, १९२२ पृ० ३१२ २६

(२) यग इंडिया, १२ मई, १९२६, श्रीयुत गैलेटीवे डार्गडिल, दी कैटिल प्राब्लेम, पृ०१७७

व्यय नहीं होता। जावा में डच लोगों ने कृषकों को सौ वर्ष हुए चाबुक के ज़ोर से ऐसा करने के लिए विवश किया। उनके शासन में जावा की जन संख्या २० लाख से ३ करोड़ हो गयी थी। चावल और ईख की उपज भी उस देश में इसी औसत से बढ़ी थी। यह परिवर्तन अधिक व्यय करने से नहीं हुआ बल्कि एक बुद्धिमान शासन पद्धति के बल प्रदर्शन से। भारत वर्ष में चाबुक का उपयोग नहीं किया जा सकता हम समझा कर काम लेना चाहते हैं, मज़दूर करना नहीं चाहते।'

और भी सुनिये (२)

'जहाँ गाय अमूल्य सम्पति समझी जाती है (जैसे इटली में) वहाँ प्रेम के साथ उसकी सेवा होती है और उसके लिए फ़सले तैयार की जाती हैं। और उसके रहने के लिये बढ़िया महल बनाये जाते हैं। भारत में गाय की पूजा यह होती है कि वह उन चरागाहों में छोड़ दी जाती है, जिन्हें चरागाह ही न कहना चाहिये।' 'बल्कि खड़े रहने और भूखों मरने के लिए एक सार्वजनिक भूमि। भारत-वर्ष को कष्ट, रोग, और गर्भ-पात के इन स्थानों को त्याग कर देना चाहिए और प्रत्येक भारतीय को उचित है कि वह अपनी भूमि पशुओं के लिए चारा पैदा करने के काम में लावे।'

जिस किसी ने भारत की चरागाहों को देखा होगा वह उक्त कथन की सत्यता को स्वीकार करेगा। 'खड़े रहने और भूखों मरने के लिए सार्वजनिक भूमि तो वे हैं ही, इसके अतिरिक्त यह भी मानने का लेश मात्र कारण नहीं है कि वे

(२) यंग इंडिया पृ० १७८

भूत काल में किसी समय अधिक उन्नत दशा में थीं। मुसलमान काल का फरासीसी यात्री बर्नियर (१) कहता है

'चरागाहों की कमी के कारण अधिक पशुओं का पालना भारतवर्ष में असम्भव है। भीषण गर्मी के कारण साल के आठ महीनों तक भूमि इतनी झुलसी रहती है कि भूख के कारण पशुओं का मरण-काल उपस्थित हो जाता है। और वे सुअरों की तरह मैला खाने लगते हैं।'

मनुष्यों और जानवरों के इतिहास को ध्यान में रख कर यदि कोई अपनी बुद्धि और आँख से काम लेगा तो यह बात उसकी समझ में अच्छी तरह आ जायगी।

जिन परिस्थितियों में भारतीय पशुओं का जीवन रहा है और उनकी वंश वृद्धि होती रही है वे सम्भवतः विशेष रूप से बुरे से बुरे पशु पैदा करने के लिये रची गई होंगी।

पशु विशेषज्ञ जानते हैं कि यदि १२० गायें ऐसे चरागाह में केवल चरने पर निर्भर रक्खी गईं जिसमें केवल १०० चर सकती हैं, तो उनमें २० सबसे अधिक दूध देने वाली मरेंगी क्योंकि दूध देने वाली की बहुत अधिक शक्ति तो दूध पैदा करने में निकल जाती है और उसमें केवल अपने आप को बिना भोजन सम्भाले रखने की शक्ति कम हो जाती है। स्पष्ट है कि जो बचता है वे विशेष उपयोगी नहीं होतीं। इसके अतिरिक्त ३०० गायों तक के झुंड में सांड भी साथ रहता है। फलतः अच्छे से अच्छा होने पर भी सांड निकम्मा अवश्य हो जायगा। लेकिन मजे की बात यह है कि सांड अच्छा तो क्या प्रायः हीन से हीन श्रेणी का होता है।

जब किसी को देवता की पूजा प्रार्थना करनी होती है

(१) ट्रैवल्स इन दी मुगल एम्पायर पृष्ठ ३२६

उदाहरण के लिये पिता के लिये पिता के मरने के बाद. तो वह मन्दिर के लिए सांड़ की मानता मान देना है। और चूंकि जैसे एक सांड़ वैसे दूसरा, इसलिए उक्त कार्य्य के लिए प्रायः अत्यन्त रद्दी और निकृष्ट ही बछड़ा चुना जाता है। इसी तरह पूजा की सामग्री भी सस्ती ही चुनली जाती है। पुरोहित लोग बछड़े को स्वीकार कर लेते हैं और उसे दाग कर तथा पवित्र बना कर स्वच्छन्द रूप से विचरने और पास पड़ोस के गौ-कुण्ड में सांड़ का कार्य्य करते हुए घूमने के लिए छोड़ देते हैं। तरुण अथवा बूढ़े, अच्छे अथवा बुरे साथ साथ भूखों दिन काटते हुए ये सांड़ एक दूसरे को और अपने बच्चों को अपने रोग प्रदान कर आधे तथा निकृष्ट कर देते हैं। भोजन-सामग्री जो सम्पूर्ण भारत के पशु-समुदाय को दी जाती है, वही यदि अच्छे पशुओं को दी जाय तो वर्तमान समयमें जितना दूध देश को मिलता है उससे कहीं अधिक मिलने लगे। (१)

पूर्वीय बङ्गाल में, जो संसार के अत्यन्त उपजाऊ प्रदेशों में से है चरागाह हैं ही नहीं, क्योंकि वहां चावल और जूट की फ़सल ने सारी भूमि पर अधिकार कर लिया है। वे चारा नहीं उत्पन्न करते और पशुओं को पुआल की कुट्टी ही खिलाते हैं। पश्चिमी बङ्गाल के कुछ जिलों में २५ प्रतिशत खेतों पर भूखे पशु चला कर के हानि पहुँचाते हैं। खेतों में कहीं मेंड़आदि तो होती नहीं, कोई भी आदमी अपनी गायों को दूसरे के खेतों में आसानी से पेल देता है। पाप थोड़ा ही है—गायें पवित्र भी और भूखी भी, और पड़ोसी के कष्ट का कारण केवल उसका

(१) सैमुएल हिगिन बाटम, डाइरेक्टर इलाहाबाद एग्रि.कल्चरल इंस्टीट्यूट। इण्डियन टैक्सेशन कमिटी के सामने गवाही १९२४-२५

दुर्भाग्य और विश्वास है।

मैंने देखा है कि गाय भूख के मारे मनुष्य के विष्ठा को भी खाने लगती है। यह एक साधारण बात हो गई है।

कुछ प्रान्तों में ताजा चारा उगाया जाता है और वर्षा ऋतु में तथा शीत ऋतु के आरम्भ में केवल ऊसर भूमि को छोड़ कर प्राय चरागाहों में कुछ घास रहती है। लेकिन, जनवरी तक धरती सफाचट हो जाती है और अगली बरसात के आने तक पशुओं को भूखों मरने की नौबत आ जाती है।

मि० गाधी के लेखक ने गाय के भूखों मरने का दोष ब्रिटिश राज्य पर डाला है। इसमें सन्देह नहीं कि वर्तमान स्थिति के लिए अधिकतर ब्रिटिश राज्य उत्तरदायी है।

अङ्गरेजों के आने के पहले तक लूट मार, चोरी, डाके, और आपसी लडाई झगडों से देश बराबर दुखी रहता था और जिस पर आक्रमण होता था उसके पशुओं पर पहले हाथ साफ होता था। ये पशु या तो मार डाले जाते थे या भगा लिये जाते थे और जो चरागाह उस कारण में थे वे तब तक सुनसान पड रह जाते थे जब तक दूसरे पशु एकत्र नहीं होते थे इससे पशुओं की वृद्धि भी अधिक न होती थी और चरागाह और पशुओं दोनों की हालत अधिक अच्छी न रहती थी।

इस पद्धति के बाद अङ्गरेजों ने ठगी, लडाइ, मार काट आदि का अन्त कर के शान्ति की स्थापना की। यह काम ठीक वैसा ही था जैसा फिलिपाइन में अमरीका ने किया। जैसे हम लोगों ने फिलिपाइन में सफलता प्राप्त की वैसे ही अँगरेजों ने यहाँ पाई। यद्यपि देश के विस्तृत और उसके विरोधी निवासियों के बहुसख्यक होने के कारण उन्हें अधिक विलम्ब लगा। कोई पचास वर्ष हुए, पूरी शक्तियाँ लगाने

पर ब्रिटेन का यह काम पूरा हुआ। अब अँगरेज़ों के अधीन भारतवासियों का जान माल उतना सुरक्षित हो गया जितना सम्भव था। महामारियों की वृद्धि रोकी गई और अकाल का बहुत कुछ प्रबन्ध किया गया। इसका फल यह हुआ कि पशु-संख्या और जन संख्या जो अब तक शत्रुओं के कारण दबी हुई थीं, दोनों बढ़ चलीं। ऐसी स्थिति में मनुष्यों को भोजन भी तो मिलना चाहिए। इसी कारण गवर्मेण्ट ने आवश्यकता के अनुसार लोगों को भूमि पट्टे पर दी(१) जिससे वे अन्न उत्पन्न करें और मृत्यु से बचें।

मनुष्यों ने अपने लिए तो अन्न उत्पन्न किया, परन्तु वे अपनी माता गाय के लिए चारा नहीं उत्पन्न कर सके। इसी कारण गाय भूखों मर रही हैं और अपराध या तो अँगरेज़ों का बनाया जाता है या मुक्ति फ़ौज का(२)।

---

(१) सनातन नियम के अनुसार सब भूमि सरकार की होती है।

(२) सरकार ने मुक्ति फ़ौज को भूमि अधिक मात्रा में इसलिए दी है कि उसके द्वारा मुक्ति फ़ौज ने अच्छी सफलता प्राप्त की जरायम पेशा जातियों का सुधार किया, जिनके लिए सब से पहली बात यह थी कि वे कहीं नियम-पूर्वक गृहस्थ-रूप में रहने लगें। और खेती इत्यादि कुछ करने लगें। गुजरात तथा अन्यत्र सरकार ने इस काम को तथा अछूतों-सम्बन्धी कार्य के चलाने के लिए मुक्ति फ़ौज को कुछ भूमि दे दी जो खाली पड़ी थी। गांधी का पत्र इसी बात का विरोध करता है।

अठारहवां परिच्छेद

'गौ माता'

भारतवासियों और उनके घर के पशुओं की चर्चा छोड़ कर हम अब गवर्मेन्ट का उस प्रयोग की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं जो वह अपने सरकारी फारमों में कर रही है। इसमें सदेह नहीं कि सभ्यता-मार्ग के लिए यह काम उदाहरण-स्वरूप होगा। इससे गरम स्थानों में की एक महत्वपूर्ण गृह समस्या बच्चों के लिए दूध की प्राप्ति का साधन—हल हो जायगा।

जो लोग गरम प्रदेशों में रह चुके हैं वे ही उक्त लाभ का महत्व समझेंगे, और यह जानेंगे कि पारिवारिक जीवन में उससे स्वास्थ्य और आनन्द की कितनी वृद्धि होगी। फिलिपाइन्स टापू में कृषिका महकमा जब से फिलिपाइन्स लोगों के हाथों में दे दिया गया तब से हमारा आशा जनक काम रुक गया। उस दिन से पशु-उत्पादन वहाँ पर विलखाड हो गया और अमरीकन कालेजों में रट कर विद्वान् बने हुए आफिस की कुर्सियों में विराजमान नवयुवकों के शब्दा डम्बर में विलीन हो गया, तथा थोड़े से बेडौल और उपेक्षित पशु, दया पर अवलम्बित रह कर भिखारियों का सा जीवन व्यतीत करते हुए अन्तिम घड़ियाँ गिनने लगे। जहा तक अमरीका का सम्बन्ध है वहां तक यहाँ धारणा बनी रही कि गरम मुल्कों में गाय किसी भी प्रकार यथेष्ट दूध नहीं दे सकती।